विचार
चिंतन
शोध सृजन

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed
Research Journal of Humanities

वर्ष : 10	अंक : 42	अक्टूबर-दिसम्बर, 2025
Year - 10	Volume - 42	October - December, 2025

प्रधान-संपादक

डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

डॉ० सुधीर कुमार तिवारी

आलोचन दृष्टि वर्ष-10 अंक-42 अक्टूबर-दिसम्बर, 2025 ISSN : 2455-4219

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष - 10	अंक - 42	अक्टूबर-दिसम्बर, 2025
Year - 10	**Volume - 42**	**October-December, 2025**

प्रधान-संपादक

डॉ. सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ. योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

डॉ. सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**
संपादकीय/प्रकाशकीय पता :–
सृजनश्री न्यास,
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,
उ0प्र0–212635
ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन,
आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

सदस्यता शुल्क	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
व्यक्तिगत	500	1800	16,000
संस्थागत	600	2000	18,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- **प्रो. गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. माधवेन्द्र पाण्डेय,** पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय।
- **प्रो. अरविंद कुमार झा,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **प्रो. सच्चिदानंद मिश्र,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- **प्रो. दयाशंकर त्रिपाठी,** बी–17, नीलकंठ बंग्लोज, वल्लभ विद्यानगर, आनंद।
- **प्रो. एस. वी. एस. एस.. नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- **प्रो. सुमन जैन,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी।
- **प्रो. शिव प्रसाद शुक्ल,** इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
- **प्रो. अनूप शुक्ल,** रामजानकीपुरम्, सिविल लाइन, फतेहपुर।
- **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- **डॉ. उदयन मिश्र,** लाल बहाकुर शास्त्री पी. जी. कॉलेज, पं. दीनदयाल उपाध्याय नगर, चंदौली (उ. प्र.)।
- **डॉ. बलराम शुक्ल,** दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. ऋषभ कुमार मिश्र**, डॉ. बी. आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. योगेश कुमार करसनभाई चाडसणिया,** उच्च शिक्षा विभाग, गुजरात सरकार।
- **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** नालंदा कॉलेज, बिहार शरीफ, बिहार।
- **डॉ. हरीश पाण्डेय,** महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदू विश्वविद्यालय, वर्धा–महाराष्ट्र।
- **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, वाराणसी।
- **श्रीमती आकांक्षा अग्निहोत्री,** सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बल्लभ विद्यानगर, आनंद–गुजरात।
- **डॉ. वर्षा तिवारी,** पं. शम्भूनाथ शुक्ल विश्वविद्यालय, शहडोल–(म. प्र.)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जवाबदेही नहीं होगी। किसी भी प्रकार के विवाद–संवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में ही होगा।

संपादकीय

मनुष्य का रचनात्मक धर्म है कि वह मनुष्यता का निरंतर विकास करे, ताकि मानव–जीवन के जो उच्चतम आदर्श हैं, वह लगातार समृद्ध होते रहे। यही प्रक्रिया इस रचनात्मक धर्म का सृजनात्मक स्वरूप है। मनुष्य ने अपने विकास की यात्रा– इसी सृजनात्मकता के साथ की है, कर रहा है और भविष्य में भी करता रहेगा। इस गतिशील यात्रा में उसे अनेक अवरोधों और कठिन मार्गों का सामना करना पड़ता है, किंतु वह उन सभी से जूझते हुए निरंतर आगे बढ़ता रहा है। कठिन–से–कठिन दौर में भी तथा जीवन की तमाम आपाधापी के बावजूद मनुष्य कोई–न–कोई जीवन का सृजनात्मक आयाम खोज ही लेता रहा है और उसे समृद्ध करने का हर संभव प्रयास करता भी है– यही प्रयास सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इतिहास में जिन–जिन महान व्यक्तित्वों के नाम हमें सुनाई देते हैं– चाहे वे किसी भी क्षेत्र के हों– उनकी पहचान उनके निरंतर प्रयासों से अर्जित परिणामों से निर्मित हुई है।

आज हम जिन विषयों पर चर्चा करते हैं, जिन संदर्भों को सामने रखते हैं, वे हमारे समय में चारों ओर बिखरे हुए हैं और प्रत्येक व्यक्ति किसी–न–किसी रूप में उनसे परिचित भी है। फिर भी अपने समय पर समग्रता से बात करना– एक जटिल कार्य है, क्योंकि हम एक बात कह पाते हैं और हजार बातें छूट जाती हैं। सब कुछ एक साथ संजो पाना लगभग असंभव–सा है और यदि ऐसा करने का प्रयास किया जाए, तो तमाम तरह की जटिलताएँ और भी जुड़ जाती है।

फिर यह कहने में कोई संकोच नहीं होगा कि आज का समय औपनिवेशिक मानसिकता की चरम परिणति का समय है, जहाँ व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए किसी भी सीमा तक जाने को तैयार है। यह प्रक्रिया आज पूरी दुनिया में दिखाई देती है। शायद ही कोई ऐसा देश हो जो दूसरे को कुचल देने की मानसिकता से मुक्त हो। लगातार ऐसे–ऐसे हथियार विकसित किए जा रहे हैं जिनसे विश्व पर– अपना दबदबा कायम किया जा सके। एक देश– दूसरे देश पर हावी होना चाहता है, उसकी आर्थिक व्यवस्था को अपने नियंत्रण में लेना चाहता है और स्वयं को आर्थिक दृष्टि से सर्वोच्च सिद्ध करने के लिए तमाम अनैतिक कार्य करता हुआ भी 'शांति के नोबेल पुरस्कार' जैसे सम्मानों से विभूषित होना चाहता है। दुर्भाग्यवश, यह सब वास्तव में घटित भी हो रहा है।

ऐसे समय में यह प्रश्न स्वाभाविक है कि क्या मानवीय सृजनात्मक व्यवस्था का विकास संभव है? यदि नहीं, तो इसके पीछे कार्यरत उन तमाम अमानवीय वैचारिक यात्राओं की ओर दृष्टि डालना आवश्यक है, जिनके सूत्रधारों का शैक्षणिक व्यवस्था के मानवीय सरोकारों से कोई वास्तविक संबंध नहीं है। और यदि कहीं संबंध है भी, तो वहाँ मानवीय मूल्यों को बेचने का प्रयास ही अधिक दिखाई देता है। परिणामस्वरूप, पूरी दुनिया की शिक्षा–व्यवस्था में एक गंभीर खामी उत्पन्न हो गई है, जिसमें मूल्यों का निरंतर सांस्कृतिक, सामाजिक एवं पारिवारिक पतन होता चला गया।

मैं जिस ओर संकेत करना चाहता हूँ, वह यह है कि जब कोई व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए समाज के मानवीय आचरण का परित्याग करता है, तो वह मनुष्य नहीं रह जाता– कुछ और ही हो जाता है, जब ऐसे व्यक्ति को हम महत्त्वपूर्ण पदों, व्यवस्थाओं या चिंतन–प्रक्रियाओं का अंग बना देते हैं, तो केवल वह ही कमजोर नहीं होता बल्कि हम स्वयं भी कमजोर होते चले जाते हैं। औपनिवेशिक सभ्यता के उद्भव और विकास के साथ समाज का यह कमजोर होना, जर्जर होना और पतन की ओर जाना– लगातार जारी है। इस प्रक्रिया में सबसे बड़ी भूमिका राजनीतिक व्यवस्था की दिखाई देती है, उसके बाद प्रशासनिक व्यवस्था की, और फिर उन तथाकथित प्रबुद्ध वर्गों की, जो महत्त्वपूर्ण पदों पर बैठे जरूर हैं, लेकिन मानवीय सरोकारों से पूरी तरह कटे हुए।

विडंबना यह है कि जो लोग मूल्यों की बड़ी–बड़ी मानवीय बातें करते हैं, वही मूल्यों का गला घोंटते दिखाई देते हैं। आज शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति बचा हो, जिसके मन, कर्म और वचन में एकरूपता हो। जो कहा जाता है, वह आचरण में उतरता हुआ दिखाई नहीं देता। आज का दृष्टिकोण 'हाथी के दाँत' जैसा हो गया है– दिखाने के लिए कुछ और, खाने के लिए कुछ और। इसी दोहरेपन के साथ संपूर्ण व्यवस्था का संचालन हो रहा है।

ऐसे में यह प्रश्न अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि– किया क्या जाए! और कैसे किया जाए! यह लगभग स्पष्ट हो चुका है कि राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्थाओं से मानवीय सुधार की जो संभावनाएँ थीं, वे अब लगभग समाप्त हो चुकी हैं। यदि कोई आशा शेष है, तो वह बौद्धिक और वैचारिक चिंतकों के माध्यम से ही है। अब आवश्यकता इस बात की है कि वे एकजुट होकर ऐसे नए वैचारिक आयाम को व्यवस्थित करें, जिसमें मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा हो सके।...

'आलोचन दृष्टि' पत्रिका ने अपने निरंतर प्रयासों से दस वर्ष पूर्णकर अब तक 42 अंक प्रकाशित कर चुकी है। विपरीत परिस्थितियों के बावजूद इसने अपनी प्रगति–यात्रा को कभी नहीं रोका और सामाजिक दिग्दर्शन करते हुए अपने पथ पर निरंतर अग्रसर होती रही है। इस यात्रा में 'संपादक–मंडल' और 'सलाहकार–मंडल' का विशेष योगदान रहा है। समय के साथ इन मंडलों में परिवर्तन भी होते रहे हैं और आवश्यकता के अनुसार आगे भी होते रहेंगे। उपरोक्त अंक में थोड़ा परिवर्तन भी हुआ है, जो अगले अंक में और सुदृढ़ होगा। विचारों और योगदान के आधार पर यह प्रक्रिया निरंतर गतिशील रही है और रहेगी।

पिछले दो महीनों में साहित्य–जगत ने दो रचनाकारों– प्रो. रामदरश मिश्र और विनोद कुमार शुक्ल– को खो दिया है। ये दोनों ऐसे साहित्यकार थे जिन्होंने किसी वैचारिक व्यवस्था को स्वयं पर हावी नहीं होने दिया, बल्कि मानवीय अनुभवों को अपनी रचनात्मक यात्रा को ही केंद्र बनाया। दोनों ने अपने जीवन में अनेक संघर्षों के बावजूद अपनी वैचारिक दृष्टि से कभी समझौता नहीं किया। इन दोनों रचनाकारों का का निष्पक्ष, संवेदनशील और महत्त्वपूर्ण साहित्यिक योगदान आने वाले समय में निश्चय ही समाज एवं साहित्य के लिए प्रेरणास्रोत सिद्ध होगा, नई दृष्टि प्रदान करेगा और वैचारिक चिंतन के फलक को विस्तृत करेगा। 'आलोचन दृष्टि' पत्रिका एवं परिवार की ओर से इन दोनों साहित्यकारों के प्रति मैं विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ, साथ ही मेरी यह भी कोशिश रहेगी कि 'आलोचन दृष्टि' पत्रिका इन दोनों रचनाकारों पर केन्द्रित विशेषांक निकाले।...

उपरोक्त पत्रिका का यह अंक कुल 16 शीर्षकों में प्रकाशित हो रहा है, जिसमें हिंदी–भाषा के 11 (ग्यारह), संस्कृत–भाषा का 1 (एक), और अंग्रेजी–भाषा के 4 (चार) शोध–पत्र शामिल हैं। सभी शोध–पत्र या लेख अपने–अपने क्षेत्र के विद्वानों की महनीय अभिव्यक्तियाँ हैं। इन लेखों से हमारे पाठक निश्चित रूप से लाभांवित होंगे।

इस अंक के संपादन हेतु 'आलोचन–दृष्टि परिवार' को सादर आभार ज्ञापित करता हूँ, जिनके सहयोग और सहकार से ही– पत्रिका का यह अंक अपना अंतिम कलेवर ग्रहण कर रहा है। साथ ही, पाठकों–लेखकों के स्नेह एवं लगाव के प्रति भी, कृतज्ञ हूँ।

शेष....

31 दिसम्बर, 2025।

विषयानुक्रमणिका

- संपादकीय iii-iv
- विषयानुक्रमणिका v-vi

1. 'मैला आँचल' के मूल्यांकन का गतिज एवं क्षितिज स्वरूप 1-8
   धनेश दत्त पाण्डेय
2. तमस उपन्यास का चरित्रांकन 9-15
   डॉ. सुनील कुमार मानस
3. मीराबाई का काव्य : सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रतिरोध 16-19
   चंदन कुमार
4. निर्मल वर्मा के सांस्कृतिक निबंधों में भारतीय-बोध 20-23
   समीक्षा
5. हिन्दी साहित्य में नारी चेतना और पित्रसत्तात्मक सरंचनाओं का एक विमर्शात्मक... 24-34
   डॉ. मीरा कुमारी
6. गुरु गोबिंद सिंह कृत 'पख्यान-चरित्र' : नारी के उच्च आदर्शों का बहुआयामी दस्तावेज 35-38
   तेजा सिंह
7. पर्यावरणीय दृष्टिकोण से अष्टछाप काव्य का मूल्यांकन 39-42
   सुशांत कुमार पाण्डेय एवं डॉ. अशोक कुमार ज्योति
8. दलित कहानी की राजनीतिक दृष्टि 43-51
   डॉ. नितीन गायकवाड
9. हबीब तनवीर के नाटकों में यथार्थवाद 52-56
   सदानंदे नागेश एवं डॉ. बाळासाहेब सोनवणे

10. छप्पर उपन्यास में अभिव्यक्त दलित सामाजिक जीवन 57-60
प्रियंका

11. जी.एस.टी. 2.0 : सरलीकरण और प्रभाव 61-67
निशान्त सक्सेना एवं डॉ. अरुण श्रीवास्तव

12. जगदीशाभिमतापादानपञ्चम्यर्थविचारः 68-70
नीरजकुमारभार्गवः

13. **The Crisis of Single-Idea Criticism : Towards a Multi-Dimensional...** 71-74
Maitray Kaushik

14. **Uneven Tourism Development in Rajasthan's Kota Division : Special...** 75-80
Diksha Saini & Dr. Anil Kumar Pareek

15. **Employability Gap Analysis Between Hotel Industry Expectations...** 81-90
Satish Singh, Charudutt Sharma & Shashank Rajauria

16. **A Study of Meme Marketing on Select Food Delivery Companies and...** 91-104
Satish Singh, Shashank Rajauria & Charudutt Sharma

ꕤ★ꕤ

'मैला आँचल' के मूल्यांकन का गतिज एवं क्षितिज स्वरूप

धनेश दत्त पाण्डेय*

रचना कोई भी हो, किसी की भी हो, पूर्णतः अच्छी अथवा दोषपूर्ण नहीं होती। अच्छी या दोषपूर्ण होने का निर्धारण इस बात पर भी निर्भर होता है कि इसका मूल्यांकन कैसे किया गया। समालोचक निष्कपट और स्पष्ट होते हुए भी कई बार कई वृतियों से दुष्प्रभावित हुआ होता है। इनमें उसके युग की आम प्रवृति, उसके समसामयिकों की वैचारिक अभिव्यक्ति, उसकी अंतरात्मा में उठते व्यक्तिगत संसर्ग, उसके समय का सार्वभौम मानव– सत्य और उसके अपने आग्रह–दुराग्रह वगैरह कुछ ऐसी सकेन्द्रित शक्तियाँ हैं जो प्रच्छन्न रहकर उसके द्वारा किये जा रहे मूल्यांकन को प्रभावित करती होतीं है। परन्तु ये प्रभाव अपने स्वभाव में सामान्य होने के कारण किसी रचना के मूल्यांकन को त्रुटिपूर्ण नहीं होने देते, ज्यादा से ज्यादा उसे शास्त्रीय विवादों, पक्ष–विपक्ष की बहसों की जद में लाकर इसे हल्की अथवा गंभीर बताने का प्रयास कर सकते हैं और ऐसा होना साहित्य के स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद भी होता है। बात तब बिगड़ जाती है जब किसी युगांतकारी हस्तक्षेप की शक्ति से संपन्न सृजन का मूल्यांकन मेधावी आलोचकों द्वारा जानबूझकर योजनाबद्ध रुढ़िवादी तरीके से किया जाने लगता है वह भी अपने वर्चस्व के संरक्षण में। ऐसे मूल्यांकन साहित्य का भला नहीं करके, साहित्य–जगत में कोलाहल भरने का कारण बनते हैं जो स्वयं तो अस्वस्थचित होते ही हैं साहित्य में भी अस्थिर 'प्रभाववाद' पैदा करते हैं। हाल के वर्षों में हिंदी कथा–जगत में इस अस्थिर प्रभाववाद का सबसे बड़ा प्रत्यक्षीकरण तब हुआ जब फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' पाठकों के सामने आया।

रेणु जी का 'मैला आँचल' पहले पहल पटना के एक स्थानीय प्रकाशन से 1953 में आया। फिर तुरत बाद यह राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित होकर बड़े और विस्तृत पटल पर 1954 में आया और आते ही इसने हिंदी साहित्य के आलोचकों को अपनी ओर खींचा।

दरअस्ल आलोचकों को इसमें यकबयक दिलचस्पी लेने का कारण इस उपन्यास में लेखक की वह भूमिका बनी जिसमे उसने स्वयं इसे "आंचलिक" कहा। यह शब्द तो नया नहीं था मगर हिंदी के परिप्रेक्ष्य में अभी तक यह शब्द किसी दूसरे उपन्यास का अभिहित नहीं हो सका था। इस एक शब्द से उस रचना की शास्त्रीय मौलिकता तो क्या उजागर होती, अलबत्ता उपन्यासों के ऐसे नाम रूप के लिए इसकी सार्थकता की खोज इसे बीज शब्द जरुर बना गई। बहसें 'नामरूपवाद (Phenomenally)' और 'संरचनावाद (Structuralism)' से शुरू होकर कभी अतिशय भावुक तो कभी उत्तेजनापूर्ण प्रतिकिया में बदलने लगीं और, तीव्र–त्वरित होकर आलोचकों के मध्य उनके बौद्धिक व्यापार, कलहपूर्ण स्पर्धा एवं राजनैतिक चिंतन के लिए प्रकृत हो गईं। किताब की भूमिका रेणु जी की एक घोषणा से शुरू होती है– "यह है 'मैला आँचल', एक आंचलिक उपन्यास ...।"

हिंदी कथा साहित्य में इस उपन्यास के पहले भी कई–कई रचनाएँ गाँव के प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक जीवन–व्यवस्था को केंद्र में रख कर लिखीं जा चुकी थीं और चर्चित भी हुई थीं। और, जैसा कि रेणु जी ने इसकी भूमिका में कहा कि "कथानक है पुरनिया। ...मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँवों का प्रतीक मानकर इस उपन्यास का कथा–क्षेत्र बनाया है..." तो, इससे पूर्व भी कई–कई उपन्यासों के कथानक भी स्थानीय रंगत और सघनता से चुने जा चुके थे। मगर इन उपन्यासों में से किसी के भी लेखक ने अपने उपन्यास को 'आँचलिक' होने की घोषणा नहीं की थी। फसादों का जड़ यह घोषणा ही थी ! जाहिर है कि रेणु जी ने ऐसा कहकर ही अपने समकालीन आलोचकों और साहित्यकारों को इस रचना की आंचलिकता को भली–भांति समझने, इसे चिन्हित करने, इसकी व्याख्या करके इसे प्रमाणित या इसे उच्छेदित करने के लिए अप्रत्यक्ष तौर पर उकसाया था।

*** हिमाद्री', 54, राजेश्वर नगर, फेज़ 1, लेन 1, स्ट्रीट 5, सहस्त्रधरा रोड, देहरादून –248001।**

हिंदी कथा जगत में आलोचना के लिए अब तक ऐसी किसी धारणा या मानदंड का निर्माण भी नहीं हो पाया था कि इस कसौटी पर किसी उपन्यास की ऐसी विशिष्टता को सहजता में परखा जा सके। उन्नीसवीं सदी के उतरार्द्ध और बीसवीं सदी के जागरण काल में, मैं समझता हूँ कि 1930 के आस–पास, अमेरिकी उपन्यासकारों के बीच 'आँचलिकता' को लेकर अच्छी–खासी बहसें जरुर चल रही थीं। इसी समय यूरोपीय साहित्यकारों के बीच भी इस पर मंथन किया जा रहा था। उनका मानना था कि कोई भी उपन्यास आंचलिक तभी ठराया जा सकता है जब उसका नृवैज्ञानिक अथवा नृतत्व शस्त्रीय वैशिष्ट्य से लेकर उसका भगौलिक परिवेश, सांस्कृतिक एवं लोक–तात्विक चरित्र, उसमे वर्णित वेश–भूषा, राज–रंग, उत्सव–त्यौहार आदि सब कुछ अपनी समग्रता और जीवंतता में उपस्थित हुआ हो। 'मैला आँचल' में ए विशेषताएँ तो थीं मगर एक और महत्वपूर्ण तथ्य, जिसकी वकालत अमेरिकी आलोचक एवं लेखक ब्रेट हार्ट (Bret Harte), हैरेट वीचेर स्टो (Hairiet Beecher Stowe) वगैरह कर रहे थे वह इस उपन्यास में नहीं था। तथ्य यह है कि अंचल का नृतत्व शास्त्रीय वैशिष्ट्य की उपस्थिति कथा में उपन्यासकार के व्यक्तिगत सोच से न उतरकर उसके पात्रों के जीवन–व्यवहार और रहन–सहन की स्थितियों–परिस्थियों से उतरकर आनी चाहिए। लेकिन जब हिंदी के आलोचकों ने रेणु की भूमिका और उनके उपन्यास के तत्वों के परिप्रेक्ष्य में उत्साहपूर्ण अन्वेषण, विश्लेषण और विवेचन शुरू किया तब यहाँ अमेरिकी, फांसीसी और यूरोपीय उपन्यासकारों और उनके उपन्यासों को खूब उछाला गया। थॉमस हार्डी (Thomas Hardy) का 'वेसेक्स (Wessex)' सबसे बड़ा मिसाल बना। वेसेक्स वस्तुतः कोई मानव पात्र है ही नहीं। यह इंग्लैंड का एक छोटा–सा भूभाग था और हार्डी की जन्मभूमि भी। अब यह इंग्लैंड के नक्शे से विलुप्त हो चुका है। विलुप्त होने का कारण भी यह था कि यह क्षेत्र 'वेसेक्स' ने काल और प्रकृति के इतने अभिशाप झेले कि इसके लिए अपना अस्तित्व को बचा पाना संभव नहीं रहा। हार्डी ने उसका मानवीकरण करके उसके दुखों के कई चमत्कारी किस्से लिखे।

इस तरह का ही एक दूसरा उपन्यास है– 'द रिटर्न ऑफ़ द नेटिव'। दक्षिण–पश्चिम इंग्लैंड में एक दलदल है जो 'एडन हीथ' कहलाता है। यह दलदली क्षेत्र ही इस उपन्यास का कथानक है। यह उपन्यास यूँ तो एक त्रिकोणात्मक प्रेम–कथा है परन्तु इसकी विशेषता मानव और प्रकृति के बीच के सामाजिक और प्राकृतिक संबंधों और काल–चक्र में फंसे इंसानों की नियति की कहानी होना है। 'द रिटर्न ऑफ़ द नेटिव' के बंजर और उजाड़ पठारी क्षेत्र के बारे में डफिन कहता है, "वह भाव प्रवण है, अनुभव करता है, बोलता है और हत्या करता है।" यानी एडन हीथ का अपना एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है जो हार्डी के इस उपन्यास में अपने पात्रों के मध्य अपनी विशिष्ट भूमिका रखता है और जिसका चरित्र मानव–व्यवहारों से गठित है।

इस तरह ही अमेरिकी उपन्यासकार विला सिबर्ट कैथर (Willa Sibert Cather) का 'माई एंटोनिया (My Antonia}, फाकनर (William Faulkner) का 'द साउंड एंड द फ्यूरी', जॉन स्तेन्बेक (John Steinback), ब्रेट हार्ट (Bret Harte) आदि की किताबों के हवाले से यह कहा गया कि इन तमाम रचनाओं का आग्रह किसी अंचल के व्यक्तित्व का चित्रण है न कि मानव पात्रों का चरित्र–चित्रण।

हिंदी आलोचकों ने जब ऐसे उपन्यासों को सामने करके रेणु के 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' में उसके अंचल के भूभाग का मानवीकृत होने की तलाश की तो यह तत्व यहाँ सिरे से नदारद मिला। देहाती जीवन का स्थानीय रंगत और क्षेत्रीय ढब के साथ गाँवों के सांस्कृतिक एवं लोकतात्विक वैभव यहाँ अपने पूरे उजास में उतरा हुआ था मगर विरोधी आलोचकों के हाथ एक बना– बनाया आयातित नुस्खा हाथ लग चुका था जिसके बिना पर वे 'मैला आँचल' को आंचलिक मानने को कतई तैयार नहीं हुए। दलील दी जाने लगी कि ऐसे बहुतेरे उपन्यास तो हिंदी में रेणु के पहले भी बहुतों ने लिखा है। नागार्जुन का 'रतिनाथ की चाची'(1948); 'बलचनमा' (1952), शिवपूजन सहाय का 'देहाती दुनिया', अमृतलाल नागर का 'बूंद और समुंद' (1956), गोपी नाथ मोहंती का 'अमृत संतान' और 'माटी मटाल', कृष्णा सोबती का 'जिन्दगी नामा' और यहाँ तक की पूर्णिया अंचल से ही सतीनाथ भादुड़ी का 'डोढ़ाय चरितमानस' ! बनायी जाय तो यह एक लम्बी फेहरिस्त हो सकती है। मगर निष्कर्ष लेना हो तो मधुरेश कहते हैं, "जहाँ तक आँचलिकता की अवधारणा और उसके स्वरुप का सवाल है प्रायः ही इस बात पर सहमति प्रकट की गई है कि अपने विशुद्ध रूप में आंचलिक उपन्यास हिंदी में कोई है ही नहीं, न रेणु के उपन्यास और न ही उन बहुत से लोगों के वे

ढेरों उपन्यास जिन्हें आन्दोलन को बल और गति देने की इच्छा से, उन लेखकों के जाने–अनजाने, इस (मैला आँचल की आंचलिकता को लेकर) आन्दोलन से जोड़ लिया गया। आँचलिकता की जो वैज्ञानिक धारणा सन '30 के आस–पास अमेरिकी कथा साहित्य में विकसित हुई थी वैसा कुछ हिंदी में नहीं हुआ। किसी अंचल विशेष को नायक बनाकर नृतत्वशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करने की प्रकृति, उस अंचल की सांस्कृतिक, भगौलिक और ऐतिहासिक सत्ता को ही सर्वोपरी महत्व देने और प्रतिष्ठित करने की प्रवृति का विकास हिंदी में नहीं हुआ।" ('हिन्दी उपन्यास, सार्थक की पहचान : आंचलिकता बनाम लोक चेतना')

'मैला आँचल' को आंचलिक उपन्यास का दर्जा देने, नहीं देने के उहापोह के पीछे कुछ राजनैतिक कारण भी रहे। 19वीं शताब्दी के पांचवे–छठे दशकों में भारतीय प्रबुद्ध वर्ग का एक बहुत बड़ा तबका रूस में काफी दिलचस्पी लेने लगा था। इसके दो बड़े कारण थे। पहला तो यह कि रुसी क्रांतिकारी जनवादियों ने भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन का खुलकर और जमकर समर्थन किया था। और, दूसरा रूस का सांस्कृतिक उत्थान। संस्कृति के सभी क्षेत्रों– संगीत, चित्रकला, साहित्य– में रूस की प्रगति पूरी दुनिया के लिए स्पृहनीय हो चुकी थी। स्वाभाविक ही था कि भारत के सभी साहित्यकार, साहित्यानुरागी, साहित्य–पारखी भी उसकी जनवादी, मानवतावादी और यथार्थवादी परम्पराओं की ओर आकृष्ट होते, हुए। लेकिन उस समय ही भारत में बुद्धिजीवियों का एक तबका ऐसा भी था जो रूस से भारत आये परिवर्तनों की गहराई से छान–बीन करके भारतीय समाज को प्रगति के नाम पर उत्पन्न हो रही बुराइयों, अतिचारों से परिचित करा रहा था कि, रूस में विवाह प्रथा लगभग नष्ट हो चुकी है, पारिवारिक संगठन छिन्न–भिन्न हो रहा है, पति–पत्नी के रिश्ते बिखर रहे हैं और युवा–युवतियाँ अराजक जीवन बीताने के लिए प्रेरित किये जा रहे हैं। रुसी विचारधरा को अवरोधित करने के लिए यह अमेरिका और यूरोप का वैचारिक प्रवाह था। कहा जाता है कि राजनीति में यह शीत–युद्ध का समय था। दुनिया अमेरिकी और सोबियत खेमे में बंट चुकी थी। हालाँकि, नेहरु जी के नेतृत्व में भारत ने तब 'गुट–निरपेक्ष' सिद्धांत को अपना राष्ट्रीय सिद्धांत घोषित कर रखा था मगर देश के अंदर गुट–निरपेक्षता जैसी कोई बात कहीं भी अमल में थी नहीं। नतीजतन साहित्य, कला और संस्कृति के क्षेत्र में हम तब भी दो गुटों में बंटे हुए थे, जनवादी या मार्क्सवादी और लोहियावादी या समाजवादी विचारधारा के रूप में। बंटते–बंटते अब तो कई फाड़ हो चुके हैं!

आँचलिकता का उभार हिंदी कथा साहित्य में इस समय ही हुआ। कहानी से 'नई कहानी' भी इस काल–खंड में ही बनाया जाने लगा। ग्राम बनाम नगर कथा का विवाद भी विवादों भरा इस समय में ही उठाया गया। गो कि यह काल–खंड हिंदी साहित्य में आंदोलनों, विवादों और गुटों के गठन का काल हो गया ! कह चुका हूँ कि हिंदी के लेखक भी जनवादी और समाजवादी संगठनों में बंट गए। जो नहीं बंटे वे कहीं के न रहकर द्रष्टा और साक्षी होने का पुण्य बटोरते रह जाने के लिए मजबूर कर दिए गये। प्रेमचंद जनवादियों की प्रथम–पूज्य प्रतिभा हुए। समाजवादियों के लिए भी किसी ऐसी ही प्रतिभा की तलाश की जाने लगी जिसके यश को उजागर करके वे जनवादी–मार्क्सवादियों के प्रति थोडा उपहासात्मक, आक्रामक और अनुदार होकर होड़ ले सकें। 'मैला आँचल' की तौर पर उन्हें तब ही एक आकस्मिक परन्तु उल्लेखनीय पुष्पन हाथ लगा। वह भी अकारण नहीं। कारण यह था कि फणीश्वरनाथ रेणु स्वयं दलगत राजनीति में सक्रिय रहे थे। हिंदी कथा–जगत में प्रवेश करने के पहले वे नेपाली क्रान्ति में काफी संलग्न रहे। भारतीय राजनीति में वे समाजवादी आन्दोलन से गहरे जुड़े थे और जयप्रकाश नारायण तथा राममनोहर लोहिया के करीबियों में गिने जाते रहे। उनकी रचनाओं में भी इसकी सुस्पष्ट छाप है। यह भी एक बड़ा कारण था कि उन्हें लोहियावादी–समाजवादी दल और रुझान वाले साहित्य–कर्मियों का बढ़–चढ़ कर साथ मिला तो मार्क्सवादियों ने उनका खुलकर विरोध भी किया।

एक कारण और जिसकी चर्चा भी अनापेक्षित नहीं मानी जायेगी। 'मैला आँचल' के आने के बाद के समय में ही हिंदी कथा जगत में कुछ नए शास्त्रीय पद भी अचानक ही बहुत जोर–शोर से चलन में आये। ये पद हैं– 'कवि– दृष्टि' और 'आलोचना का जनतंत्र'। ऐसे पदों का आलोचकीय प्रयोग इससे पहले कभी किसी दूसरे उपन्यास के विमर्श के लिए शामिल नहीं किया गया था। 'मैला आँचल' के सन्दर्भ में पहली दफा 'कवि– दृष्टि' शब्द का प्रयोग नेमिचन्द्र जैन ने किया, वह भी पूरा जोर देकर, रचनात्मक गद्य की

समीक्षा में इसके प्रयोग के औचित्य की व्याख्या करते हुए। लिखा– "उस मैला आँचल के लेखक ने देहाती जीवन को अत्यंत ही आत्मीय और कवित्वपूर्ण दृष्टि से देखा है। मैं बहुत जान–बूझकर इस दृष्टि को 'कवित्वपूर्ण' कहता हूँ। क्योंकि, विशेषकर यथार्थवाद के नाम पर राजनितिक मतवाद के दुराग्रह के फलस्वरूप बहुत दिनों तक साहित्यकार सबसे अधिक वंचित होता रहा, इसी कवित्वपूर्ण दृष्टि से, यद्यपि मूलतः यही साहित्यकार की अपनी दृष्टि है। "('अधूरे साक्षात्कार',पृष्ठ 36)

अब, हिंदी कथाओं के लिए यह कवि–दृष्टि वाला मसला इससे पहले कहीं और उठा हो तो मुझे मालूम नहीं। मैं सिर्फ यह जान सका हूँ कि इस पद का प्रयोग गुस्ताव फ्लाबेयर (Flaubert) ने उपन्यास 'मदाम बाबरी (Madame Bovary)' के सन्दर्भ में किया था। संभव है कि हिंदी के आलोचकों ने इस शब्द को यहाँ आलोचना करने में इसके अभिलाक्षणिक प्रयोग के लिए वहां से ही उठाया हो। 1857 में जब फ्रांस में 'मदाम बाबरी' आया तो इसका स्वागत जिस उदंडता और उपहास के साथ वहाँ के आलोचकों ने किया था हिंदी जगत के कुछ आलोचकों ने 'मैला आँचल' का स्वागत भी उसी तरह से यहाँ भी किया। और यह भी कि आगे चलकर पाठकों के बीच फ्लाबेयर के उस उपन्यास को जो प्रतिष्ठा वहाँ मिली कुछ– कुछ वैसी ही प्रतिष्ठा और लोकप्रियता रेणु के इस उपन्यास को यहाँ के पाठकों ने भी दिया। फ़र्क यह रहा कि अपमान की यह घूंट फ्लाबेयर ने अदालत के चक्कर काट–काट कर पिए थे जबकि हमारे यहाँ रेणु के समर्थन में आलोचकों का एक दल पूरी तरह सक्रिय बना रहा। खैर।

नेमिचन्द्र जैन की उपरोक्त टिप्पणी पर बहुत सधी हुई प्रतिक्रिया, बल्कि यूँ कहिये कि जैन जो कहना चाह रहे थे उसे बहुत ही सहजता में स्पष्ट करती हुई प्रतिक्रिया हमारे समय के एक महत्वपूर्ण आलोचक मधुरेश ने कुछ इस तरह से दिया, "स्फीति, विस्तार और अनावश्यक ब्यौरों से बचकर गहरे रचनात्मक विवेक और अंतर्दृष्टि के साथ, उस (फ्लाबेयर) ने मदाम बोबरी की आंतरिक छटपटाहट और उद्वेलन को तत्कालीन फ्रेंच समाज की निषेधमूलक आचार संहिता के विरोध में अंकित किया गया वस्तुतः उस सघन संवेदनशीलता और कलात्मक संयम को ही कवि–दृष्टि के रूप में रेखांकित किया गया। वह यथार्थविरोधी न होकर यथार्थ को अधिक प्रभविष्णु ढंग से अंकित करने वाली दृष्टि थी। कवि–दृष्टि के विरोध में जब यथार्थवाद को खड़ा किया जाता है तो प्रायः हमेशा ही उसे यथातथ्यता के रूप में लिया जाता है। परिवेश के ब्यौरों और चित्रों की उपन्यास में एक विशिष्ट भूमिका होती है।" ('सीढ़ियों पर उपन्यास': मैला आँचल का महत्व, एक टिप्पणी। पृष्ठ 169)

इन तथ्यों की पड़ताल करनेके लिए जब हम पीछे मुड़कर देखते हैं तो अपने सामान्य रूप में यह मामला आलोचना की बहसों की तरह जितना सीधा दिखता है, वस्तुतः यह उतना सीधा और वैयक्तिक भी था नहीं। पक्षपाती और पेचीदा होकर यह एक साहित्यिक कृति के बहाने अपने समसामयिक निर्णायकों और मूल्यांकन कर्ताओं के दो गुटों के आपसी तिरस्कार, एक दूसरे के विश्वासोत्पादक सिद्धांतो के खंडन, विपक्षी रचनाकारों की नवीनताओं के कपटपूर्ण विवेचन और अपने पांडित्य के महिमामंडन से आने वाली पीढ़ी को उलझाव में डाले रहने वाले षड्यंत्रों के निर्माण का था।

जैसा कि उपर कह चुका हूँ, 'मैला आँचल' के आते ही हिंदी कथा आलोचना इसके प्रति अनुदार, उच्छ्रिन्खल, अशास्त्रीय और प्रगल्भ होकर अपने उन धर्मों को भूलने लगी जो आलोचकों की रचना के प्रति श्रधा और साहस से उसे महान बनाते हैं। फल यह हुआ कि इसकी प्रतिक्रिया में कुछ साहित्य–समालोचक आगे बढ़कर इस कृति के विरुद्ध किये गए आक्षेपों पर लिखने या व्याख्यान देने में आनन्द का अनुभव करने लगे। एक अज़ीब–सी स्थिति बनने लगी। सभी पत्रिकाएं– आलोचना, लहर, कहानी, समालोचक– अपने–अपने समीक्षकों को नेवत करके धड़ाधड़ लेख लिखवाने लगीं। ज्यादतर लेखक उपन्यास के आवश्यक तत्वों को परे करके इस बात की विवेचना में लग गये कि रेणुं कितना देहाती लेखक है, कि इसके लेखन में जीवन पूर्णता से चित्रित भी हो सका कि नहीं, कि यह कितना राष्ट्रीय अथवा क्षेत्रीय है, कि इसमें अपने समय का युग या काल यथार्थवादी होकर उतरा है या कल्पनामूलक होकर। ये तमाम मुद्दे निःसंदेह समालोचना के ही हथियार हैं मगर खोट इनके प्रयोग में हुआ क्योंकि ऐसे तमाम परन्तुक छद्म–आलोचना पद्धति के साथ ही लगाये जा रहे थे। इस हेतु यदि आलोचना के वास्तविक उपकरणों का सही परिप्रेक्ष्य में

उपयोग किया गया होता तो इनसे और इनकी प्रतिक्रिया में जो बहसें आईं वे साहित्य के विकास का ही साधन बनतीं, न कि गुट–सापेक्ष होकर साहित्य में कोलाहल बनकर साहित्यिक उपहास।

1954 में 'आलोचना' का एक विशेषांक आया। तब उसके सम्पादक थे धर्मवीर भारती। भारती जी समाजवादी विचारधारा के थे। 'आलोचना' में उन्हें शिवदान सिंह चौहान को हटा कर लाया गया था। स्वाभाविक है कि उनके आते ही 'आलोचना' का रंग–रंगत समाजवादियों वाला होने लगा और खोज–खोज के लोहियावादी विचारकों के लेख इसमें छपने लगे। एक तरह से तब यह रामविलास शर्मा और उन जैसे दूसरे मार्क्सवादियों के विरोध का मुखर मंच हो गई। प्रयास यह जताने का किया जाने लगा कि रामविलास जी या उनसे घोर सहमति जताने वाले आलोचक राजनीति, नैतिकता एवं रूचि के सम्बन्ध में अपने जो विचार प्रकट करते हैं वह रूस–चीन से पोषित होकर आज भारतीय समाज और संस्कृति के विरोधी हैं। आधार बनाया गया रामविलास शर्मा की बहुचर्चित पुस्तक 'प्रेमचन्द और उनका युग' को जो 1952 में राजकमल प्रकाशन से छप कर आई थी। 1954 में 'मैला आँचल' भी राजकमल से ही छप कर आया था और आते ही नलिनविलोचन शर्मा की संस्तुति से हिंदी के श्रेष्ठ उपन्यासों में शुमार हो गया था। इसे ही समाजवादियों ने अपना अस्त्र बना लिया।

'प्रेमचन्द और उनका युग' में रामविलास जी का सारा जोर प्रेमचंद को नई राष्ट्रवादी और जनचेतना के प्रतिनिधि कथाकार के रूप में महिमामंडित करने का था जिसके लिए उन्होंने कई–कई लेख यथा, 'प्रगतिशील साहित्य और भाषाई समस्या', 'युग निर्माता और प्रेमचन्द', आदि लिखे थे। लोहियावादियों को उनका यह बखान प्रेमचन्द के बहाने समाज में मार्क्सवाद को प्रतिष्ठित करने का लगा। लिहाजा, उन्होंने 'मैला आँचल' को अपने निर्णय के प्रतिदान के लिए वस्तुनिष्ठ कसौटी की तरह प्रयोग किया।

धर्मवीर भारती के अनुसार 'मैला आँचल' की तरह की कथा–रचना मिथिला की धरती पर पिछले पांच वर्षों से लिखी ही नहीं गई और यह भी कि विद्यापति के बाद रेणु ही उस क्षेत्र के सबसे ज्यादा लोकप्रिय रचनाकार हुए। यह कथन अतिरंजना के अतिरिक्त कुछ हो ही नहीं सकता जो अपने प्रभाव में हास्यास्पद होकर अविश्वसनीय भी हो जाता है। दरअस्ल ऐसे कथन परिमलवादियों द्वारा रेणु के अभिहित से ज्यादा रामविलास जी एंड कंपनी को परेशान करने के लिए हवा में उझाले जाते थे और इनमें रेणु की लकीर को थोड़ा बड़ा करके प्रेमचन्द का कद कम करने का निहितार्थ होता था। इनसे किसका नुकसान और किसे फायदा हुआ; यह यहाँ विवेचन का विषय है नहीं, साहित्य के पाठक सब जान–समझ रहे हैं। रेणु का कद यदि बड़ा भी करना था तो यह उनकी रचना में व्याप्त नवीन सूक्ष्मग्राहिताओं का उल्लेख करके ही किया जा सकता था जो साहित्यिक विवेचनाओं के लिए एकमात्र शाश्वत तरीका है। इससे ही कोई भी साहित्य विवेचित कृति के बहाने कालानुक्रम में विकसित और विविधता का वेग प्राप्त करता है। साहित्य में एक प्रचलित नारा भी है कि इतिहास का विकास होता है, कला जहाँ कि तहाँ रहती है। यानी 'मैला आँचल' किसी के कहने से न तो महान होता और न ही किसी के शाप से क्षीणयश। यह जैसा था, जहाँ था वहाँ ही वैसा ही रहता और आजतक है भी। मगर ऐसा करने मात्र से तब के मूल्यांकनकर्ताओं की निष्पक्षता पाठकों के बीच मछलीबाजारों वाला विनोदपूर्ण कोलाहल बन कर रह गया !

रामविलास शर्मा की तरह प्रकाशचन्द्र गुप्त ने भी एक लेख लिखा– 'प्रेमचन्द की परम्परा और रेणु'। सम्भवतः यह 1962 में 'समालोचक' में छपा था और मैंने किसी लेख में पढ़ते हुए इस प्रकरण को तब अपनी एक नोट बुक में लिख लिया था। छपते ही यह लेख विवादों में घिर गया था। विवाद का कारण इस लेख के वे तथ्य बने थे जो रामविलास जी की स्थापनाओं की मिलती में होकर भी थोड़ी असहमति वाले थे। प्रेमचन्द और रेणु, दोनों ने, काल और परिवेश की पृथकता में होकर भी अपनी सम्वेदना में दुखियारों, दरिद्रों की हीनता–दीनता की बखान करके सामाजिक यथार्थ की मूर्तियाँ गढ़ी हैं। इसे दोनों आलोचक मान भी रहे थे मगर प्रकाशचन्द्र गुप्त का मानना था कि रामविलास शर्मा जी का विश्लेषण मार्क्सवादी मानकों पर दृढ़ होकर रेणु के कथा–तत्वों को नकारा बता देना चाहता है। धर्मवीर भारती परिमलवादियों के साथ थे तो स्वभावतः रामविलास जी से उनकी पट्टी नहीं बैठती थी। इन दो पाटों में पिस रहे थे रेणु। परिमलवादी घोर प्रशंसा कर रहे थे तो मार्क्सवादी उनकी घोर उपेक्षा। रामविलास जी ने लिखा, "यदि लेखक के दृष्टिकोण

को ध्यान में रखकर आस्था के प्रश्न का उत्तर दिया जाय तो कहना पड़ेगा कि जनता और उसकी राजनैतिक कार्यवाही में उसकी (रेणु की) आस्था नहीं है। उसे लोक संस्कृति प्रिय है किन्तु इस संस्कृति के रचनेवालों में उसे कहीं प्रकाश की किरणें नहीं दिखाई देतीं। उसे अंचल की मिट्टी से प्रेम है। किन्तु उस मिट्टी में मरने–खपने वाले उसे पशु से भी सीधे और पशु से भी ज्यादा खूँखार दिखाई देते हैं" (''प्रेमचन्द की परम्परा और आंचलिकता")}। रामविलास जी की यह टिप्पणी स्पष्ट ही 'नई कविता' को लेकर उनकी धारणाओं से ही प्रेरित रही होगी। इसके ज़बाव में नेमिचन्द्र जैन कहते हैं– "रेणु के जीवन के प्रति कवित्वपूर्ण दृष्टि स्पष्ट ही नीरस और सतही तथाकथित यथार्थवाद की दृष्टि से भिन्न है।' ('संवेदनशील और कृतात्मक : मैला आँचल' लेख से) शिवदान सिंह चौहान ने लिखा– "मैला आँचल का अवमूल्यन करने के लिए इन तर्कों को गढ़ा गया है जो तथ्यों पर आधारित नहीं है और अगर होते भी तो उन्हें मूल्यांकन की कसौटी नहीं बनाया जा सकता।" जैसा कि मधुरेश बताते हैं, शिवदान सिंह की यह टिप्पणी नलिन विलोचन शर्मा की उस विवेचना की असहमति में आई थी जिसमे कि उन्होंने 'मैला आँचल' को बिहार के एक छोटा–सा अंचल का और 'गोदान' को समग्र भारतीय जीवन का चित्रात्मक अभिलेख माना था।

'मिट्टी से प्रेम परन्तु मिट्टी में मरने–खपने वालों को पशुओं से भी सीधे और खूँखार' जैसी टिप्पणी से रामविलास जी एंड कंपनी ने चाहे रेणु के यथार्थ की जैसी भी खिल्ली उड़ाने की कोशिश की हो या फिर अपनी प्रमाणित मेधा की प्रासांगिकता में उन्हें यह सच ही दिखा हो, उनकी ऐसी तमाम कोशिशें अपने प्रतिफल में पाठकों के लिए पत्थर पर खिंची लकीर की तरह अस्पष्ट और धुंधला बनी रही। रेणु ने अपने आप को पाठकों के बीच अपने पूर्ववर्ती लेखकों की अपेक्षा ज्यादा अधिकार पूर्वक और मौलिक होकर ग्रामीण चित्रकार के रूप प्रस्तुत करके यह साबित किया कि उनके तमाम विरोधी आलोचक अन्यायप्रिय और बुद्धिविकल हैं। लेखक गर अपनी लेखन–साधना में डूबा हुआ है, अपनी आत्मा के खून को स्याही बना कर कलम चला रहा है, बड़े से बड़े कष्ट के साथ अपने सर्वाधिक सत्यानुभूति की अनुभूति में संघर्षरत है तो उसके प्रति इर्ष्यापूर्ण और उपेक्षापूर्ण उपहास किसी निष्पक्ष विचारकों और खासकर आम पाठकों के बीच टिकाऊ कैसे हो सकते ! साहित्य में पाठकों की भी तो अपनी सत्ता होती ही है। बल्कि, यही सत्ता साहित्य का जनतांत्रिक आधार बनाती है जो सर्वाधिक शक्तिशाली होकर आलोचकों और साहित्यिक विश्लेषकों को भी उनकी सीमा में बांधे रखती है। विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा, "ग्रामीण भारत का परिचय रेणु को प्रेमचन्द से कम नहीं। " कहने का उनका आशय यह है कि रेणु ने यदि 'मैला आँचल' में मेरी गंज को 'पिछड़े गावों का प्रतीक मानकर इस उपन्यास–कथा का क्षेत्र बनाया है, तो इसका दो माने है। पहला तो यह कि रेणु को भारत भर में फैले हुए गाँवों की हकीकत का पता है जिसका कि प्रतिनिधित्व कर सकने की हैसियत इस मेरीगंज को है और दूसरा कि जनतांत्रिक व्यवस्था में जनता के प्रतिनिधि को ही उसके पक्षपोषण का संवैधानिक हक़ हासिल होता है। यही है हिंदी आलोचना में जनतंत्र की बहाली ! इसके बहाल होने के भी दो तरीके हो सकते हैं– लेखकों की दृष्टि से भारतीय जनतंत्र का अध्ययन, जैसा कि रेणु ने 'मैला आँचल' की भूमिका से स्पष्ट भी कर दिया है यह कहकर कि "आज़ादी के बाद भारत के गरीब (90% लोग) और भी गरीब हो गए और अमीर और भी ज्यादा अमीर"। और, दूसरा –अध्ययन की दृष्टि यानी समालोचकों की दृष्टि से रचनाओं में इसकी व्याप्ति को समझना; जैसा कि विश्वनाथ त्रिपाठी या कुछ दूसरे समालोचकों ने समझा भी। रेणु ने 'मैला आँचल' के जनतंत्र को सिर्फ कहकर ही नहीं बल्कि पात्रों और कथानक के माध्यम से उतारकर भी इस भावना को व्यक्त किया है। उपन्यास में आरम्भ से ही भारतीय गाँवों का प्रतिनिधि यह गाँव उपस्थित हो जाता है– "मेरीगंज एक बड़ा गाँव है, बारहों बरन के लोग रहते हैं। ...गाँव में तीन प्रमुख दल हैं, कायस्थ, राजपूत, यादव ! ब्राह्मण लोग अभी तृतीय शक्ति हैं। गाँव के अन्य जाति के लोग भी सुविधानुसार इन्हीं तीन दलों में बंटे हुए हैं। (पृष्ठ 15–16)। गाँव में शिक्षा की स्थिति अभी भी दयनीय है– "पढ़े–लिखे का मतलब हुआ अपना दस्तखत करने से लेकर तहसीलदारी करने तक की पढ़ाई। नए पढ़ने वालों की संख्या है पन्द्रह (पृष्ठ 17)। गाँव में जातिगत गुटबाजी चरम पर है। "कायस्थ टोली को, गाँव के अन्य जाति के लोग मालिक टोला कहते हैं। यादवों का दल नया है। खेलावन सिंह यादव को लोग नया मातबर कहते हैं। लेकिन यादव टोली को अब 'गुअर टोली' कहने की हिम्मत कोई नहीं करता' (पृष्ठ 17)। पूरा उपन्यास ऐसे ही रोचक, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के गाँवों में पैबस्त हो चुके पार्टी–पोलिटिक्स के

आख्यानों और अन्य यथार्थपरक तथ्यों से भरा पड़ा है। पात्र, कथा, कथानक, शैली और स्वैरकल्पना ऐसी कि पढ़ते ही लगता है जैसे कि पूरे राष्ट्र का एक–एक गाँव और इन गाँवों की आत्मा एक साथ एक ही जगह उतर आई हो। शिवदान सिंह इस उपन्यास की रचना प्रक्रिया पर लिखते हैं, "यह प्रक्रिया अत्यंत संश्लिष्ट है और सामान्य जीवन में किस प्रकार कितनी वेदना, दुःख और विक्षोभ घटित होती है इसका यथार्थ चित्रण 'मैला आँचल' में मिलता है। एक ऐसी सूक्ष्म व्यंजनापूर्ण शैली है कि हर शब्द अपनी जगह सार्थक लगता है।" तभी तो 'मैला आँचल' का प्रशंसक नहीं होते हुए भी राजेन्द्र यादव कहते हैं कि "परिवेश, वातावरण जीवित पात्र की तरह सामने खड़ा होकर भी अपना हक़ अकेले रेणु में ही माँगता है। " (रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ, भूमिका)।

विनोद शाही अपने लेख 'मैला आँचल' : भारत का जातीय यथार्थ यानी हिंदी स्वराज की विडम्बनामूलक अंतर्कथा" में लिखते हैं, उपन्यास के रूप में बड़ा होने के लिए यह जरूरी होता है कि उस उपन्यास के विषय–वस्तु का रचनात्मक रूप से इस्तेमाल किया गया हो। देखना यह पड़ता है कि किसी उपन्यास में आंचलिक तत्वों का इस्तेमाल उस उपन्यास की आंतरिक जरूरतों के मुताबिक़ हुआ है या नहीं ? यह भी जानना जरूरी होता है कि आंचलिक ब्योरे उस उपन्यास के अंतर्विकास में कहाँ तक मदद करते हैं ? इसी प्रकार विषय वस्तु को उपन्यास के कथानक और पात्रों के भीतर से प्रकट होने वाली वस्तु की तरह देखना पड़ता है। कथानक और पात्रों के आपसी रिश्ते को कथा स्थितियों के भीतर गहराती और आगे बढ़ाती है। परन्तु सबसे अधिक जरुरी बात है कि कोई उपन्यास अपने समय को इतिहास के भीतर से कैसे ग्रहण करता है ? और फिर उसे एक वैकल्पिक उपन्यास की तरह कैसे एक कथा का रूप देता है। इतिहास अपने आप में एक युगबोधक पृष्ठभूमि की तरह उपन्यास की जमीन का निर्माण करता है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और सभ्यतामूलक यथार्थ उस जमीन के विविध आयामों की तरह हमारे सामने आते हैं। परन्तु एक उपन्यास केवल इसलिए श्रेष्ठ नहीं हो जाता कि इसमें यह यथार्थ कितनी व्यापकता, विविधता, बहुलता और गहराई से चित्रित हुआ है। ये तमाम बातें इतिहास के किताबों में दर्ज़ होती है। इसलिए यथार्थ का ऐसा चित्रण मात्र भी उपन्यास की श्रेष्ठता का मूल और असल कारण नहीं माना जा सकता। उपन्यास उपन्यास तब बनता है, जब वह इन्हें जीने लायक वस्तु में बदलता है। "

विनोद शाही के उक्त विमर्श को यदि किसी उपन्यास का उपन्यास निर्मित होने और निर्मित होकर श्रेष्ठता ग्रहण कर सकने और श्रेष्ठ होकर आंचलिक होने की विभूति पा लेने की कसौटी मान ली जाय तो 'मैला आँचल' विगत सत्तर वर्षों की आलोचना और प्रशंसा झेलते हुए आज भी निष्कर्षतः एक श्रेष्ठ आंचलिक उपन्यास है। इसमें आज़ादी प्राप्ति के पहले से आज़ादी प्राप्त हो जाने के बाद तक की ऐतिहासिकता है, भारत के सम्पूर्ण ग्रामीण परिवेश की प्रातिनिधिक व्यापकता है, पिछड़े समाज, खासकर संथालों और किसानों की समस्याओं का बेपर्द चित्रण है और उनके दुखों के राजनीतिक उपयोग, उपेक्षा और उपहास का व्यवस्थापित स्वरुप है। 'बारहों बरन' के लोगों में व्याप्त मनु की चतुरवर्णी समाज–व्यवस्था से तैयार होता नवीन जातिव्यवस्था का व्युत्पन्न है। जातिवाद और अंधविश्वास से खाद–पानी ग्रहण करके वेदना, दुःख विक्षोभ भोगता समाज है। सवर्णों और समर्थों द्वारा दलित और आदिवासी समुदाय की औरतों का बलात भोग है और साथ ही साथ आदिवासी समुदाय के स्त्री–पुरुषों के संबंधों की उन्मुक्तता है। सामान्य मानुष में पैठती राजनितिक धूर्तता है। बालदेव, कालीचरण इत्यादि के मार्फ़त गाँव में पैंठ बनती दलगत राजनीति है। सब के सब तत्व हैं ही जो इसकी श्रेष्ठता और आंचलिकता का प्रमाणन कर रहे हैं ! फिर हीच कैसा ? इस हीच का खुलासा भी मैं विनोद शाही के उस लेख से कर देता हूँ। आगे चलकर वे एक और मापदंड रख दे रहे हैं– "यह भी संभव है कि उपन्यास अपने भीतर के संसार से अपनी जिस आत्मा को खोजता है उसका अर्थ ठीक वही न हो जो उपन्यासकार का मन्तव्य प्रतीत हो रहा हो। वह पाठक की अपनी निर्मिती भी हो सकती है परन्तु जब बात उपन्यास की आत्मा को खोजने की होती है तो उसका अर्थ यह होता है कि वहां उपन्यास अपनी समग्रता में अर्थ देता प्रतीत होता है। किसी अंचल विशेष के चित्रण पर केन्द्रित होने भर से उपन्यास की आत्मा को खोजा नहीं जा सकता। उपन्यास की आत्मा उपन्यास से संबद्ध अंचल के भीतर केवल प्रतिबिंबित होती है जबकि वस्तुतः वह उस अंचल के भीतर व्यंजित रहती है जो केवल उपन्यास की

अपनी निर्मिति होता है। " यानी वे यही कहना चाह रहे हैं कि आंचलिक कहलाने के लिए उपन्यास में अंचल के अमूर्तन को अपने पात्रों के भीतर प्रवेश कर 'आर्गेनिक' होना ही पड़ता है ताकि पात्र और परिस्थितियों के व्यवहार से उस अंचल का दुःख–दर्द, व्यथा–कथा, ताप–संताप, मूर्त मानवीय होकर पाठकों के सामने आ सके ? यदि हाँ तो मिला–जुला कर इन सत्तर वर्षों तक 'मैला आँचल' पर केन्द्रित तमाम बहस–मुबाहिसों के बाबजूद हम अब भी किसी एक निष्कर्ष तक पहुँच पाने की स्थिति में नहीं आए दिखते। फिर समस्या यह उठती है कि सभी पंडितों और प्रवीण विचारकों को समझ लेने के बाद हमें किस एक निष्पत्ति पर आकर ठहर जाना चाहिए। इसके लिए हम आज के एक प्रतिष्ठित और चर्चित समीक्षक मधुरेश की ओर देखते हैं जो अपने एक लेख 'आंचलिकता बनाम लोकचेतना में इसको लेकर एक गंभीर निष्कर्ष देते हैं। वे कहते हैं– "किसी अंचल विशेष को नायक बनाकर उस अंचल का नृतत्वशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करने की प्रकृति, उस अंचल की सांस्कृतिक, भगौलिक और ऐतिहासिक सत्ता को ही सर्वोपरी महत्व देने और प्रतिष्ठित करने की प्रवृति का विकास हिंदी में हुआ ही नहीं। "('हिंदी उपन्यास सार्थक की पहचान' पृष्ठ 143) यानी स्थानीय रंगत और सघनता से समृद्ध कर देने भर से कोई उपन्यास आंचलिक नहीं हो जाता जैसा कि आज भी विनोद शाही जैसे आलोचक मान रहे हैं। ऐसे में मधुरेश 'मैला आँचल' के लिए आंचलिकता की अपेक्षा 'लोक चेतना' पद पर ज्यादा जोर देते हैं जो अपनी व्यंजना और अर्थ विस्तार में निश्चय ही अधिक सार्थक है। उनके अनुसार "लोक चेतना का सीधा सादा अर्थ है लोक जीवन से गहरी और आत्मीय सम्पृक्ति अर्थात् उपन्यास के अंकित जनजीवन की समस्याओं, संघर्षों, जीवन पद्धि और आकांक्षाओं की सहज एवं कलात्मक अभिव्यक्ति। (वही, पृष्ठ 144)

कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में रेणु ने अपने समय और सभ्यता का ऐसा भित्तिचित्र प्रस्तुत किया है जो एक क्षेत्र विशेष के सानिध्य में देश के जनतांत्रिक आदर्शों के सम्मोहन से इसकी लोकतांत्रिक व्यवस्था की खोज के लिए विकल है। ऊपर के तमाम प्रकरणों, आलोचकों के व्यक्त मनोभावों, उनके द्वारा प्रस्तुत प्रशंसा–विरोधों से गुजरने के बाद हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि रेणु का 'मैला आँचल' के आंचलिक कहे जाने का विरोध तो संभव है, और संभव हुआ भी, और संभवतः इस कारण ही रेणु ने स्वयं भी अपने दूसरे किसी उपन्यास को, जो इसके बाद इन्हीं तत्वों के घाल–मेल से तैयार भी हुए हैं, दोबारा आंचलिक कहना उचित नहीं समझा। इस उपन्यास का महत्त्व फिर भी कहीं से भी कमतर नहीं है और मधुरेश के शब्दों में इस उपन्यास का महत्त्व "इसमें है कि उसने अकेले दम पर हिंदी में आंचलिकता की जड़ें रोपीं और बाकायदा एक आन्दोलन का सूत्रपात किया। ग्राम केन्द्रित उपन्यास हिंदी में रेणु से पहले भी लिखे गए और उनके बाद भी, लेकिन आंचलिकता के आन्दोलन ने पिछड़े और उपेक्षित क्षेत्रों के प्रति जिस उत्साह को जन्म दिया, उसका अपना ऐतिहासिक महत्त्व है। भारतीय राजनीति में दलित चेतना और जातियों के उभार की तरह ही पिछड़े, उपेक्षित, गरीब और जहालत से अभिशप्त अंचलों की तलाश का प्रस्थान विन्दु 'मैला आँचल' ही है। आंचलिकता की दृष्टि से उसकी यह कथित अपूर्णता भी हिंदी उपन्यास की नई दिशाओं और संभावनाओं की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। 'मैला आँचल' अधूरेपन की भव्यता और सार्थकता का एक विरल उदाहरण है। " ('मैला आँचल' का महत्व : 'सीढियों पर उपन्यास', पृष्ठ 169)

मरी समझ में अपने अस्तित्ववादी प्रभाव में 'मैला आँचल' आंचलिक उपन्यास हो या नहीं हो, लोक चेतना का एक ऐसा सुदृढ़ और भावुक (भी) उपन्यास है; जिसमें लोक भावनाएं और चेतनाएं आम आदमी के घिसे–पिटे अभिकथनों और व्याकुल व्यवहारों से मूर्खतापूर्ण और निरर्थक सा दिखते हुए गवाँरु भाषा में पांडित्यपूर्ण और सार्थक संवादों का ताना –बना बुनता है और अपने उद्गारों में गर्वधारित अपेक्षाओं, आकांक्षाओं, परंपरागत और आधुनिक विचारों से वर्तमान के कलुष के परिमार्जन की शक्ति धारता है। यह शक्ति स्पष्ट और सरल भाषा–शैली में 'गाँव–गंवारों' के साथ–साथ उनकी सपूर्ण पारिस्थितिकी की भी उनकी ही खुशबु और बदबू के साथ अभिव्यक्ति पाती है। लोक चेतना का ऐसा ज्वलंत प्रकाट्य हिंदी के अन्यत्र किसी भी उपन्यास मे अभी तक दुर्लभ है।

⁂

तमस उपन्यास का चरित्रांकन

डॉ. सुनील कुमार मानस*

भीष्म साहनी के उपन्यास तमस का भारतीय साहित्य में विशेष महत्त्व है। यह कृति केवल 1947 के विभाजन की ऐतिहासिक त्रासदी का वर्णन नहीं करती, बल्कि उस समय के समाज, राजनीति और सांप्रदायिक तनावों का गहन चित्रण भी प्रस्तुत करती है। उपन्यास की सबसे उल्लेखनीय विशेषता इसका चरित्रांकन है। साहनी ने पात्रों का चयन समाज के विभिन्न वर्गों, धर्मों और परिस्थितियों से किया है, जिससे कथा यथार्थ और प्रभावशाली बनती है। वे पात्र केवल घटनाओं को आगे बढ़ाने के साधन नहीं हैं, बल्कि उनकी आंतरिक मानसिकता, भावनात्मक द्वंद्व और नैतिक संघर्ष को भी उकेरा गया है। नत्थू, मुरादअली, शाहनवाज, हरनामसिंह, राजो जैसी विभिन्न पहचान और दृष्टिकोण वाले पात्र समाज की जटिलताओं और विभाजन की पीड़ा को सजीव रूप में सामने लाते हैं। साहनी ने अपने पात्रों के बाह्य आचरण और आंतरिक चेतना के द्वैत को प्रस्तुतकर मनोवैज्ञानिक यथार्थ को प्रभावशाली ढंग से उभारते हुए उन्हें पूर्ण मानवीय रूप प्रदान किया है। इस दृष्टि से तमस केवल ऐतिहासिक या सामाजिक दस्तावेज़ नहीं है, बल्कि भारतीय साहित्य में चरित्र चित्रण और मानवीय संवेदनाओं का अद्वितीय उदाहरण है।

उपन्यास में पात्रों का वर्गीकरण अत्यंत सुव्यवस्थित और अर्थपूर्ण ढंग से किया गया है। समग्रतः पात्रों को दो प्रधान वर्गों– मुख्य पात्र और गौण पात्र– में विभाजित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक यथार्थ की संपूर्णता को रेखांकित करने के लिए उपन्यासकार ने पात्रों को पुरुष और नारी पात्रों के रूप में भी संयोजित किया है। इस प्रकार पात्र–योजना न केवल कथानक को गति प्रदान करती है, बल्कि उपन्यास की वैचारिक संरचना को भी सुदृढ़ बनाती है।

पुरुष पात्रों में मुख्य तथा गौण– दोनों प्रकार के चरित्रों की सशक्त उपस्थिति है। नत्थू, मुरादअली, रिचर्ड, लाला लक्ष्मीनारायण, रणवीर हरनामसिंह, हयातबख्श, शाहनवाज, देवदत्त, रघुनाथ, जरनैल, मेहता, बख्शी, शंकरलाल और किशनसिंह जैसे पात्र उपन्यास के प्रमुख पुरुष चरित्र हैं। ये सभी पात्र अपने–अपने स्तर पर सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक यथार्थ को उजागर करते हुए कथा के केंद्रीय सूत्रों को आगे बढ़ाते हैं। इनके अतिरिक्त रोशनलाल, कश्मीरीलाल, अजीज, मास्टर रामदास, वानप्रस्थी मौलादाद, मीरदाद, करीमखान, एहसानअली, रमज़ान, इकबालसिंह आदि अनेक गौण पुरुष पात्र भी हैं, जो घटनाओं से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़कर उपन्यास को व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य प्रदान करते हैं। नारी पात्रों की भूमिका भी उपन्यास में कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। लीजा, नत्थू की पत्नी, बन्तो, जसवीरकौर, लक्ष्मीनारायण की पत्नी, रघुनाथ की पत्नी, अंकरा और राजो जैसे प्रमुख स्त्री पात्र करुणा, त्याग, सहनशीलता, भय और मानवीय संवेदना के विविध रूपों–स्वरूपों को सजीव बनाते हैं। इनके माध्यम से उपन्यासकार ने सांप्रदायिक उथल–पुथल के बीच स्त्री जीवन की पीड़ा और संघर्ष को मार्मिकता के साथ उकेरा है। इनके अतिरिक्त उपन्यास में उपस्थित अन्य सभी पात्र गौण की श्रेणी में आते हैं। यद्यपि इनका चरित्र–विकास पूर्ण रूप से नहीं हुआ है, तथापि इनके बिना कथानक की संरचना अधूरी भी रह जाती। ये गौण पात्र सामाजिक यथार्थ की पृष्ठभूमि निर्मित करते हुए कथा को विश्वसनीयता, गहराई और समग्रता प्रदान करते हैं। इस प्रकार उपन्यास की पात्र–योजना बहुआयामी, संतुलित और प्रभावशाली रूप में सामने आती है।

तमस में मनोविश्लेषणात्मक, संवादात्मक, नाटकीय, वर्णनात्मक तथा भावात्मक पद्धतियों का कुशल समन्वय दिखाई देता है। इसके पात्र कथा को बहुआयामी बनाते हैं, जबकि अनेक क्षणिक पात्र अपने वर्गीय यथार्थ और सामाजिक विद्रूपताओं को संकेतात्मक रूप में उद्घाटित भी कर देते हैं। इस उपन्यास में पारंपरिक नायक–नायिका का अभाव है; यहाँ भय, दहशत और संत्रास ही सर्वव्यापी सत्ता के रूप में

***विभागाध्यक्ष–हिंदी, सरकारी विनयन (आट्र्स) कॉलेज, बेचराजी–महेसाणा (गुजरात) 384415।**

उपस्थित हैं। अतः यह कहना समीचीन है कि तमस में आतंक ही वास्तविक नायक है, जो आरंभ से अंत तक कथा पर छाया रहता है। साहनी जी की चरित्र–चित्रण कला की गहराई को समझने के बाद अब हम 'तमस' के कुछ प्रमुख पात्रों का विस्तारपूर्वक विश्लेषण समेकित है–

नत्थू : परिस्थितियों का दास और एक बेबस इंसान :– नत्थू तमस का अत्यंत करुण, विवश और मानवीय पात्र है, जो समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़ा दिखाई देता है। एक निर्धन चमार के रूप में उसका जीवन अभावों, असुरक्षा और भय से घिरा हुआ है। अपनी दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण वह परिस्थितियों का दास बन जाता है और थोड़े से धन के लोभ में ऐसा कार्य करने को विवश होता है, जो न उसकी प्रकृति के अनुकूल है और न ही उसकी मानवीय संवेदना के अनुरूप।

मुरादअली पाँच रुपये का लालच और भय दिखाकर नत्थू से सुअर मरवाने का काम करवाता है। वस्तुतः नत्थू इस कृत्य के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं होता। वह स्वयं को इस जाल से निकालने का प्रयास करता है और मन ही मन सोचता है– "किस मुसीबत में जान फँस गई है। मुझे क्या लेना इस काम से! सलोतरी को सुअर नहीं मिलता तो न मिले, मेरी बला से। यह मेरे बस का नहीं है हुजूर, मैं यह काम नहीं कर सकता।" यह उद्धरण स्पष्ट करता है कि नत्थू स्वभाव से हिंसक नहीं है; गरीबी, भय और विवशता ही उसे इस अमानवीय कार्य तक पहुँचा देती है। भीतर चल रहा नैतिक द्वंद्व उसे मथता रहता है, परंतु परिस्थितियों के दबाव में वह हार मान लेता है।

नत्थू का हृदय मूलतः करुणा और संवेदना से भरा हुआ है। सुअर को मारने के बाद जब वह अपनी कोठरी से बाहर निकलता है और रास्ते में एक फकीर को गाते देखता है, तो मुरादअली से मिले पाँच रुपयों में से एक आना उसे दे देता है। यह घटना दर्शाती है कि उसके भीतर की मनुष्यता अभी जीवित है और वह अभावों के बीच भी दया का भाव नहीं खोता।

उसके चरित्र का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष पत्नी के प्रति उसकी निष्ठा और स्नेह है। गरीबी के बावजूद वह पारिवारिक मूल्यों से जुड़ा हुआ है। एक क्षण के लिए शराब के नशे में वेश्या के पास जाने का विचार आता है, किंतु तुरंत ही उसका मन बदल जाता है। वह सोचता है– "रंडी के पास जाऊँगा तो कड़वा बोलेगी। दो रुपये मोतिया रंडी को देने के बजाय, घरवाली के लिए कुछ ले जाऊँगा।" यह आत्मसंवाद उसके सरल, प्रेमपूर्ण और जिम्मेदार व्यक्तित्व को उजागर करता है।

दंगों की भयावह सच्चाई का बोध होते ही नत्थू भीतर से टूट जाता है। आत्मग्लानि और पश्चाताप उसे घेर लेते हैं। डॉ. प्रेमकुमार के शब्दों में– "नत्थू उपन्यास में बहुत समय तक रहता है। अपने वर्ग और जाति की अनेक विशेषताओं को उभारने में वह सक्षम है।" नत्थू उस निर्दोष मनुष्य का प्रतीक है, जो न बुरा है, न हिंसक, पर समाज के षड्यंत्रों में मोहरा बनकर एक बड़े सांप्रदायिक हादसे का कारण बन जाता है।

नत्थू की पत्नी : समर्पण और संवेदनशीलता की प्रतिमूर्ति :– तमस उपन्यास में नत्थू की पत्नी एक ऐसी भारतीय नारी के रूप में चित्रित है, जो अपने पति के जीवन–संघर्ष में मौन, परंतु सशक्त उपस्थिति बनाए रखती है। उसकी पहचान केवल एक गृहिणी या पत्नी तक सीमित नहीं है, बल्कि वह प्रेम, त्याग, धैर्य और कर्तव्यबोध से निर्मित एक पूर्ण मानवीय व्यक्तित्व है। उसका जीवन किसी निजी स्वार्थ से संचालित नहीं होता; वह अपने पति की सुरक्षा, मानसिक शांति और भलाई को ही अपने अस्तित्व का केंद्र मानती है।

पति के प्रति उसकी चिंता और संवेदनशीलता उपन्यास के अनेक प्रसंगों में उभरकर सामने आती है। जब एक रात नत्थू घर नहीं लौटता, तो वह सारी रात जागकर उसकी प्रतीक्षा करती रहती है। अगले दिन उसके लौटने पर उसका निःशब्द संतोष और राहत उसकी आंतरिक व्यथा और गहरे लगाव को व्यक्त करता है। वह उसके बिना भोजन नहीं करती। नत्थू के पूछने पर वह पहले सहज भाव से कहती है– "हाँ, खा लिया।" किंतु जब वह पुनः पूछता है, तो वह मुस्कराकर स्वीकार करती है कि उसने अब तक भोजन नहीं किया था, क्योंकि वह उसकी राह देख रही थी। यह प्रसंग उसके निश्छल प्रेम और आत्मनिवेदन का अत्यंत मार्मिक चित्र प्रस्तुत करता है।

नत्थू की पत्नी केवल भावुक नहीं, बल्कि विवेकशील और परिस्थिति–सजग स्त्री है। जब नत्थू उसे सुअर मारने की बात बताता है, तो वह क्षणभर के लिए भयभीत होती है, पर शीघ्र ही अपने धैर्य से स्थिति को सँभाल लेती है और उसे समझाती है– "तुमने सिर्फ सुअर को मारा है, मस्जिद के सामने तो नहीं फेंका, यह बात तुमने मुझे बताई, किसी और को मत बताना।" यह कथन उसकी व्यावहारिक बुद्धि और संकट के क्षण में संतुलन बनाए रखने की क्षमता को उजागर करता है। वह जानती है कि घबराहट स्थिति को और बिगाड़ सकती है, इसलिए वह नत्थू को भयमुक्त रखने का प्रयास करती है।

घरेलू दायित्वों के प्रति उसका आत्मसम्मान भी उतना ही सशक्त है। जब नत्थू व्याकुलता में स्वयं चाय बनाने लगता है, तो वह इसे अपने दायित्व और अस्तित्व पर आघात मानती है और दृढ़ स्वर में कहती है– "मेरे रहते तू चूल्हा जलाएगा, मैं मर न जाऊँगी!" तत्पश्चात स्नेहपूर्ण अधिकार से उसे रोकते हुए कहती है– "उठ जा, तुझे मेरे सिर की कसम!" यह संवाद उसके स्वाभिमान, प्रेम और कर्तव्यबोध का प्रभावशाली संकेत है।

नत्थू की पत्नी की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उसकी क्षमाशीलता है। जब उसे ज्ञात होता है कि नत्थू के कृत्य का उपयोग सांप्रदायिक दंगों को भड़काने में हुआ, तब भी वह उसे दोषी नहीं ठहराती। वह यह समझती है कि यह कृत्य उसकी इच्छा नहीं, बल्कि विवशता का परिणाम था। इस प्रकार नत्थू की पत्नी तमस में एक ऐसी नारी के रूप में प्रतिष्ठित होती है, जो प्रेम और धैर्य के सहारे टूटते हुए मनुष्य को संबल प्रदान करती है और मानवीय मूल्यों की रक्षा करती है।

रिचर्ड : कूटनीति का माहिर लेकिन असफल जीवनसाथी :– तमस उपन्यास में रिचर्ड का चरित्र एक ऐसे अंग्रेज प्रशासक के रूप में उभरता है, जो पद की दृष्टि से डिप्टी कमिश्नर होते हुए भी प्रशासनिक कार्यों में विशेष रुचि नहीं लेता। उसका वास्तविक लगाव इतिहास, भारतीय संस्कृति और कलाओं के अध्ययन में है। यही कारण है कि उसका कार्यालय मात्र सरकारी फाइलों का स्थान न होकर एक प्रकार का संग्रहालय प्रतीत होता है। लेखक उसके कक्ष का सजीव वर्णन करते हुए लिखता है– "चारों ओर दीवारों के साथ लगी अलमारियों में किताबें ठसाठस भरी थीं। अंगीठी के सामने शिलालेख का एक बड़ा–सा टुकड़ा लकड़ी के कुंदे के सहारे खड़ा था।" यह साज–सज्जा उसके भारतीय इतिहास और कला–बोध की गहरी रुचि को रेखांकित करती है।

रिचर्ड के व्यक्तित्व की एक विशिष्ट विशेषता उसकी यह क्षमता है कि वह अपनी विभिन्न भूमिकाओं को पूर्णतः पृथक रख सकता है। लेखक के शब्दों में– "एक काम को दूसरे काम से अलग रखना, एक भावना को दूसरी भावना से अलग रखना, उसके प्रशिक्षण और स्वभाव की विशिष्टता थी।" भारतीय संस्कृति के प्रति आकर्षण उसके प्रशासनिक निर्णयों को प्रभावित नहीं करता। बाहर से वह निष्पक्ष और संतुलित अधिकारी प्रतीत होता है, किंतु भीतर से उसकी नीतियाँ अंग्रेजी सत्ता को सुदृढ़ करने की दिशा में ही कार्यरत रहती हैं।

जब सांप्रदायिक तनाव के संदर्भ में विभिन्न शिष्टमंडल उसके पास पहुँचते हैं, तो वह अत्यंत धैर्य से उनकी बातें सुनता है, पर अंततः कोई ठोस समाधान प्रस्तुत नहीं करता। वह केवल औपचारिक आश्वासन देते हुए कहता है– "मुस्लिम लीग और काँग्रेस दोनों के नेता यहाँ मौजूद हैं। सरकार आपकी हर तरह से मदद करेगी।" यह कथन उसकी राजनीतिक चतुराई और जनता को भ्रमित करने की प्रवृत्ति को उजागर करता है।

जरनैल सिंह : निःस्वार्थ देशभक्त और अदम्य संघर्षशील व्यक्तित्व :– तमस उपन्यास में जरनैल सिंह का व्यक्तित्व अत्यंत सशक्त, स्मरणीय और वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध चरित्र के रूप में उभरता है। पाठकों से उसका प्रथम परिचय प्रभातफेरी के दृश्य में होता है, जहाँ वह 'लेफ्ट–राइट' करता हुआ दिखाई देता है। प्रथम दृष्टि में वह सनकी और विचित्र प्रतीत होता है, किंतु शीघ्र ही स्पष्ट हो जाता है कि यह सनक वस्तुतः उसकी गहरी देशभक्ति, आदर्शवाद और नैतिक दृढ़ता की अभिव्यक्ति है, जिसे समाज समझने में असफल रहा है।

उसकी सनक का बाह्य रूप उसके पहनावे में प्रतिफलित होता है। लेखक उसके वस्त्रों का सजीव चित्र खींचते हुए लिखता है– "लैम्प की रोशनी सबसे पहले उसके फटे जूतों पर पड़ी। ऊपर खसखस दाढ़ी, नुची–खुची मूंछें और सबसे ऊपर मुंगिया रंग की पगड़ी।" यह पहनावा साधारण नहीं, बल्कि उसके जीवन–संघर्ष और वैचारिक प्रतिबद्धता का प्रतीक है। वह लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में वॉलंटियर बनकर गया था और उसी समय से उसने यह वर्दी धारण कर रखी थी। जीवन की कठिन परिस्थितियों में भी उसने इस वर्दी को त्यागना स्वीकार नहीं किया। कभी अच्छे दिनों में वह उसे थोड़ा सँवार लेता और कभी विपन्नता में उसे धो तक नहीं पाता, किंतु उसके लिए यह वर्दी सम्मान और संघर्ष का प्रतीक बनी रहती है।

जरनैल सिंह का सबसे प्रभावशाली पक्ष उसका स्पष्टवाद और नैतिक साहस है। वह किसी भी स्थिति में सत्य कहने से नहीं डरता। अपने साथियों की कमजोरियों और पाखंड को उजागर करने में वह संकोच नहीं करता। कश्मीरीलाल के संदर्भ में उसका कथन– "मैं तुम्हारा पर्दाफाश करूँगा मैंने तुम्हें कुबड़े हलवाई की दुकान पर छाना–मुर्गी खाते देखा है"– उसकी निर्भीकता और दोहरे आचरण के प्रति असहिष्णुता को प्रकट करता है। तामीरी कार्य के समय जब कार्यकर्ता गंदी नालियाँ साफ करने से कतराते हैं, तब उसका उग्र स्वर– "हम करेगा! तुम गद्दार हो!"– उसके कर्मप्रधान राष्ट्रवाद को रेखांकित करता है।

जरनैल सिंह केवल नारेबाज़ देशभक्त नहीं, बल्कि हिंदू–मुस्लिम एकता का प्रबल समर्थक है। जब शहर दंगों की आग में जल रहा होता है और अधिकांश लोग भय से चुप हो जाते हैं, तब वह अकेला आगे बढ़कर निर्भीकता से भाषण देता है– "अंग्रेज की शरारत है, मैं जानता हूँ!... यह अंग्रेज की चाल है, मैं उसका भांडाफोड़ करूँगा!" वह जनता को समझाना चाहता है कि सांप्रदायिक फसाद औपनिवेशिक राजनीति का षड्यंत्र है।

अपने अंतिम भाषण में उसका स्वर और भी अधिक तीखा और करुण हो उठता है– "साहिबान, मैं आपसे कहता हूँ कि हिंदू–मुसलमान भाई–भाई हैं। और गांधीजी का फर्मान है कि पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा। मैं भी कहता हूँ– पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा!" किंतु उन्मादी भीड़ सत्य सुनने को तैयार नहीं होती। परिणामस्वरूप उसकी हत्या कर दी जाती है– "छड़ी कहाँ गई। और फिकरा खत्म किए बिना ही जहाँ जरनैल खड़ा था, वहीं ढेर हो गया।" यह दृश्य उसकी शहादत को अत्यंत मार्मिक बना देता है।

डॉ. प्रेमकुमार के शब्दों में– "उपन्यास का सर्वाधिक सबल और याद रहनेवाला पात्र जरनैल है।" वहीं डॉ. विवेकराय लिखते हैं– "जरनैल की शहादत का चित्र अत्यधिक द्रावक है।" वस्तुतः जरनैल सिंह केवल एक पात्र नहीं, बल्कि उन निःस्वार्थ देशभक्तों का प्रतीक है, जो सत्य, न्याय और मानवता के लिए अकेले पड़कर भी संघर्ष करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देते हैं।

मुरादअली : एक धूर्त और स्वार्थी चरित्र :– तमस उपन्यास के आरंभ में ही मुरादअली का परिचय एक ऐसे व्यक्ति के रूप में मिलता है, जिसकी धूर्तता, अवसरवादिता और स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति पूरे कथानक को निर्णायक दिशा देती है। वह प्रत्यक्ष रूप से हिंसा नहीं करता, किंतु उसकी योजनाएँ और साजिशें शहर को सांप्रदायिक दंगों की आग में झोंक देती हैं, जिनमें सैकड़ों निर्दोष लोग मारे जाते हैं। मुरादअली का चरित्र इस तथ्य को उजागर करता है कि समाज को सबसे अधिक क्षति पहुँचाने वाले लोग वही होते हैं, जो परदे के पीछे रहकर दूसरों को मोहरा बनाते हैं।

नत्थू जैसे निर्धन और विवश व्यक्ति का शोषण करने में मुरादअली को तनिक भी संकोच नहीं होता। वह पाँच रुपये का लालच देकर नत्थू से सुअर मरवाता है और यह झूठ फैलाता है कि यह काम सलोतरी साहब के लिए किया जा रहा है। उसकी चालाकी उसके शब्दों में स्पष्ट दिखाई देती है– "हमारे सलोतरी साहब को एक मरा हुआ सुअर चाहिए, डॉक्टरी काम के लिए। इधर पिगरी के सुअर बहुत घूमते हैं, एक सुअर को इधर कोठरी के अंदर कर लो, और उसे काट डालो।" नत्थू के हिचकिचाने पर वह उसे डराता है और पाँच रुपये उसकी जेब में जबरन डाल देता है। यह प्रसंग मुरादअली की निष्ठुरता और कुटिल बुद्धि को उजागर करता है।

मुरादअली भली–भाँति जानता है कि मस्जिद की सीढ़ियों पर सुअर का शव मिलते ही दंगे भड़क उठेंगे। उसकी योजना सफल होती है, किंतु जब शहर जलने लगता है, तब वह पूरी तरह अदृश्य हो जाता है। शराब के नशे में नत्थू का चिल्लाना– "हुजूर, आपने जो काम सौंपा था, वह हमने कर दिया!"– और मुरादअली का मौन रहकर वहाँ से खिसक जाना, उसके कायर और स्वार्थी स्वभाव को रेखांकित करता है।

बाहर से वह सभ्य और शांतिदूत प्रतीत होता है। अमन कमेटी बनने पर वही व्यक्ति माइक लेकर शांति का उपदेश देता दिखाई देता है। लेखक ने उसके बाह्य रूप का वर्णन करते हुए लिखा है– "शहर की कोई सड़क न थी, जिसके बीचों–बीच लोगों ने मुरादअली को चलते न देखा हो... साँप की सी छोटी–छोटी पैनी आँखें।" मुरादअली का चरित्र इस भयावह सत्य को सामने लाता है कि साम्प्रदायिकता फैलाने वाले लोग अक्सर स्वयं को बचाकर निर्दोषों को विनाश की ओर धकेल देते हैं।

हरनामसिंह : सांप्रदायिक हिंसा का शिकार :– तमस उपन्यास के दूसरे खंड में हरनामसिंह का चरित्र अत्यंत करुण और मानवीय संवेदना से परिपूर्ण रूप में उभरता है। वह ढोक इलाहीबख्श में चाय की दुकान चलाने वाला एक साधारण, सुलझा हुआ और आस्थावान व्यक्ति है, जिसकी पहचान उसकी ईमानदारी और धार्मिक निष्ठा से जुड़ी है। अपने 'वाहे गुरु' पर उसका अटूट विश्वास उसे विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य और संयम प्रदान करता है। जब गाँव में सांप्रदायिक हिंसा भड़कती है और उसकी पत्नी बन्तो वहाँ से निकलने का आग्रह करती है, तब उसका कथन– "यदि किसी ने हमला किया तो दुकान, मकान और अपने–आपको भी उसके हवाले कर देंगे..."– उसके आत्मविश्वास और नियति–बोध को प्रकट करता है।

हरनामसिंह बार–बार अपने विश्वास को इस पंक्ति में अभिव्यक्त करता है– "जिसके सिर पर उपरि तूं तु आमी, सो दुःख केसो पावे।" लेखक इस आस्था की शक्ति को रेखांकित करते हुए कहता है– "तर्क का जवाब तो तर्क में दिया जा सकता है, पर विश्वास का जवाब तर्क के पास नहीं है।" किंतु यही अडिग आस्था उसे कठोर यथार्थ से नहीं बचा पाती। जब करीमखान यह कह देता है कि वे अब उसकी रक्षा नहीं कर सकते, तब विवश होकर हरनामसिंह और बन्तो को अपना घर छोड़ना पड़ता है। पीछे मुड़कर वे देखते हैं कि बलवाइयों ने उनकी दुकान और मकान को लूटकर आग लगा दी है। इस क्षण उनकी पीड़ा को लेखक अत्यंत मार्मिक ढंग से व्यक्त करता है– "अपने घर में से उठते हुए शोले जरूर ही किसी दूसरे के घर में से उठनेवाले शोलों से भिन्न होते होंगे।" यह पंक्ति उनकी असहायता और टूटते हुए संसार का सघन चित्र उपस्थित करती है। आश्रय की तलाश में वे एक अन्य गाँव पहुँचते हैं, पर वहाँ भी स्थिति विडंबनापूर्ण है। जिस घर में उन्हें शरण मिलती है, उसी का मुखिया उनकी दुकान को लूट चुका होता है। संदूक खुलते देख हरनामसिंह का कहना– "एहसानअली, ताला क्यों तोड़ते हो? ये रही इसकी चाबियाँ.."– उसके नैतिक साहस का परिचायक है। स्थिति तब और भयावह हो जाती है जब रमज़ान कुल्हाड़ी लेकर उसे मारने दौड़ता है, किंतु पहचान होते ही उसके हाथ काँपने लगते हैं। लेखक लिखता है– "दो–तीन बार रमज़ान ने कुल्हाड़ी उठाने की कोशिश की, पर कुल्हाड़ी हाथ में रहते भी, उसे उठा नहीं पाया।" यह दृश्य दर्शाता है कि हिंसा और घृणा के बीच भी मानवता की एक क्षीण रेखा जीवित रहती है।

हरनामसिंह का चरित्र आस्थावान और साहसी मनुष्य की उस विवशता का प्रतीक है। डॉ. प्रेमकुमार के अनुसार– "हरनामसिंह, उस विवशता को अंकित करता है, जो सांप्रदायिक आग की लपटों में सीधे जला–झुलसा है।" यह चरित्र सांप्रदायिकता के विनाशकारी प्रभावों को गहराई से उजागर करता है।

राजो : मानवीय भावनाओं से युक्त महिला :– राजो का चरित्र उपन्यास में सांप्रदायिक उन्माद के अंधकार के बीच मानवीय संवेदना की उजली रेखा के रूप में उभरता है। एक मुस्लिम महिला होते हुए भी वह मज़हब और जाति की सीमाओं को अस्वीकार कर बेसहारा सिख दंपति– हरनामसिंह और बन्तो– को अपने घर में शरण देती है। यह निर्णय उसके लिए अत्यंत जोखिमपूर्ण है, क्योंकि उसे पूरा बोध है कि यदि उसके बेटे रमज़ान या अन्य परिजनों को इसकी जानकारी हो गई, तो न केवल शरणार्थियों बल्कि उसकी अपनी जान भी संकट में पड़ सकती है। इसके बावजूद वह करुणा और दया के मार्ग से विचलित नहीं होती।

राजो का मानवीय दृष्टिकोण उस समय और अधिक स्पष्ट हो जाता है, जब वह दोनों को लस्सी पिलाने का आग्रह करती है। उनके संकोच पर वह सहज भाव से कहती है– "तुम्हारे पास कोई बर्तन हो तो उसमें डाल लो, नहीं तो मैं पण्डित के यहाँ से तुम्हारे लिए दो बर्तन ले आऊँगी।" यह कथन उसके परम्परा और मानवतावादी सोच को उद्‌घाटित करता है, जहाँ धार्मिक शुचिता से अधिक मनुष्य की पीड़ा महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि वह पति और पुत्र के भय से उन्हें जाने को कहती है, पर उनका विदा होना उसके हृदय को द्रवित कर देता है और वह व्याकुल होकर कह उठती है– "न जाओ जी, रुक जाओ, सांकल चढ़ा दो३ जो होगा, देखा जाएगा।"

राजो धार्मिक प्रवृत्ति की स्त्री है, किंतु उसका धर्म कर्मकांड नहीं, बल्कि सेवा और सहानुभूति है। जब उसकी बहू अकरां काफिरों को पनाह देने का विरोध करती है, तो वह दृढ़ स्वर में उत्तर देती है– "तू चुप कर, कोई बदनसीब आए तो क्या मैं उसे धक्का देकर निकाल दूँ?" इस कथन में उसकी निर्भीक मानवीय चेतना अभिव्यक्त होती है। साथ ही वह केवल भावुक नहीं, विवेकशील भी है। संभावित खतरे को समझते हुए वह हरनामसिंह से बंदूक ले लेती है और कहती है– "जब तुम जाओगे, तो मैं तुम्हारी बंदूक लौटा दूँगी।"

राजो को यह भी ज्ञात है कि सिखों को शरण देना उसके लिए जानलेवा हो सकता है, इसलिए वह रात के अंधेरे में दोनों को सुरक्षित गाँव की सीमा तक पहुँचाती है। विदा करते समय बन्तो को जेवरों की पोटली देते हुए वह कहती है– "लो बहन, ये तुम्हारे कुछ जेवर हैं।" इस निःस्वार्थ कृत्य से हरनामसिंह और बन्तो भावविभोर हो उठते हैं। राजो का चरित्र करुणा, त्याग और साहस का ऐसा प्रतीक है, जो सांप्रदायिकता की विभीषिका में भी इंसानियत की लौ को बुझने नहीं देता।

शाहनवाज : दोहरी शख्सियत का मालिक :– शाहनवाज़ का चरित्र तमस में सांप्रदायिकता के जटिल और विरोधाभासी मनोविज्ञान को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से उद्‌घाटित करता है। एक मुस्लिम होते हुए भी उसका व्यवहार हिंदुओं के प्रति सौहार्दपूर्ण है। वह आर्थिक रूप से संपन्न है, प्रशासनिक तंत्र में उसकी पहुँच है और संकट के समय भयभीत हिंदू परिवारों को मुस्लिम बहुल क्षेत्रों से सुरक्षित स्थानों तक पहुँचाने में सक्रिय भूमिका निभाता है। इस कारण उसकी पहचान एक मददगार, दोस्तपरवर और प्रभावशाली व्यक्ति के रूप में स्थापित होती है।

लेखक उसके व्यक्तित्व का चित्रण करते हुए कहता है– "रोबीला जवान, छाती तनी रहती, तुर्रा लहराता रहता, बूट चमचमाते रहते, सदा धुले–धुले कपड़े पहनता था। ईमान से, यह किसी लड़की की तरफ देखकर मुसकरा दे, तो वह मुसकराए बिना नहीं रह सकती।" यद्यपि समय के साथ वह अधिक गंभीर और दुनियादार हो गया है, फिर भी उसका मिलनसार स्वभाव और सामाजिक आकर्षण बना रहता है। उसकी दोस्तपरवरी उसके चरित्र की केन्द्रीय विशेषता है, जो उसे भरोसेमंद बनाती है।

जब उसे लाला लक्ष्मीनारायण के समधी से ज्ञात होता है कि लालाजी अपने परिवार को सुरक्षित स्थान पर ले जाना चाहते हैं, तो वह तुरंत गाड़ी लेकर उन्हें वहाँ पहुँचा देता है। इसके बाद वह अपने बचपन के मित्र रघुनाथ से मिलने जाता है। रघुनाथ की पत्नी के आग्रह पर वह उनके पुराने मकान से जेवरों का डिब्बा लाने के लिए सहर्ष तैयार हो जाता है। यह प्रसंग उसकी निस्वार्थता को रेखांकित करता है।

परंतु रघुनाथ के घर पहुँचकर उसका दूसरा, भयावह पक्ष सामने आता है। नौकर मिलखी की उपस्थिति और आसपास के सांप्रदायिक वातावरण का प्रभाव उसके भीतर संचित विष को जगा देता है। लेखक के शब्दों में– "न जाने ऐसा क्यों हुआ। वह विष की तरह उसके भीतर घुलता जा रहा था।" आवेश में वह मिलखी को इतनी जोर से लात मारता है कि वह गंभीर रूप से घायल हो जाता है। यह हिंसक कृत्य उसके उदार मुखौटे को चकनाचूर कर देता है।

इसके बाद रघुनाथ के घर जाकर वह सहज भाव से कहता है कि मिलखी सीढ़ियों से गिर गया है और जेवरों का डिब्बा सौंप देता है। उसका शांत और चमकता चेहरा देखकर रघुनाथ की पत्नी उसे "पुण्यात्मा" समझती है। यही विडंबना उसके चरित्र की त्रासदी को गहरा करती है। शाहनवाज़ का चरित्र

यह स्पष्ट करता है कि सांप्रदायिक हिंसा में केवल कट्टरता नहीं, बल्कि व्यक्ति के भीतर छिपी मानसिक ग्रंथियाँ और परिस्थितियाँ भी निर्णायक भूमिका निभाती हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भीष्म साहनी के उपन्यास तमस के पात्र केवल कथानक की आवश्यकताओं तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे विभाजन की त्रासदी, सांप्रदायिकता और सामाजिक असमानताओं के सजीव प्रतीक हैं। ये पात्र यथार्थपरक और मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण हैं, जो समाज के विभिन्न वर्गों, धर्मों और दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। नत्थू जैसे निर्धन और विवश व्यक्ति समाज की कमजोरियों और भौतिक व मानसिक असमानताओं को उद्घाटित करते हैं, जबकि मुरादअली और लक्ष्मीनारायण जैसे पात्र राजनीतिक स्वार्थ और अवसरवाद के कारण सांप्रदायिक तनाव को बढ़ाने का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। शाहनवाज और हरनामसिंह जैसे पात्र आंतरिक संघर्ष और नैतिक द्वंद्व के माध्यम से मानवीय मूल्यों की रक्षा का संदेश देते हैं, वहीं राजो, बन्तो और लीजा जैसी स्त्रियाँ साहस, करुणा और परिवार की रक्षा में नारी शक्ति की मिसाल पेश करती हैं।

इन पात्रों के माध्यम से साहनी ने स्पष्ट किया है कि सांप्रदायिक हिंसा केवल धार्मिक मतभेद का परिणाम नहीं होती, बल्कि इसके पीछे सामाजिक, राजनीतिक और वर्गीय कारण भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पात्रों की यथार्थपरकता, मनोवैज्ञानिक द्वंद्व और मानवीय संवेदनाएँ उन्हें साहित्यिक रूप से विशिष्ट बनाती हैं। तमस के पात्र न केवल उपन्यास को प्रभावशाली बनाते हैं, बल्कि भारतीय सामाजिक इतिहास और विभाजन की जटिलताओं का मूल्यवान दस्तावेज भी प्रस्तुत करते हैं। इसके माध्यम से पाठक यह समझ पाते हैं कि न्याय, सहानुभूति और मानवीयता के मार्ग पर चलते हुए समाज को संवारा और समझा भी जा सकता है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. तमस– भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. उपन्यासः कला और सिद्धांत (संपादकः विनोद तिवारी, अजय आनंद), अनन्य प्रकाशन, दिल्ली–110032, वर्षः 2016
3. कालजयी उपन्यास : ममता देवी, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली–110002, वर्षः 2018
4. समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष : डॉ. अर्जुन चव्हाण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–110002, वर्षः 2012
5. समकालीन हिंदी उपन्यासः दशा और दिशा : डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, वर्षः 2018
6. समकालीन हिंदी उपन्यासः समाज और संवेदना : संपादकः डॉ. वी. के. अब्दुल जलील, सह–संपादकः डॉ. पी. रवि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–110002, वर्षः 2017
7. भारत–विभाजन और हिंदी उपन्यास : हरियश, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली–110015, वर्षः 1986
8. भीष्म साहनीः व्यक्ति और रचना : राजेश्वर सक्सेना, प्रताप ठाकुर (संपादक), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–110002, वर्षः 1982
9. हिंदी उपन्यास का विकास : मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्षः 2014
10. हिंदी उपन्यास का इतिहास : गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–110002, वर्षः 2016
11. बेवसाइट लिंक : https://www.hindikunj.com/2024/11/tamas-upanyas-ki-samiksha-bhisha

मीराबाई का काव्य : सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रतिरोध

चंदन कुमार*

सामाजिक–सांस्कृतिक प्रतिरोध हेतु जो क्रान्ति की आग जलाते हैं, उन्हें बदनाम करने की साजिश भी सामाजिक कठमुल्लों आदि के द्वारा होने लगती है। मीरां भी दुष्ट राणा और उसके पालतू गुणों द्वारा बदनामी का शिकार होने लगी, लेकिन वह जानती थी कि उसके बदनामी की आग उसी प्रकार उसे मर्यादित करेगी, जैसे प्रज्ज्वलित आग स्वर्ण को कुन्दन बना देती है। मीरां भी खरा सोना ही थी। वह स्वजनों के नफरत की आग में भी 'मेरो तो गिरिधिर गोपाल, दूसरो न कोई। जाके सिर मोर–मुकुट मेरो पति सोई 'सत्य–निनादित गीत को गाती रही। उन्होंने 'निन्दक नियरे राखिए' की टेक पर अपने प्रताड़कों की प्रताड़ना भी नाचती–गाती हुई सहती रही। देवर राणा द्वारा दी गयी पीड़ा को भी सहती हुई उन्होंने राणा को चेतावनी दे लिखा–

"राणा जी म्हाने या बदनामी लगे मीठी।
कोई निन्दो कोई बिन्दो मैं चलूँगी चाल अनूठी।।''

वास्तव मीरा ने अनूठी चाल, जिस चाल ने उसे भक्तिनी, प्रेम–दीवानी खिताबों से ऊपर उठकर सामाजिक–सांस्कृतिक–प्रतिरोध क्रान्ति का आधार बन गयी और सफल भी रही।

सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतिरोध का मूल
सिद्ध मीराबाई हैं, आत्म–क्रांति का फूल।[1]

आत्मिक क्रांति ही सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतिरोध का सशक्ताधार है। आत्मिक हुंकार से ही शरीर और मन से आबद्ध कुत्सित परम्पराएँ और अंधास्था एवं अंधविश्वास से विनिर्मित सामाजिक और सांस्कृतिक–रीति–रिवाजों के पत्थरों को चूरकर सत्य सात्विक और शाश्वत सुमन प्रस्फुटित किए जा सकते हैं।

इस विश्वजनीन अवधारणा के आलोक में ही जब वैष्णव भक्तिनी, प्रेम–विधायिका, कृष्ण–दीवानी मीराबाई को देखने का प्रयास किया जाएगा, तभी भक्तिनी का क्रान्तिकारी व्यक्तित्व सत्य–निनादित स्वरूप में प्रकाशित हो सकता है। वस्तुतः निर्गुण भक्ति–साहित्य में जिस प्रकार संत कबीर को क्रान्तिकारी सिद्ध किया जा चुका है, वैसे ही आत्मिक प्रेम–प्रकाशिका मीराबाई भी क्रान्तिकारिणी सिद्ध होती है। जिस प्रकार कबीर ने अंधविश्वास, अंधास्था एवं अनाचारों को अपनी वाणी के माध्यम से दूर करने का बीड़ा उठाया, उसी प्रकार नारी–मर्यादा के रक्षार्थ मीराबाई अपने व्यक्तित्व और कतृत्व के माध्यम से सामजिक और सांस्कृतिक–परिवर्तन की मशाल जलाई।

मीरा धीरा है, गम्भीरा है, वीरा है। जो धीर, वीर, गम्भीर होते हैं, वही क्रान्तिकारी तूणीर के सफल तीर होते हैं। मीरा मात्र नहीं कृष्ण–प्रेम का झूला है। वह तो सामाजिक–सांस्कृतिक–क्रान्ति का मूला है। हिंदी साहित्येतिहास के भक्तिकाल में ऐसे भी कवि–कवयित्री हुए हैं, जिन्होंने सम्प्रदाय विशेष के पिंजड़े में रहना स्वीकार नहीं किया, अपितु उन्होंने प्यार किया। जो वास्तव में किसी से आत्मिक प्यार करते हैं, वो कहीं भी किसी से नहीं डरते हैं। डरनेवाले कभी भी नहीं लड़ते हैं। वस्तुतः प्यार निर्भीक बना देता है।

भारतीय जंगे–आज़ादी के भी जो सिपहसालार हुए, क्रान्तिकारी हुए, उनमें तक़रीबन तमाम किसी न किसी व्यक्ति के प्रेम–पाश में भी आबद्ध रहें। शहीदे–आजम भगत सिंह हों या चन्द्रशेखर आजाद, इन्होने किसी से व्यक्तिगत प्रेम अवश्य किया और निडर हो गए। प्यार निडरता का सशक्तार है।

प्रेम–विमर्शक श्री मुश्ताक अहमद अंसारी भी प्रेम–दीवानी मीरा के कृष्ण–प्रेम को रेखांकित करते हुए लिखा है–"यह सत्य है कि प्रेम में आँसू कम व् विरह की वेदना के अवसर अधिक हैं, प्रेम का तो काँटों में बसेरा होता है, फिर भी प्रेम सदा त्याग के भाव से उद्वेलित कुछ भी करने को तत्पर है। प्रेम धैर्य भी है, प्रेम अधेर भी।.......प्रेम एक से होता है, तो वह एक ही होकर रहता है। प्रेम पूजा है, भक्ति है, आराधना है, प्रेममय

***सहायक प्रोफेसर, सेंट पॉल टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, बीरसिंहपुर, समस्तीपुर (बिहार) 848102**

जन मीरा का श्याम है, तो सीता का राम है। प्रेम–दीवानी मीरा के प्रेम का दर्द कोई नहीं जानता, वह प्रेम करती है, किन्तु उसका कृष्ण उसे नहीं मिल पाता।......मीरा दीवानी है, प्रेम में इसे विरह–वेदना मिली है।"[2]

"मैं गर ऐसा जानती, प्रेम किए दुःख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रेम न कीजे कोय।।"[3]

लेकिन विरह प्रेम को ही कवच बनाकर कूद पड़ी, सामाजिक–सांस्कृतिक–प्रतिरोधक्रान्ति की लपलपाती हुई आग में।

कवयित्री मीरांबाई कृष्ण–प्रेम–भक्ति और विरह के पदों को लिखतीं ही नहीं हैं, अपितु वे कृष्ण–भक्त सूरदास और चैतन्य महाप्रभु की तरह एकतारा बजाती हुई गाती और नाचती भी है। यही कारण है कि हिंदी समालोचक कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध'ने भी मीरा को कृष्ण भक्त कवियों में मीरा को काव्य–कोकिला कहते हुए स्पष्ट किया है कि "इसकी जीवनी भी असंदिग्ध नहीं है। इसने लोक–लोज, वंश–मर्यादा आदि को भक्ति के आगे त्याग दिया।"[4] त्यागता वही है, जो निर्भीक और क्रान्तिकारी विचारधारा का होता है। मीरा निर्भीक थी। जो निर्भीक होते है, वही क्रान्ति का बीजभी बोते हैं। मीरा ने विद्रोह किया, दकियानूसी विचार से, स्वर्थाधारित राज–परिवार से। उन्होंने विद्रोह किया, अंध विश्वास और अंधास्था जनित समाज से, सड़ीगली संस्कृति से। मानवता विहीन परम्पराओं से, खोखले रीति–रिवाजों से और उसमें इन्हें पूर्ण सफलता भी प्राप्त हुई। वस्तुतः क्रन्तिकारी विद्रोही स्वभाव के होते ही है। भीषण दुःख के दलदल और दुर्दिनाग्नि की लपलपाती लपटों में लिपटकर भी अत्याकुल होकर नहीं रोते हैं। मीरा भी डरकर नहीं रोयी। हाँ अपने प्राण प्यारे प्रेमी–पति कृष्ण के विरह प्रेम भावुकता के शिखर पर रोयी, और न ही सामाजिक और सांस्कृतिक–परिवर्त्तन की क्रान्ति को पूर्णता की बेदी तक पहुँचाए बिना वह कृष्ण में तल्लीन होकर चिर निद्रा में सोयी। वस्तुतः उन्होंने सामाजिक–सांस्कृतिक–प्रतिरोधक्रान्ति सहित शुद्ध प्रेम–क्रान्ति का भी शंखनाद किया।

सम्प्रदाय–निरपेक्ष सामाजिक–सांस्कृतिक–परिवर्त्तन कारिणी कवयित्री मीरांबाई की जन्म–तिथि के संबंध में पर्याप्त मतभेद है, जिसका अंतराल 1403 ई. से 1516 ई. तक फैला हुआ है। इस प्रसंग में डॉ. नगेन्द्र / डॉ हरदयाल ने लिखा है– "मीरांबाई के जन्म के सम्बन्ध में प्रायः निश्चित हो चुका है कि उनका जन्म 1504 ई. में और मृत्यु 1558 से 1563 ई.के मध्य हुई।"[5] तिथियों का निर्धारण होते ही मीरां–काल के अंतराल में जब हम तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक का अध्ययन करेंगे, तभी मीरांबाई के परिवर्तन–क्रान्ति का सही मूल्यांकन कर सकते हैं। मीरां की जन्म–तिथि की तरह उनके जन्म–स्थान और वंश के सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है। सर्व सम्मत मान्यता है कि उनका जन्म राजस्थान के 'मेड़ता' के निकटवर्ती ग्राम 'कुड़की' में राठौर वंश की मेड़तिया शाखा में हुआ था। इस शाखा के मूल राव दूदा थे। मीरां राव दूदा के पुत्र रत्न सिंह के घर में पैदा हुई थी। मीरां के पिता रत्न सिंह को बारह गाँवों की जागीर प्राप्त थी, लेकिन मीरां अधिक दिनों अपने जन्म–गाँव में नहीं रह पा क्योंकि दो वर्ष की आयु में ही उनकी माता का अवसान हो गया। जागीरदार रत्न सिंह अहर्निश युद्धरत रहने के कारण पुत्री के पालन–पोषण में असमर्थ हो गए। इस कारण दादा राव दूदा मीरां को अपने पास मेड़ता ले आए। राव दूदा तलवार के ही धनी नहीं थे, अपितु वे परम वैष्णव भक्त भी थे। निरंतर युद्ध और मृत्यु से रक्तरंजित होली खेलने वाले राजपूतों के परिवार में उन दिनों शिक्षा–दीक्षा का कोई विशेष प्रबंध नहीं था। इसलिए पारिवारिक वातावरण, समाज में प्रचलित लोकगीत तथा दरबार में आनेवाले सिद्ध संन्यासियों अथवा रमते जोगियों के भक्तिमय गायन और उपदेश ही मीरां की पाठशाला बन गए। लोकगीतों की मधुरता एवं कलाप्रियता ने मीरां को अनायास ही संगीत–प्रेमिका बना दिया, वहीं दूसरी और साधु–संगती के प्रभाववश उनका ह्रदय भक्ति और वैराग्य की और आकृष्ट हुआ, जिसकी अनुगूँज उनकी रचनाओं में आदियोपरांत विदयामान है। इस प्रकार से मीरां बाल्यावस्था से ही श्रेष्ठ गायिका के रूप में ख्याति प्राप्त करने लगी।

चित्तौड़ के राजा राणा सांगा के जेष्ठ पुत्र भोजराज से मीरांबाई का विवाह 1516 ई. में हुआ। मीरां ने अपने पति में ही लीला पुरुषोत्तम कृष्ण की छवि देख ली और उनसे आत्मिक प्रेम करने लगी। भोजराज ने भी मीरां में राधा की छवि देखकर रास रचाने लगे, जिसके कारण दोनों के बीच यौन–समागम नगण्य ही हुआ। दुर्भाग्यवश वैवाहिक जीवन के सात वसंत ही बीते कि मीरां विधवा हो गयी। जिसके कारण मीरां के

अंतर्मन में विदयामान अबतक अप्रकट अंतः संघर्ष प्रकट होकर उनके जीवन का अंग बन गया। जिसके कारण उसने सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतिरोधक्रान्ति का बिगुल तत्कालीन प्रथा के अनुसार सती नहीं होकर फूँक दी। तहलका मच गया–चित्तौड़ में। हाहाकार मच गया–पूरे राजस्थान में। रेगिस्थान की तत्प बालुका राशि की तरह वहाँ के परम्परावादियों का ह्रदय झुलसने लगा। विधवा बहू को जलाए बिना बुझी चिता की राख भर गया, तमाम खोखले पारम्परिक रीति–रिवाजों को ढोनेवाले अंधविश्वासियों की आँखों में । तक़रीबन तमाम अंधास्थाधारियों ने मीरां को कोसना शुरू कर दिया, लेकिन मीरांबाई अपनी टेक पर अडिग ही रही। उसने स्वयं को विधवा मानने से इंकार कर दिया। वह स्वयं को अजर–अमर चिर सुहागिनी ही मानती रहीं। उन्होंने लिखा–

"जग–सुहाग मिथ्या री सजनी, हांवा हो मिट जासी।
वरन् करयां हरिअविनाशीम्हारों काल–व्याल न खासी।।"[6]

राजरानी मीरां की यह क्रान्ति मेवाड़ के राजघराने के लिए भी अप्रत्याशी थी, लेकिन अपनी धुन में लगी रही। वह निश्चिंत भाव से साधु–संगति और भक्ति–पूजा एवं भजन गाने में अपना समय व्यतीत करने लगी। दूसरी ओर राणा सांगा के निधनोपरांत उनके उत्तराधिकारी विक्रम सिंह को भी मीरा की बगावत असहय लगने लगी। उसने मीरां को अनके यातनाएँ दीं, उसे यह कहते हुए विष से भरा प्याला भी दिया गया कि तम्हारे कृष्ण तुम्हारे साथ रहते हैं, तब गरल भरा प्याला पी जाओ। मीरा मुस्कुराते हुए विष–भरा प्याला खाली कर दिया और मुस्कुराती हुई वहाँ से हट गयी। विक्रम सिंह भी मीरां से डरने लगा। कहा जाता है कि कुछ समयोपरांत जब मीरां की परेशानियाँ उसे तंग–तबाह करने लगीं, तब राजा जयमल और उनके पिता वीरम देव ने मीरां को मेड़ता बुला लिया लेकिन जोधपुर–नरेश मालदेव के लगातार भीषण आक्रमण के कारण राजा वीरम देव की स्थिति अत्यंत जर्जर हो गयी । इसके कारण संघर्षिणी मीरांबाई पुष्कर से वापस होती हुई ही साधुओं की टोली में प्रेमी–पति कृष्ण–भजन को गाती हुई वृन्दावन पहुँच गयी। वहाँ पहुँचते ही इनकी कृष्ण–भक्ति धारा मधुरोपासना–रस में परिवर्तित हो गयी। वृन्दावन में ही मीरां की मुलाकात कृष्णभक्त जीव गोस्वामी से हुई, जो इनकी प्रेम–निष्ठता को देखकर अभिभूत हो गए। वहाँ अचानक मीरां को आभास हुआ कि उनके प्रियतम कृष्ण तो वृन्दावन त्याग कर द्वारिका में विराजमान हो गए। वह द्वारिका पहुँच गयी। वहीं रणछोड़ जी मंदिर में कृष्ण–प्रेम–विरह और भक्ति का गीत भजन गाती और नाचती हुई अपने शेष जीवन को बिताने लगी। कहते हैं कि अंतकाल में वह कृष्ण–काया में ही समाहृत हो गयी। क्रान्तिकारिजी मीरां–प्रणीत पूर्ण–अपूर्ण रचनाओं की संख्या कुल ग्यारह बतायीजाती है। यथा गीत–गोविन्द की टिका, 'नरसिंह जी का मायरा (माहेरो) राग सोरठ का पद, मलार राग, राग गोविन्द, सलभामनु, रूराणं मीरां के गरबी, रुक्मणी मंगल, नरसी मेहता की हुण्डी, चरित, एवं स्फुट पद। विविध अनुसंधानकों ने स्पष्ट किया है कि तमाम रचनाओं में केवल मीरां के 'स्फुट पद ही उनकी प्रामाणिक हैं। उनके स्फुट पद ही 'मीरांबाई की पदावली' के रूप में प्रकाशित है।

प्रेमोन्मादिनी मीरा के पदों से स्पष्ट होता है कि उन्होंने सामाजिक–सांस्कृतिक–परिवर्त्तन की क्रान्ति में सफलता प्राप्त की। वस्तुतः मीरां कालीन रूढिगत सामंती समाज में नारियाँ पराधीन थीं। मीरां ने पराधीनता के पाश का नाश कर दिया। उनके समय में वर्ण–व्यवस्था भी मानवता को झुलसा रही थी। मीरांबाई ने चमार जाति के संत रविदास को गुरु बनाकर और विविध निम्न जाति के साधु–संतों की टोली में शान से रहकर क्रूर वर्ण–व्यवस्था को भी छिन्न–भिन्न कर दिया। महिला–प्रताड़ना और गुलामी को स्पष्ट करते हुए डॉ.विश्वनाथ त्रिवारी ने लिखा है कि "वस्तुतः सामंती समाज में शूद्र और स्त्री की पराधीनता की जड़े बहुत गहरी थी। यह सबश्रम के शोषण और सम्पत्ति के एकाधिकार के कारण ही होता था'।[7] अस्तु, हम कह सकते है कि मीरां ने सामंती रूढ़ियों के प्रति दिल से विद्रोह किया, जिससे सामाजिक–सांस्कृतिक–प्रतिरोधक्रान्ति के रूप में स्थापित किया जा चुका है। मीरां ने रूढ़िग्रस्त समाज को एक नईज्योति प्रदान की। उन्होंने पाशाब्द्ध गाय की तरह जुल्मों–सितम को स्वीकार नहीं किया और अपनी इस आत्मिक क्रान्ति के बल पर तमाम नारियों को संदेश दिया कि क्रूर सामाजिक व्यवस्था से संघर्ष कर ही नारियाँ अपनी ख़ास पहचान को कायम कर सकतीं हैं। जो नारी अपनी आभ्यांतरिक शक्ति को जगाकर प्रेम–भक्ति के दीपों को जलाने लगती हैं, उनकी जिन्दगी ही सफलता का परचम बनकर वैश्विक आकाश पर फहरने लगती है।

इसलिए मीरांबाई के संघर्षिणी स्वरूप पर ही अनुसंधान करना अपरिहार्य प्रतीत होता है, क्योंकि अधिकांश भारतीय नारियाँ आज भी अंधविश्वास धारित परम्पराओं एवं खोखले रीति–रिवाजों की बलिवेदी पर बर्बाद हो रही है। मीरां के प्रेम और भक्ति पर तो खूब लिखे जा चुके हैं, उन्हें विरह प्रेम की देवी भी कहा जा चुका है, प्रेमदीवानी की संज्ञा से भी वह विभूषित हो चुकीं हैं, जो अत्याधुनिक युग की विशेष माँग है। नारियाँ आज भी दोयम दर्जे की ही मानी जा रही है। घर–आँगन से बाहर कार्य–स्थलों पर भी उसे भोग्या के रूप में ही देखा जा रहा है। भारतीय नारियों में क्रान्ति–शक्ति–संचार हेतु मीरां के संघर्षिणी जीवन का आलोकविकीर्ण ही उचित प्रतीत होता है। स्त्री–विमर्श के मूल में मीरां की क्रान्तिकारिणी भावना की मशाल को प्रज्ज्वलित करना ही समय की पुकार है। मीरां की प्रेम भावना ही सामाजिक–सांस्कृतिक–परिवर्त्तन की क्रान्ति को आगे बढ़ाती रही। इसलिए मर्यादित प्रेम–भाव की नाव पर ही अत्याधुनिक नारियों को भी वास्तविक जीवन का किनारा मिल सकता है । मीरां के क्रान्तिभावना चित्रण से भी यही निष्कर्ष निकलता हुआ प्रतीत हो रहा है।

'जहाँ प्रेम है, वहीं क्रान्ति की जल सकती मशाल।
हट सकता नारी–उत्पीड़न, बिछा शोषण का जाल।।[8]

वस्तुतः सामाजिक–सांस्कृतिक–परिवर्त्तन हेतु जो क्रान्ति की आग जलाते हैं, उन्हें बदनाम करने की साजिश भी सामाजिक कठमुल्लों आदि के द्वारा होने लगती है। मीरां भी दुष्ट राणा और उसके पालतू गुणों द्वारा बदनामी का शिकार होने लगी, लेकिन वह जानती थी कि उसके बदनामी की आग उसी प्रकार उसे मर्यादित करेगी, जैसे प्रज्ज्वलित आग स्वर्ण को कुन्दन बना देती है। मीरां भी खरा सोना ही थी । वह स्वजनों के नफरत की आग में भी 'मेरो तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई । जाके सिर मोर–मुकुट मेरो पति सोई 'सत्य–निनादित गीत को गाती रही। उन्होंने 'निन्दक नियरे राखिए' की टेक पर अपने प्रताड़कों की प्रताड़ना भी नाचती–गाती हुई सहती रही। देवर राणा द्वारा दी गयी पीड़ा को भी सहती हुई उन्होंने राणा को चेतावनी दे लिखा–

"राणा जी म्हाने या बदनामी लगे मीठी।
कोई निन्दो कोई बिन्दो मैं चलूँगी चाल अनूठी।।"[9]

वास्तव मीरा ने अनूठी चाल, जिस चाल ने उसे भक्तिनी, प्रेम–दीवानी खिताबों से ऊपर उठकर सामाजिक–सांस्कृतिक–प्रतिरोधक्रान्ति का आधार बन गयी और सफल भी रही।

इस शोधालेख से निष्कर्ष निकलता है कि प्रेम–प्रकाशित ही युग–क्रान्ति का मशाल बन सकता है। इसे प्रेम–विहारिणी मीरा के चरित्र में भी देख जा सकता है। क्रान्तिकारिणी मीरा के संघर्षिणी रूप की प्रखर धूप को विकीर्ण करने के लिए किए गए अनुसंधान से ही स्त्री–विमर्श को कारगर आधार प्रदान किया जा सकता है। समाज सुधारक राजा राममोहन राय ने सती–प्रथा के विरोधी में जब आवाज उठाई और सती–प्रथा पर रोक लगाने हेतु कानून क्रूर अंग्रेजों से बनवाया, तब उनके ह्रदय में क्रान्तिकारिणी मीरा अवश्य विदयमान रही होगी।

संदर्भ–सूची :–

1. स्वरचित–छन्द दोहा
2. 'नारी–जीवन : सुलगते प्रश्न–मुश्ताक अहमद–ज्योति प्रकाशन, जयपुर, 2006, पृष्ट संख्या–14।
3. 'मीराबाई की पदावली–देशराज सिंह भाटी दृ ई पुस्तकालय, पी डी एफ रीडर, 2010, पृष्ट संख्या–21।
4. 'हिंदी–साहित्य : युग और धारा– कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध'–भारती भवन, पटना –04, पौष, अमावस्था, 2021, पृष्ट संख्या–126।
5. 'हिंदी साहित्य का इतिहास' दृडॉ.नगेन्द्र / डॉ हरदयाल, नेशनल पब्लिशिंग हॉउस, नईदिल्ली, 2011, पृष्ट संख्या–220।
6. वही .... पृष्ट संख्या–221।
7. 'हिंदी काव्य–एक श्री तिलक राज–इंदिरा गाँधी रार्ष्टीय मुक्त विश्वविदयालय, पृष्ट संख्या–40।
8. स्वरचित–छन्द सरसी।
9. 'हिंदी काव्य–एक' .... पृष्ट संख्या–42.

❧★❧

निर्मल वर्मा के सांस्कृतिक निबंधों में भारतीय-बोध

समीक्षा*

शोध सार :– प्रस्तुत शोधालेख के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि निर्मल वर्मा के निबंधों में सिर्फ़ अकेलेपन, मृत्यु, दुःख और कलात्मकता की ही अभिव्यक्ति नहीं हुई है बल्कि उनके निबंधों में भारतीय बोध की अभिव्यक्ति भी हुई है। आधुनिक हिंदी साहित्य में निर्मल वर्मा एक ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने भारतीय संस्कृति, परंपरा और आधुनिकता के अंतर्संबंधों को गहन आत्मानुभूति और वैचारिक संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है।निर्मल वर्मा के सांस्कृतिक निबंधों में भारतीय बोध किसी रूढ़िगत राष्ट्रवादी या भावुक सांस्कृतिक आग्रह के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत, जिज्ञासु और आत्मालोचनात्मक चेतना के रूप में व्यक्त हुआ है।

इस शोध में निर्मल वर्मा के प्रमुख सांस्कृतिक निबंधों– जैसे शब्द और स्मृति, भारत और यूरोपः प्रतिश्रुति के क्षेत्र, ढलान से उतरते हुए आदि– को आधार बनाकर भारतीय बोध के विविध आयामों का विश्लेषण किया गया है जिसके द्वारा हम पाते हैं कि निर्मल वर्मा के यहाँ भारतीय बोध इतिहासबोध, स्मृतिबोध, मिथकीय चेतना, आध्यात्मिक दृष्टि और मानवीय संबंधों की संवेदनशील समझ से निर्मित होता है। वे भारतीय संस्कृति को केवल अतीतगामी गौरवगाथा के रूप में नहीं देखते, बल्कि उसे आधुनिक मनुष्य की नैतिक, मानसिक और अस्तित्वगत समस्याओं से जोड़कर विवेचित करते हैं। प्रस्तुत शोध आलेख के माध्यम से यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि पश्चिमी संस्कृति के लंबे साक्षात्कार के बावजूद निर्मल वर्मा की दृष्टि आत्मविस्मृति की नहीं, बल्कि आत्मपहचान की है। उनके निबंधों में भारतीय और पाश्चात्य सभ्यता का तुलनात्मक विवेचन किसी विरोधात्मक आग्रह से नहीं, बल्कि संवादात्मक चेतना से संपन्न है। इस प्रक्रिया में भारतीय बोध एक ऐसी वैचारिक भूमि के रूप में उभरता है, जहाँ व्यक्ति, समाज और संस्कृति के बीच संतुलन की खोज की जाती है। सार रूप में कह सकते हैं कि निर्मल वर्मा के सांस्कृतिक निबंधों में व्यक्त भारतीय बोध हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक आत्मचिंतन की एक महत्वपूर्ण और विशिष्ट धारा का प्रतिनिधित्व करता है। यह बोध न केवल सांस्कृतिक पहचान के प्रश्न को गहराई प्रदान करता है, बल्कि समकालीन वैश्विक संदर्भों में भारतीय संवेदनशीलता की प्रासंगिकता को भी रेखांकित करता है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध आलेख हिंदी निबंध परंपरा में निर्मल वर्मा के सांस्कृतिक चिंतन और भारतीय बोध की महत्ता को समझने का एक सार्थक प्रयास है।

बीज शब्द :– सांस्कृतिक निबंध, भारतीय बोध, सांस्कृतिक चेतना, आत्मबोध, स्मृतिबोध, परंपरा आधुनिकता, भारतीय संस्कृति, सभ्यतागत चेतना अस्तित्वगत दृष्टि, सांस्कृतिक आत्मालोचना, मिथक, उत्तर आधुनिकता, आधुनिकता, आइडिया ऑफ इंडिया इत्यादि।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य को अपने वैचारिक और रचनात्मक अवदान से समृद्ध करने वाले रचनाकारों में निर्मल वर्मा का नाम अग्रणी है। उन्होंने गद्य की विविध विधाओं को अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और जिसमें भारतीय समाज, संस्कृति और मानसिकता के गहरे आयामों को प्रस्तुत किया। उनका लेखन केवल व्यक्तिगत अनुभवों का साझा नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज के समग्र सामाजिक, मानसिक और सांस्कृतिक बदलावों का प्रतिबिंब भी है। उनके सांस्कृतिक निबंध भारतीय बोध की ऐसी जटिलताओं, दार्शनिकताओं और मानसिकताओं को उद्घाटित करते हैं, जो एक ओर भारतीय परंपरा से जुड़ी होती है, वहीं दूसरी ओर आधुनिकता और पश्चिमी प्रभावों के बीच संघर्ष को भी अभिव्यक्त करती है। भारतीयता के सन्दर्भ में उन्होंने जिस तथ्यों और सत्य को अनुभूत किया और उनको अपने साहित्य में इस प्रकार पिरो दिया कि वह भारतीय बोध की एक समझ विकसित करता है। यह समझ दूर देश से लाई हुए नहीं है बल्कि भारतीय, संस्कृति, सभ्यता, संस्कृति, दर्शन, इतिहास आदि के प्राचीन और नवीन मूल्यों के

***शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

आत्मसात और गहरे अनुभव से उपजी समझ है जिससे भारतीय बोध संबंधी दृष्टिकोण को और प्रभावशाली ढंग से समझा जा सकता है।

"उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तद् भारतं नाम, भारती यत्र सन्ततिः।।[1]

इस भारत की और इसमें सदियों से अंतर्निहित बोध की अभिव्यक्ति निर्मल वर्मा के निबंध लेखन में देखने को मिलती है।'भारतीय बोध' से आशय उस सांस्कृतिक चेतना से है जो भारतीय समाज की ऐतिहासिक स्मृति, आध्यात्मिक दृष्टि, सामूहिक जीवनबोध और नैतिक मूल्यों से निर्मित होती है। यह बोध केवल धार्मिक या दार्शनिक नहीं है, बल्कि जीवन के प्रति एक समग्र दृष्टिकोण है, जिसमें व्यक्ति और समाज, वर्तमान और अतीत, भौतिक और आध्यात्मिक–सभी का संतुलन निहित है। निर्मल वर्मा लंबे समय भारत से बाहर रहे और इस दौरान अलगाव के कारण भारतीय बोध की उनकी जो समझ बनी, उसे उनके 'शब्द और स्मृति' निबंध के प्राक्कथन में कही हुई बात से समझ सकते हैं। वे कहते हैं कि "मैं बरसों से अपने देश के बाहर रहा हूँ। इससे मेरे भीतर एक अलगाव–सा उत्पन्न हुआ है, जो मुझे कभी–कभी बोझ–सा जान पड़ता है। किन्तु दूसरी तरफ इसी 'अलगाव' ने मुझे अपनी जातीय अस्मिता और संस्कृति को एक ऐसे कोण से देखने का अवसर दिया है, जहाँ भ्रम और भुलावे के लिए गुंजाइश बहुत कम है। मैं एक साथ अपने को बाहर और भीतर पाता रहा हूँ पश्चिम से मुझे एक तार्किक अंतर्दृष्टि मिली है, जिसके सहारे मैंने अपनी संस्कृति के मिथक–बोध, बिंबों और प्रतीकों की गैर–तार्किक अंतर्चेतना को परखने की चेष्टा की है।'[2]

निर्मल वर्मा के लेखन में गहराई है और उस गहनता में स्मृति, इतिहास और आकांक्षा की अभिव्यक्ति है रत्नधर झा लिखते हैं "निर्मल वर्मा के लेखन के मर्म में गहराई है... जब वह भारतीय आत्म और पाश्चात्य अहम के बीच फर्क की पैमाइश करते हैं, पश्चिममूलक इतिहास की क्रूरता और भारतीय मानस के लिए इसे हाल में आयातित करने की चीर फाड़ करते हैं, जब वह किसी भारतीय के साथ अपने आद्य रूप में चिपकी हुई उस परम्परा का विश्लेषण करते हैं जो किसी भी पश्चिमी मनुष्य को भिन्न और विशिष्ट आवरण में लिपटी दिखाई पड़ती है।"[3] उनके निबंधों में उन सभी आयामों का चिंतन मिलता है जिसमें भारतीय बोध के तत्त्व विद्यमान हैं वह चाहे भारतीय संस्कृति संबंधी चिंतन हो या भारतीय सभ्यता, या इतिहास, मिथक, धर्म, आध्यात्म या फिर स्व की पहचान। निर्मल वर्मा अपने इस चिंतन में जिस भारतीय बोध की संकल्पना करते हुए दिखते हैं वह हमें पाश्चात्य संस्कृति खतरे से परिचित करवाती है और इस उत्तर आधुनिकता के दौर में सावधान भी करती है। निर्मल वर्मा मानते हैं कि पश्चिम के तमाम चिन्हों को मिटाया नहीं जा सकता है बल्कि उनसे भिड़कर और उनके कुछ उपयोगी उपादानों के जरिए अपनी किस्म की भारतीयता बनाई जा सकती है और निर्माण प्रकिया में स्व की पहचान और उसकी समझ बहुत जरूरी है। सुधीर पचौरी इस संदर्भ में लिखते हैं– "वे भारतीयतावादियों के उसी वर्ग में आते हैं जो पश्चिम के सब कुछ को नष्ट नहीं करके उससे कुछ लेकर अब सिर्फ अपना कुछ बनाना चाहता है। यहाँ भी वे विवेकानंद और गांधी के नजदीक हैं।"[4]

निर्मल वर्मा अपने 'दूसरे शब्दों में' नामक निबंध में धर्म एक ऐसे दृष्टिकोण से देखते हैं जहां से धर्म जीवन के लिए बहुत आवश्यक है और जीवन के आधुनिक संस्थानों से धर्म को हंकाल देने का परिणाम यह हुआ है कि हिंदू–मुस्लिम–सिख–ईसाई आदि एक–दूसरे के धर्म के बारे में नहीं जानते क्योंकि वे पाठ्यक्रमों में नहीं हैं, शिक्षा–संस्थानों में नहीं हैं : "जिन क्लासिक भाषाओं के ज्ञान से हम एक–दूसरे की दृष्टि, दर्शन, धर्म की कोई अंतर्दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं–संस्कृत, फारसी, अरबी भाषाएँ– आज अंग्रेजी के प्रभुत्व तले न केवल घोर उपेक्षित हैं बल्कि उन्हें सीखने–जानने के हमारे परंपरागत शिक्षा–संस्थान और पुस्तकालय अध्ययन केंद्र बचे थे वे भी धीरे–धीरे नष्ट हो रहे हैं। इन्हें पढ़ाने की जरूरत है ताकि अज्ञान का अँधेरा छँट सके क्योंकि जिस धर्मनिरपेक्ष समाज में हम रह रहे हैं उसमें उसके क्या परिणाम हुए ? 'हमारी शिक्षा–संस्थाओं स्कूलों, कॉलेजों में धर्म–शिक्षा के लिए कोई स्थान नहीं है जिसके कारण एक ही कक्षा में पढ़ने वाले हमारे हिंदू–मुस्लिम–सिख–ईसाई छात्र एक–दूसरे के धर्म विश्वासों, अनुष्ठानों, पर्वो के प्रति कोई ज्ञान, कोई जिज्ञासा नहीं रखते।''[5]

निर्मल वर्मा के अनुसार इतिहास के प्रति जो चेतना होती है, वह खंड खंड में इतिहास को देखने के लिए नहीं होती, बल्कि समग्रता में देखने के लिए होती है। निर्मल वर्मा के निबंधों में इतिहास किसी तिथिक्रम या घटनाओं की श्रृंखला के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवित और सक्रिय सांस्कृतिक चेतना के रूप में उपस्थित है। उनके निबंधों में इतिहास को किसी कालक्रमिक घटनावृत्त के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवित सांस्कृतिक स्मृति के रूप में देखा गया है। निर्मल वर्मा का इतिहास–बोध मूलतः भारतीय दृष्टि से निर्मित है, जहाँ इतिहास केवल अतीत नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य को दिशा देने वाला अनुभव है। पाश्चात्य इतिहास–दृष्टि प्रायः रैखिक (स्पदमंत) और घटनाकेंद्रित रही है, जबकि भारतीय परंपरा में इतिहास चेतना, स्मृति और संस्कार से जुड़ा हुआ है। निर्मल वर्मा अपने निबंधों में इसी भारतीय इतिहास दृष्टि को रेखांकित करते हैं। निबंध 'भारत और यूरोप : एक सांस्कृतिक संवाद' में वे लिखते हैं कि 'भारत में इतिहास को केवल राजाओं, युद्धों और सत्ता परिवर्तन से नहीं समझा जा सकता, बल्कि उसे लोकजीवन, मिथक, धर्म, भाषा और परंपराओं के माध्यम से जाना जाता है। उनके अनुसार रामायण और महाभारत भारतीय इतिहास की जीवंत अभिव्यक्तियाँ हैं, जो समय के साथ–साथ चलती रहती हैं।' निर्मल वर्मा के निबंधों में इतिहास और मिथक का संबंध विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। वे मिथक को इतिहास का विरोधी नहीं, बल्कि उसका गहनतम रूप मानते हैं। निबंध 'भारतीय संस्कृति और स्मृति' में वे कहते हैं कि 'भारतीय समाज में मिथक ऐतिहासिक अनुभवों को संजोने का माध्यम हैं। उदाहरण के लिए राम और कृष्ण ऐतिहासिक पात्र हों या न हों, लेकिन भारतीय चेतना में वे इतिहास से अधिक प्रभावशाली वास्तविकताएँ हैं। यह दृष्टि भारतीय इतिहासबोध को यूरोपीय ऐतिहासिकता से अलग करती है।' निर्मल वर्मा के लिए इतिहास केवल अध्ययन का विषय नहीं, बल्कि आत्मबोध का माध्यम है। उनके निबंध यह स्पष्ट करते हैं कि भारतीय इतिहास का सही बोध व्यक्ति को आत्मगौरव, सांस्कृतिक संतुलन और नैतिक दिशा प्रदान करता है। उनके अनुसार इतिहास का उद्देश्य अतीत में लौटना नहीं, बल्कि अतीत की चेतना के साथ वर्तमान को समझना है। यही भारतीय इतिहास–बोध की विशेषता है, जिसे वे अपने निबंधों में बार–बार प्रतिपादित करते हैं। वे मिथकों को महत्त्व देते हुए उन्हें सकारात्मक संदर्भों से जोड़ते हुए कहते हैं कि "प्रागैतिहासिक मनुष्य के आघात और आतंक को कम कर सकें, मिथकों का जन्म ही इसलिए हुआ था और मिथक यह काम केवल एक ही तरह से कर सकते थे – स्वयं प्रकृति और देवताओं का मानवी करण करके। इस अर्थ में मिथक एक ही समय में मनुष्य के अलगाव को प्रतिबिम्बत करते हैं और उस अलगाव से जो पीड़ा उत्पन्न होती है, उससे मुक्ति भी दिलाते हैं। मिथक प्रागैतिहासिक मनुष्य का एक सामूहिक स्वप्न है और वह काफी अस्पष्ट, संगतिहीन और संश्लिष्ट भी है। कालान्तर में ये अस्पस्ट गंजें, ये धुंधली आकांक्षाएं एक तर्कसंगत प्रतीकात्मक ढांचे में ढल जाती हैं और महाकाव्यों (एपिक) की सुनिश्चित संरचना में गठित होती हैं। मिथक और इतिहास के बीच महाकाव्य एक सेतु है।''[6]

वे संस्कृति को केवल परंपराओं, उत्सवों या धार्मिक आस्थाओं का समुच्चय नहीं मानते, बल्कि उसे मनुष्य की आंतरिक चेतना, स्मृति, इतिहास–बोध और जीवन–दृष्टि से जोड़कर देखते हैं। उनके निबंधों में व्यक्त भारतीय बोध किसी घोषणात्मक राष्ट्रवाद या रूढ़िवादी सांस्कृतिक गर्व का परिणाम नहीं है, बल्कि आत्मालोचन और आत्मसंवाद से उपजा हुआ एक जीवित अनुभव है।निर्मल वर्मा के अनुसार भारतीय संस्कृति का मूल स्वरूप 'अनुभव' और 'संवेदना' में निहित है। वे पश्चिमी सभ्यता की भौतिक प्रगति के बरअक्स भारतीय जीवन–दृष्टि को आत्मिक और अंतर्मुखी मानते हैं। अपने निबंधों में वे बार–बार इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि भारत में जीवन को केवल उपयोगिता या सफलता की कसौटी पर नहीं परखा गया, बल्कि उसे कर्म, धर्म, करुणा और सह–अस्तित्व के व्यापक संदर्भ में देखा गया है। उदाहरण के लिए, अपने सांस्कृतिक निबंधों में वे भारतीय समाज की उस प्रवृत्ति का उल्लेख करते हैं जिसमें जीवन की असफलता, दुख और पराजय को भी स्वीकार कर लेने की मानसिक तैयारी दिखाई देती है। यह स्वीकार भाव भारतीय संस्कृति को एक गहरी मानवीय गरिमा प्रदान करता है।

निर्मल वर्मा के निबंधों में भारतीय बोध का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष 'स्मृति' और 'परंपरा' की भूमिका है।'भारतीय संस्कृति और राष्ट्र' नामक निबंध में वे लिखते हैं कि "यह सभ्यता–बोध (भारतीय सभ्यता) यदि इतिहास के असंख्य और असह्य प्रहारों के बावजूद जीवित रहा तो सिर्फ इसलिए कि भारत में आदि–जीवन

के दर्शन–सूत्र महज पोथियों के भीतर नहीं, समकालीन भारतीय की स्मृति में प्रवाहमान हैं। अतीत को व्यतीत न मानकर उसे समकालीन भारतीय जीवन की ऐसी प्रतीक अवस्था में सयोजित कर पायी है, जो आज भी उतनी ही अर्थवान और संस्कार–सपन्न है, जितनी पहले कभी थी।"[7] वे मानते हैं कि भारतीय संस्कृति वर्तमान क्षण में नहीं, बल्कि अतीत और वर्तमान के निरंतर संवाद में जीवित रहती है। उनके अनुसार परंपरा कोई जड़ संरचना नहीं, बल्कि अनुभवों का वह प्रवाह है जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी मनुष्य की चेतना में रूपांतरित होता रहता है। उदाहरणस्वरूप, वे भारतीय परिवार व्यवस्था, गुरु–शिष्य परंपरा और धार्मिक अनुष्ठानों का उल्लेख करते हुए यह दिखाते हैं कि इन सबके पीछे केवल सामाजिक नियम नहीं, बल्कि भावनात्मक और नैतिक संस्कार छिपे होते हैं। इस दृष्टि से उनका भारतीय बोध आधुनिकता–विरोधी न होकर, आधुनिकता के भीतर भारतीय चेतना की पुनर्स्थापना का प्रयास है।

उनके सांस्कृतिक निबंधों में पश्चिम और भारत की तुलना भी भारतीय बोध को स्पष्ट करने का एक सशक्त माध्यम बनती है। यूरोप में लंबे समय तक रहने के अनुभव के आधार पर निर्मल वर्मा यह अनुभव करते हैं कि पश्चिमी समाज में व्यक्ति अत्यधिक स्वतंत्र तो है, किंतु गहरे स्तर पर अकेला भी है। इसके विपरीत, भारतीय समाज में व्यक्ति सामूहिकता, संबंध और भावनात्मक निकटता के माध्यम से स्वयं को सुरक्षित अनुभव करता है। उदाहरण के रूप में, वे भारतीय जीवन में पड़ोस, रिश्तेदारी और सामाजिक सहभागिता की उस संस्कृति की ओर संकेत करते हैं, जहाँ व्यक्ति का अस्तित्व दूसरों से कटकर नहीं, बल्कि उनसे जुड़कर अर्थ पाता है। यह सामूहिक चेतना भारतीय संस्कृति का एक विशिष्ट तत्व है, जिसे निर्मल वर्मा विशेष संवेदना के साथ रेखांकित करते हैं। निर्मल वर्मा के निबंधों में भारतीय बोध का एक और महत्त्वपूर्ण आयाम है– धार्मिक और आध्यात्मिक चेतना। वे धर्म को कर्मकांड या संस्थागत व्यवस्था के रूप में नहीं देखते, बल्कि उसे जीवन की एक नैतिक और आध्यात्मिक संवेदना के रूप में समझते हैं। उनके अनुसार भारतीय संस्कृति में धर्म का अर्थ जीवन से पलायन नहीं, बल्कि जीवन को अधिक गहराई और जिम्मेदारी से जीने की प्रेरणा है। उदाहरण के लिए, वे भारतीय संत परंपरा का उल्लेख करते हैं, जहाँ त्याग और करुणा जीवन के मूल्य माने गए हैं। यह दृष्टि भारतीय संस्कृति को केवल बाहरी आडंबर से मुक्त कर, उसे मानवीय मूल्यों से जोड़ती है। निर्मल वर्मा का भारतीय बोध आलोचनात्मक भी है। वे भारतीय समाज की कमजोरियों, आत्मविस्मृति और आधुनिकता के दबाव में अपनी सांस्कृतिक पहचान खोने की प्रवृत्ति पर भी चिंता व्यक्त करते हैं। उनके निबंधों में यह पीड़ा स्पष्ट दिखाई देती है कि हम पश्चिम से आयातित आधुनिकता को बिना आत्मसात किए अपनाने की कोशिश करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप सांस्कृतिक विच्छेदन पैदा होता है। उदाहरणस्वरूप, वे शिक्षा, जीवन–शैली और सामाजिक मूल्यों में आई उस सतही आधुनिकता की आलोचना करते हैं, जिसमें भारतीय जीवन–दृष्टि का मूल भाव खोता जा रहा है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि निर्मल वर्मा के सांस्कृतिक निबंधों में व्यक्त भारतीय बोध गहरी आत्मानुभूति, संवेदनशील आलोचना और मानवीय करुणा से निर्मित है। उनकी दृष्टि में भारतीय संस्कृति कोई संग्रहालय की वस्तु नहीं, बल्कि निरंतर विकसित होने वाली जीवन–चेतना है। वे हमें यह समझने के लिए प्रेरित करते हैं कि भारतीय बोध का अर्थ अतीत की ओर लौटना नहीं, बल्कि अपनी सांस्कृतिक स्मृति के सहारे वर्तमान और भविष्य को अधिक मानवीय बनाना है। इसी कारण उनके निबंध आज भी भारतीय संस्कृति और आधुनिक मनुष्य के संबंध को समझने के लिए अत्यंत प्रासंगिक हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. विष्णु पुराण।
2. 'शब्द और स्मृति', निर्मल वर्मा राजकमल प्रकाशन 2024, पृष्ठ संख्या, 5।
3. अवलोकन निर्मल वर्मा, संपादक नंदकिशोर आचार्य, वाणी प्रकाशन, 2003, पृ. सं.103।
4. निर्मल वर्मा और उत्तर दृ उपनिवेशवाद, सुधीर पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2003, पृ.सं. 31।
5. शब्द और स्मृति', निर्मल वर्मा राजकमल प्रकाशन, 2024, पृ. सं., 91।
6. निर्मल वर्माः सृजन और चिंतन, प्रेमसिंह, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं.157।
7. इतिहास, स्मृति और आकांक्षा, निर्मल वर्मा, राजकमल प्रकाशन, 2024, पृ. सं. 99।

हिन्दी साहित्य में नारी चेतना और पित्रसत्तात्मक सरंचनाओं का एक विमर्शात्मक अध्ययन

डॉ. मीरा कुमारी*

भूमिका : परिवर्तनशील समाज और नारी–चेतना का उभार :– इक्कीसवीं सदी का भारत सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और वैचारिक संक्रमण के एक निर्णायक चरण में स्थित है। वैश्वीकरण, उदारीकरण, तकनीकी क्रांति और संचार माध्यमों के विस्तार ने भारतीय समाज की संरचना को गहराई से प्रभावित किया है। इस परिवर्तनशील परिदृश्य में परंपरा और आधुनिकता के बीच संबंध केवल टकराव का नहीं, बल्कि निरंतर संवाद, पुनर्व्याख्या और पुनर्संरचना का रूप ले चुका है। इस व्यापक सामाजिक परिवर्तन का सर्वाधिक सशक्त और संवेदनशील प्रतिबिंब नारी की बदलती हुई स्थिति, भूमिका और चेतना में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

परंपरागत भारतीय समाज में नारी की पहचान प्रायः पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों तक सीमित रही है। उसे त्याग, सहनशीलता और सेवा की मूर्ति के रूप में महिमामंडित तो किया गया, किंतु निर्णय–निर्माण, सार्वजनिक सहभागिता और आत्म–अभिव्यक्ति के अवसर अपेक्षाकृत सीमित रहे। आधुनिक काल में शिक्षा, कानून और सामाजिक आंदोलनों के प्रभाव से नारी की यह छवि धीरे–धीरे परिवर्तित हुई है। आज नारी केवल सामाजिक संरचना की सहायक या अनुगामी इकाई नहीं रह गई है, बल्कि वह परिवर्तन की सक्रिय संवाहक, सामाजिक यथार्थ की आलोचक और भविष्य की निर्माता के रूप में उभर रही है।

नारी–चेतना का यह उभार आकस्मिक नहीं है, बल्कि यह ऐतिहासिक संघर्षों, वैचारिक मंथन और सामाजिक अनुभवों की दीर्घ प्रक्रिया का परिणाम है। स्त्री ने स्वयं को केवल उत्पीड़न की शिकार के रूप में नहीं, बल्कि अपने अधिकारों, संभावनाओं और क्षमताओं से युक्त एक स्वतंत्र अस्तित्व के रूप में पहचानना प्रारंभ किया है। यह आत्मबोध ही नारी–उदय का मूल आधार है, जो उसे निजी जीवन से बाहर निकलकर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करता है। यदि नारी–उदय को एक वैचारिक रूपक में अभिव्यक्त किया जाए, तो यह 'शक्ति–संनाद' और 'संस्कृति–संनाद' के संयुक्त स्वर के रूप में सामने आता है। शक्ति–संनाद वह उद्घोष है जिसमें नारी अपने अधिकारों, अवसरों, संसाधनों और सार्वजनिक भूमिका के प्रति सजग होती है तथा सत्ता–संरचनाओं में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करने का प्रयास करती है। इसके विपरीत, संस्कृति–संनाद वह प्रक्रिया है जिसमें नारी परंपरा को जड़ रूप में स्वीकार नहीं करती, बल्कि उसका आलोचनात्मक पुनर्पाठ कर उसे अधिक मानवीय, समतामूलक और समकालीन बनाने का प्रयास करती है।

समकालीन भारत में नारी–विमर्श की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह न तो परंपरा–विरोधी उग्रता में सीमित है और न ही परंपरा–समर्थक यथास्थितिवाद में। यह विमर्श संवाद, संतुलन और पुनर्निर्माण की राह पर अग्रसर है। नारी–उदय का यह द्वि–स्वरीय स्वर सामाजिक परिवर्तन को केवल बाह्य सुधारों तक सीमित नहीं रखता, बल्कि सामाजिक चेतना, मूल्य–बोध और सांस्कृतिक संवेदनशीलता के स्तर पर भी परिवर्तन की माँग करता है। प्रस्तुत शोध–लेख इसी संदर्भ में नारी–उदय को एक समग्र सामाजिक–सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में विश्लेषित करने का प्रयास करता है।

स्त्री सशक्तिकरण की अवधारणा : अर्थ, विस्तार और भारतीय संदर्भ :– स्त्री सशक्तिकरण की अवधारणा आधुनिक सामाजिक विज्ञान की एक केंद्रीय संकल्पना है, जिसका अभिप्राय केवल स्त्री को विधिक अधिकार प्रदान करना नहीं, बल्कि उसे अपने जीवन, श्रम, शरीर, संसाधनों और भविष्य से संबंधित निर्णय स्वयं लेने की वास्तविक क्षमता प्रदान करना है। सशक्तिकरण का मूल भाव 'शक्ति के हस्तांतरण' से अधिक 'शक्ति के

***असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोट्द्वार, उत्तराखंड।**

विकास' में निहित है। यह प्रक्रिया स्त्री को निर्भरता की स्थिति से निकालकर आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान और सामाजिक सहभागिता की स्थिति तक पहुँचाने का प्रयास करती है।

सामान्यतः स्त्री सशक्तिकरण को शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक स्वतंत्रता और राजनीतिक प्रतिनिधित्व जैसे संकेतकों के माध्यम से मापा जाता है। किंतु यह दृष्टि अपूर्ण है, क्योंकि सशक्तिकरण एक मात्रात्मक नहीं, बल्कि गुणात्मक और संरचनात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया है। यदि स्त्री शिक्षित होने के बावजूद सामाजिक निर्णयों से बाहर रखी जाती है, या आर्थिक रूप से सक्रिय होने पर भी पारिवारिक और सामाजिक हिंसा का सामना करती है, तो ऐसे में सशक्तिकरण केवल आँकड़ों तक सीमित रह जाता है। अतः सशक्तिकरण को सामाजिक मानसिकता, सत्ता–संबंधों और सांस्कृतिक मूल्यों के संदर्भ में समझना आवश्यक है।

पश्चिमी नारीवादी विमर्श में स्त्री सशक्तिकरण की अवधारणा विभिन्न वैचारिक धाराओं में विकसित हुई है। उदारवादी नारीवाद समान नागरिक अधिकारों और विधिक समानता पर बल देता है। समाजवादी और मार्क्सवादी नारीवाद स्त्री उत्पीड़न को उत्पादन–संबंधों और आर्थिक संरचनाओं से जोड़कर देखता है, जबकि उग्र नारीवाद पितृसत्ता को स्त्री–दमन की मूल संरचना मानता है। इन सभी दृष्टियों ने वैश्विक स्तर पर स्त्री प्रश्न को वैचारिक धार दी है, किंतु भारतीय समाज की जटिल बहुस्तरीय संरचना को समझने के लिए इनका यथावत अनुकरण पर्याप्त नहीं है।

भारतीय संदर्भ में स्त्री सशक्तिकरण की अवधारणा अपनी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विशिष्टताओं के कारण एक अलग स्वरूप ग्रहण करती है। यहाँ स्त्री की स्थिति केवल लिंग के आधार पर निर्धारित नहीं होती, बल्कि जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र और शैक्षिक पृष्ठभूमि जैसे कारक भी निर्णायक भूमिका निभाते हैं। ग्रामीण दलित स्त्री, शहरी शिक्षित स्त्री और आदिवासी स्त्रीकृतीनों के अनुभव, संघर्ष और सशक्तिकरण की आवश्यकताएँ भिन्न हैं। इस बहुलता को समझे बिना स्त्री सशक्तिकरण की कोई भी एकरूप परिभाषा अपूर्ण ही रहेगी। भारतीय परंपरा में नारी को शक्ति, सृजन और संवेदना का प्रतीक माना गया है। देवी–परंपरा, मातृशक्ति की अवधारणा और स्त्री को 'गृहलक्ष्मी' के रूप में सम्मानित करने की सांस्कृतिक धारणाएँ इसका प्रमाण हैं। किंतु व्यवहारिक सामाजिक संरचनाओं में यही नारी प्रायः अधीनता, नियंत्रण और सीमाओं का सामना करती रही है। यह विरोधाभास भारतीय स्त्री–विमर्श की केंद्रीय चुनौती है। अतः भारतीय स्त्री सशक्तिकरण का लक्ष्य परंपरा का पूर्ण निषेध नहीं, बल्कि उसमें निहित मानवीय और समतामूलक तत्वों की पुनर्व्याख्या और पुनर्स्थापना है। इस संदर्भ में स्त्री सशक्तिकरण को एक द्वि–आयामी प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। पहला आयाम 'बाह्य सशक्तिकरण' है, जिसमें शिक्षा, रोजगार, कानून और राजनीतिक प्रतिनिधित्व शामिल हैं। दूसरा आयाम 'आंतरिक सशक्तिकरण' है, जो आत्मविश्वास, आत्मनिर्णय, वैचारिक स्वतंत्रता और सामाजिक भय से मुक्ति से संबंधित है। जब तक ये दोनों आयाम परस्पर पूरक रूप में विकसित नहीं होते, तब तक सशक्तिकरण अधूरा रहता है।

समकालीन भारत में स्त्री सशक्तिकरण की अवधारणा इसी समन्वित दृष्टि की माँग करती है, जिसमें शक्ति–संनाद केवल अधिकारों का उद्घोष न होकर चेतना का विस्तार बने और संस्कृति–संनाद परंपरा के पुनर्पाठ के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन को नैतिक आधार प्रदान करे। इस प्रकार, स्त्री सशक्तिकरण एक सतत, गतिशील और संवादात्मक प्रक्रिया के रूप में सामने आता है, जो भारतीय समाज को अधिक समतामूलक और मानवीय बनाने की दिशा में अग्रसर है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य : मौन से स्वर तक की दीर्घ यात्रा :– भारतीय समाज में नारी की स्थिति को समझने के लिए ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का अध्ययन अनिवार्य है, क्योंकि नारी की सामाजिक भूमिका समय, सत्ता–संरचनाओं और सांस्कृतिक मूल्यों के साथ निरंतर परिवर्तित होती रही है। इतिहास यह स्पष्ट करता है कि नारी की स्थिति न तो सदैव समान रही है और न ही एकरूप रूप से दमनात्मक। यह एक जटिल, बहुस्तरीय और परिवर्तनशील प्रक्रिया रही है, जिसमें कभी नारी को बौद्धिक और सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई, तो कभी उसे मौन और परिधि तक सीमित कर दिया गया।

वैदिक काल में नारी की स्थिति अपेक्षाकृत सुदृढ़ मानी जाती है। इस काल में स्त्रियाँ शिक्षा, दर्शन और धार्मिक अनुष्ठानों में सक्रिय भागीदारी करती थीं। गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा जैसी विदुषियाँ न केवल वेद–चर्चाओं में सम्मिलित होती थीं, बल्कि दार्शनिक प्रश्नों पर पुरुष मनीषियों के साथ संवाद करती थीं। विवाह को संस्कार माना जाता था, न कि बंधन, और स्त्री को पति की सहधर्मिणी के रूप में मान्यता प्राप्त थी। यह काल नारी की बौद्धिक चेतना और सामाजिक गरिमा का प्रतीक माना जा सकता है।

उत्तर वैदिक काल में सामाजिक संरचनाओं के अधिक संगठित और कठोर होने के साथ–साथ नारी की स्थिति में क्रमिक संकुचन दिखाई देता है। वर्ण–व्यवस्था की जटिलता, पितृसत्तात्मक मूल्यों का सुदृ ढ़ीकरण और उत्तराधिकार की अवधारणा ने स्त्री की स्वतंत्रता को सीमित किया। शिक्षा तक उसकी पहुँच घटने लगी और सार्वजनिक जीवन में उसकी भागीदारी संकुचित होती चली गई। यहीं से नारी के सामाजिक मौन की प्रक्रिया आरंभ होती है, जो आगे चलकर और अधिक गहरी होती गई।

मध्यकालीन भारत में नारी की स्थिति क्षेत्र, वर्ग और धार्मिक प्रभावों के अनुसार भिन्न–भिन्न रही। एक ओर भक्ति आंदोलन के अंतर्गत मीराबाई, अक्का महादेवी और लल्लेश्वरी जैसी स्त्रियाँ आध्यात्मिक चेतना और आत्म–अभिव्यक्ति के उच्च स्वर तक पहुँचीं, वहीं दूसरी ओर सामाजिक स्तर पर पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह, सती–प्रथा और बहुविवाह जैसी कुरीतियों ने नारी को गंभीर रूप से प्रभावित किया। इस काल में नारी की स्थिति में यह द्वैत स्पष्ट रूप से दिखाई देता हैकृआध्यात्मिक स्तर पर स्वर, किंतु सामाजिक स्तर पर मौन।

औपनिवेशिक काल नारी इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ के रूप में उभरता है। अंग्रेज़ी शासन के दौरान पश्चिमी शिक्षा, आधुनिक कानून और मानवाधिकार की अवधारणाओं का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर और ज्योतिबा फुले जैसे समाज सुधारकों ने सती–प्रथा उन्मूलन, विधवा पुनर्विवाह और स्त्री शिक्षा के प्रश्न को सामाजिक विमर्श के केंद्र में लाया। यद्यपि इन सुधारों की अपनी सीमाएँ थीं और कई बार यह सुधार औपनिवेशिक दृष्टिकोण से प्रभावित थे, फिर भी इन्होंने नारी चेतना को सार्वजनिक विमर्श का विषय बनाया।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान नारी ने सामाजिक सुधार की परिधि से बाहर निकलकर राष्ट्रीय संघर्ष में सक्रिय भूमिका निभाई। सरोजिनी नायडू, अरुणा आसफ़ अली, कमला नेहरू और कस्तूरबा गांधी जैसी महिलाओं ने न केवल आंदोलनों में भाग लिया, बल्कि नेतृत्वकारी भूमिकाएँ भी निभाईं। इस सहभागिता ने नारी के आत्मविश्वास और सार्वजनिक स्वीकार्यता को सुदृढ़ किया। स्वतंत्रता आंदोलन ने नारी को मौन से स्वर की ओर अग्रसर होने का ऐतिहासिक अवसर प्रदान किया। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय संविधान ने नारी को विधिक समानता और नागरिक अधिकार प्रदान किए। किंतु ऐतिहासिक अनुभव यह दर्शाता है कि विधिक स्वतंत्रता और सामाजिक यथार्थ के बीच एक स्पष्ट अंतर बना रहा। परंपरागत मानसिकताएँ, सामाजिक संरचनाएँ और आर्थिक असमानताएँ नारी की वास्तविक स्वतंत्रता में बाधक बनी रहीं। अतः समकालीन नारी–उदय को इस ऐतिहासिक यात्रा के संदर्भ में ही समझा जा सकता हैकृएक ऐसी यात्रा, जिसमें मौन से स्वर तक का परिवर्तन अभी भी पूर्ण नहीं हुआ है, बल्कि निरंतर प्रगति की अवस्था में है।

इस प्रकार, भारतीय इतिहास में नारी की स्थिति का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि नारी–उदय किसी एक काल की देन नहीं, बल्कि सदियों में विकसित हुई चेतना, संघर्ष और संवाद की संयुक्त अभिव्यक्ति है। यही ऐतिहासिक चेतना समकालीन स्त्री सशक्तिकरण के विमर्श को गहराई, वैधता और दिशा प्रदान करती है द्य

संविधान, कानून और संस्थागत ढाँचा : वैधानिक सशक्तिकरण :– समकालीन भारत में स्त्री सशक्तिकरण का सबसे सुदृढ़, औपचारिक और संस्थागत आधार भारतीय संविधान तथा उससे विकसित विधिक व्यवस्था में निहित है। स्वतंत्रता के पश्चात निर्मित भारतीय संविधान ने एक ऐसे लोकतांत्रिक और समतामूलक समाज की परिकल्पना की, जिसमें स्त्री और पुरुष के बीच समानता केवल नैतिक या सांस्कृतिक आदर्श न होकर विधिक अधिकार के रूप में सुनिश्चित की गई। यह परिवर्तन ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण था,

क्योंकि परंपरागत भारतीय समाज में नारी की स्थिति मुख्यतः सामाजिक रीतियों, धार्मिक मान्यताओं और पितृसत्तात्मक प्रथाओं द्वारा नियंत्रित रही थी, न कि समान नागरिक अधिकारों द्वारा।

संविधान की प्रस्तावना में निहित न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के मूल्य स्त्री सशक्तिकरण की वैचारिक आधारशिला प्रस्तुत करते हैं। यह प्रस्तावना केवल एक औपचारिक भूमिका नहीं, बल्कि संविधान की आत्मा है, जो नारी को गरिमापूर्ण नागरिक के रूप में स्थापित करती है। अनुच्छेद 14 कानून के समक्ष समानता की गारंटी देता है, जो स्त्री को विधिक रूप से पुरुष के समकक्ष स्थान प्रदान करता है। अनुच्छेद 15 लिंग के आधार पर भेदभाव को निषिद्ध करता है, जबकि अनुच्छेद 15(3) राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान करने की संवैधानिक अनुमति देता है। यह प्रावधान यह स्पष्ट करता है कि समानता का अर्थ समान व्यवहार ही नहीं, बल्कि ऐतिहासिक और संरचनात्मक असमानताओं को दूर करने के लिए सकारात्मक हस्तक्षेप भी है। अनुच्छेद 16 सार्वजनिक रोजगार में समान अवसर की गारंटी देकर स्त्री के आर्थिक और पेशेवर सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त करता है। इसके साथ ही अनुच्छेद 21, जो जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को सुनिश्चित करता है, न्यायिक व्याख्याओं के माध्यम से स्त्री गरिमा, निजता, शारीरिक स्वायत्तता और सम्मानजनक जीवन के अधिकार तक विस्तारित हुआ है। उच्चतम न्यायालय के विभिन्न निर्णयों ने यह स्थापित किया है कि स्त्री की गरिमा और सुरक्षा संविधान के मूल ढाँचे का अनिवार्य अंग है। इस प्रकार संवैधानिक प्रावधान केवल सैद्धांतिक घोषणाएँ न होकर स्त्री अधिकारों के प्रभावी संरक्षण का आधार बनते हैं।

संविधान के नीति–निर्देशक तत्व भी स्त्री सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अनुच्छेद 39 राज्य को समान वेतन, पर्याप्त आजीविका और संसाधनों के न्यायसंगत वितरण की दिशा में कार्य करने का निर्देश देता है, जिसका सीधा संबंध स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता से है। अनुच्छेद 42 मातृत्व संरक्षण और कार्यस्थल पर मानवीय परिस्थितियों की व्यवस्था का निर्देश देता है, जिससे कार्यरत महिलाओं की सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित होती है। यद्यपि ये प्रावधान न्यायालय में प्रत्यक्षतः प्रवर्तनीय नहीं हैं, फिर भी इन्होंने विधि–निर्माण और सामाजिक नीति को गहराई से प्रभावित किया है।

संवैधानिक दर्शन के अनुरूप स्वतंत्र भारत में अनेक महिला–संबंधी कानून बनाए गए, जिनका उद्देश्य नारी की सुरक्षा, सम्मान और अधिकारों की रक्षा करना है। दहेज निषेध अधिनियम ने विवाह को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास किया, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम ने निजी क्षेत्र में होने वाली हिंसा को सार्वजनिक अपराध के रूप में मान्यता दी, तथा कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से संरक्षण अधिनियम ने स्त्री के लिए सुरक्षित कार्य वातावरण की कानूनी गारंटी प्रदान की। इसके अतिरिक्त, मातृत्व लाभ अधिनियम ने कार्यरत महिलाओं के जैविक और सामाजिक दायित्वों को विधिक मान्यता दी। इसके बावजूद यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि विधिक सशक्तिकरण और सामाजिक यथार्थ के बीच एक उल्लेखनीय अंतर विद्यमान है। अनेक परिस्थितियों में कानून के अस्तित्व के बावजूद सामाजिक मानसिकता, आर्थिक निर्भरता, पारिवारिक दबाव और भय स्त्री को अपने अधिकारों के प्रयोग से रोकते हैं। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों, असंगठित श्रम क्षेत्र और वंचित वर्गों की महिलाओं के लिए न्याय तक पहुँच आज भी एक गंभीर चुनौती बनी हुई है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कानून अपने आप में पर्याप्त नहीं है; उसे सामाजिक जागरूकता, प्रशासनिक संवेदनशीलता और प्रभावी क्रियान्वयन के साथ जोड़ना अनिवार्य है।

संस्थागत स्तर पर राष्ट्रीय महिला आयोग, राज्य महिला आयोग तथा विभिन्न सरकारी योजनाएँ स्त्री सशक्तिकरण के उद्देश्य से कार्यरत हैं। ये संस्थाएँ शिकायत निवारण, परामर्श, अनुसंधान और नीति–सुझाव के माध्यम से महिलाओं के अधिकारों की रक्षा का प्रयास करती हैं। तथापि, सीमित संसाधन, प्रतिबंधित अधिकार–क्षेत्र और प्रशासनिक बाधाएँ इनके प्रभाव को कई बार सीमित कर देती हैं। इसलिए इन संस्थाओं को अधिक स्वायत्त, जवाबदेह और संवेदनशील बनाए जाने की आवश्यकता है।

स्पष्ट है कि भारतीय संविधान और विधिक ढाँचा स्त्री सशक्तिकरण के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करता है, किंतु इसकी वास्तविक सफलता सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक पुनर्संरचना पर निर्भर

करती है। जब वैधानिक अधिकार शक्ति–संनाद के रूप में नारी को आत्मविश्वास और सुरक्षा प्रदान करते हैं, और सामाजिक स्वीकृति संस्कृति–संनाद के माध्यम से विकसित होती है, तभी वैधानिक सशक्तिकरण अपने पूर्ण और सार्थक उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है।

शिक्षा : नारी–शक्ति का बौद्धिक आधार :– शिक्षा को स्त्री सशक्तिकरण की आधारशिला माना जाता है, क्योंकि यही वह माध्यम है जो नारी को आत्मचेतना, आत्मनिर्णय और सामाजिक सहभागिता की क्षमता प्रदान करता है। शिक्षित स्त्री न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन के निर्णय स्वतंत्र रूप से लेने में सक्षम होती है, बल्कि वह परिवार, समाज और राष्ट्र के बौद्धिक विकास में भी सक्रिय भूमिका निभाती है। इस दृष्टि से शिक्षा केवल रोजगार प्राप्त करने का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक मानसिकता को परिवर्तित करने वाला एक दीर्घकालिक सांस्कृतिक उपकरण है।

ऐतिहासिक रूप से भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा की स्थिति अत्यंत सीमित रही है। परंपरागत व्यवस्था में स्त्री की भूमिका को घरेलू दायित्वों तक सीमित मानकर औपचारिक शिक्षा को उसके लिए अनावश्यक समझा गया। औपनिवेशिक काल में सामाजिक सुधार आंदोलनों के परिणामस्वरूप स्त्री शिक्षा की आवश्यकता को स्वीकार किया गया, किंतु स्वतंत्रता के पश्चात ही इसे राज्य की प्राथमिक जिम्मेदारी के रूप में संस्थागत स्वरूप प्राप्त हुआ। बालिका शिक्षा, विद्यालय नामांकन और साक्षरता दर में वृद्धि इसी परिवर्तन का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

समकालीन भारत में स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं के नामांकन में निरंतर वृद्धि देखी गई है, तथा उच्च शिक्षा में भी महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। विश्वविद्यालयों, व्यावसायिक संस्थानों और प्रतियोगी परीक्षाओं में महिलाओं की उपस्थिति यह संकेत देती है कि नारी अब ज्ञान और कौशल के क्षेत्र में सक्रिय रूप से आगे बढ़ रही है। यह स्थिति नारी–शक्ति के बौद्धिक संनाद को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करती है।

इसके बावजूद, शिक्षा के क्षेत्र में स्त्री सशक्तिकरण अनेक चुनौतियों से घिरा हुआ है। ग्रामीण–शहरी विभाजन, आर्थिक असमानता, जातिगत भेदभाव और पारिवारिक मानसिकता आज भी बालिका शिक्षा में बाधक बने हुए हैं। उच्च शिक्षा में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग और गणित जैसे क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी अपेक्षाकृत कम है, जो संरचनात्मक असमानताओं की ओर संकेत करती है। इसके अतिरिक्त, डिजिटल विभाजन ने शिक्षा में एक नई असमानता को जन्म दिया है, जहाँ तकनीकी संसाधनों तक सीमित पहुँच स्त्रियों के शैक्षिक विकास को प्रभावित करती है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि शिक्षा का मात्र औपचारिक विस्तार ही सशक्तिकरण की गारंटी नहीं है। यदि शिक्षा स्त्री को केवल आज्ञाकारी कार्यबल तैयार करने तक सीमित कर दे, तो वह वास्तविक सशक्तिकरण का उद्देश्य पूरा नहीं कर पाती। शिक्षा का उद्देश्य स्त्री में आलोचनात्मक चेतना, वैचारिक स्वतंत्रता और सामाजिक अन्याय के प्रति प्रश्न करने की क्षमता विकसित करना होना चाहिए। इसी से शिक्षा शक्ति–संनाद का स्वर ग्रहण करती है।

शिक्षा और संस्कृति के संबंध को भी स्त्री सशक्तिकरण के संदर्भ में समझना आवश्यक है। शिक्षित स्त्री परंपरा को अंधानुकरण के रूप में स्वीकार नहीं करती, बल्कि उसका विवेकपूर्ण पुनर्पाठ करती है। वह परंपरा में निहित मानवीय मूल्यों को सुरक्षित रखते हुए रूढ़ियों और असमानताओं को चुनौती देती है। इस प्रकार शिक्षा संस्कृति–संनाद को भी सुदृढ़ करती है, जो सामाजिक परिवर्तन को नैतिक और बौद्धिक आधार प्रदान करता है।

राज्य द्वारा संचालित विभिन्न योजनाएँ और नीतियाँकृजैसे बालिका शिक्षा प्रोत्साहन, छात्रवृत्ति कार्यक्रम और उच्च शिक्षा में आरक्षणकृस्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने में सहायक रही हैं। किंतु इन योजनाओं की सफलता उनके प्रभावी क्रियान्वयन और सामाजिक सहयोग पर निर्भर करती है। जब तक परिवार और समाज शिक्षा को स्त्री के अधिकार के रूप में पूर्णतः स्वीकार नहीं करते, तब तक नीतिगत प्रयास सीमित प्रभाव ही उत्पन्न कर पाएँगे।

अतः यह कहा जा सकता है कि शिक्षा नारी–शक्ति का केवल बौद्धिक आधार ही नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की प्रेरक शक्ति भी है। शिक्षित स्त्री न केवल स्वयं सशक्त होती है, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी समानता, न्याय और विवेक का वातावरण निर्मित करती है। इस प्रकार शिक्षा स्त्री सशक्तिकरण की प्रक्रिया में वह केंद्रीय कड़ी है, जो शक्ति–संनाद और संस्कृति–संनादकृदोनों को सार्थक रूप में जोड़ती है।

आर्थिक सशक्तिकरण : आत्मनिर्भरता से सामाजिक शक्ति तक :– आर्थिक सशक्तिकरण स्त्री सशक्तिकरण की वह केंद्रीय धुरी है, जिसके बिना शिक्षा, कानूनी अधिकार और सामाजिक सम्मान भी अधूरे प्रतीत होते हैं। जब तक स्त्री आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं होती, तब तक उसके निर्णय सीमित रहते हैं और उसका सामाजिक स्थान प्रायः परोक्ष नियंत्रण में बना रहता है। आर्थिक संसाधनों पर अधिकार न केवल जीवन–निर्वाह की सुरक्षा प्रदान करता है, बल्कि स्त्री को परिवार और समाज में निर्णायक भूमिका निभाने की क्षमता भी देता है। इस दृष्टि से आर्थिक सशक्तिकरण को स्त्री की वास्तविक स्वतंत्रता का आधार माना जा सकता है।

परंपरागत भारतीय समाज में स्त्री का श्रम लंबे समय तक अदृश्य और अवैतनिक रहा है। घरेलू कार्य, देखभाल श्रम और कृषि–सहयोग जैसे कार्य आर्थिक आँकड़ों में सम्मिलित नहीं किए गए, परिणामस्वरूप स्त्री के योगदान को सामाजिक और आर्थिक मान्यता नहीं मिली। यह स्थिति स्त्री को आर्थिक निर्भरता की ओर धकेलती रही, जिससे उसके निर्णयात्मक अधिकार सीमित हो गए। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में स्त्री के आर्थिक सशक्तिकरण का प्रश्न केवल रोजगार का नहीं, बल्कि श्रम की मान्यता और मूल्यांकन का भी है।

समकालीन भारत में महिलाओं की कार्यबल भागीदारी में वृद्धि हुई है, विशेषकर शिक्षा, स्वास्थ्य, सेवा क्षेत्र और स्वरोजगार के क्षेत्रों में। स्वयं सहायता समूहों, सूक्ष्म–वित्त योजनाओं और ग्रामीण उद्यमिता कार्यक्रमों ने महिलाओं को आय–सृजन के अवसर प्रदान किए हैं। इन पहलों ने न केवल आर्थिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया है, बल्कि सामूहिक संगठन के माध्यम से महिलाओं में नेतृत्व और आत्मविश्वास की भावना भी विकसित की है। यह प्रक्रिया आर्थिक सशक्तिकरण को सामाजिक शक्ति में रूपांतरित करती है। इसके बावजूद आर्थिक क्षेत्र में स्त्री सशक्तिकरण अनेक संरचनात्मक चुनौतियों से जूझ रहा है। कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी अभी भी पुरुषों की तुलना में कम है, और समान कार्य के लिए समान वेतन का सिद्धांत व्यवहार में पूर्णतः लागू नहीं हो पाया है। असंगठित क्षेत्र में कार्यरत अधिकांश महिलाएँ सामाजिक सुरक्षा, स्थायी रोजगार और विधिक संरक्षण से वंचित रहती हैं। इसके अतिरिक्त, विवाह, मातृत्व और घरेलू उत्तरदायित्वों का भार महिलाओं के आर्थिक विकास को बाधित करता है।

आर्थिक सशक्तिकरण का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष संपत्ति और संसाधनों पर अधिकार से भी जुड़ा हुआ है। भूमि, आवास और विरासत में महिलाओं की हिस्सेदारी सामाजिक संरचना को चुनौती देती है और पितृसत्तात्मक नियंत्रण को कमजोर करती है। यद्यपि विधिक रूप से स्त्रियों को संपत्ति में अधिकार प्राप्त हैं, फिर भी व्यवहार में सामाजिक दबाव और पारिवारिक परंपराएँ उन्हें इन अधिकारों के प्रयोग से रोकती हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि आर्थिक अधिकार और सामाजिक स्वीकृति के बीच अभी भी एक स्पष्ट अंतर बना हुआ है। राज्य द्वारा संचालित विभिन्न योजनाएँकृजैसे रोजगार गारंटी कार्यक्रम, महिला उद्यमिता प्रोत्साहन योजनाएँ और वित्तीय समावेशन पहलकृस्त्री के आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास हैं। बैंकिंग, डिजिटल भुगतान और प्रत्यक्ष लाभ अंतरण जैसी व्यवस्थाओं ने महिलाओं को औपचारिक आर्थिक तंत्र से जोड़ा है। किंतु इन योजनाओं की प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करती है कि वे स्थानीय आवश्यकताओं, प्रशिक्षण और बाज़ार पहुँच के साथ कितनी सुसंगत हैं।

राजनीतिक भागीदारी और नेतृत्व : सत्ता–संरचना में स्त्री की भूमिका :– राजनीतिक भागीदारी स्त्री सशक्तिकरण की वह अवस्था है जहाँ नारी केवल सामाजिक परिवर्तन की हितग्राही नहीं रहती, बल्कि नीति–निर्माण और सत्ता–संरचना की सक्रिय सहभागी बनती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिक

अधिकारों का प्रयोग स्त्री को निर्णय–निर्माण की प्रक्रिया में स्थान दिलाता है, जिससे उसकी आवश्यकताएँ, अनुभव और दृष्टिकोण सार्वजनिक नीति का हिस्सा बनते हैं। इस प्रकार राजनीतिक सशक्तिकरण स्त्री को निजी क्षेत्र की सीमाओं से निकालकर सार्वजनिक जीवन में प्रतिष्ठित करता है।

ऐतिहासिक रूप से भारतीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी सीमित रही है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान स्त्रियों की सक्रिय भूमिका के बावजूद, स्वतंत्र भारत की औपचारिक राजनीतिक संरचनाओं में उनका प्रतिनिधित्व अपेक्षाकृत कम रहा। सामाजिक रूढ़ियाँ, पारिवारिक दायित्व, आर्थिक निर्भरता और राजनीतिक हिंसा का भय महिलाओं के राजनीतिक प्रवेश में प्रमुख बाधाएँ बने रहे। इससे यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक अधिकारों की संवैधानिक उपलब्धता अपने आप में प्रभावी सहभागिता की गारंटी नहीं देती।

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के लिए आरक्षण ने राजनीतिक सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप किया है। स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में महिलाओं की अनिवार्य भागीदारी ने उन्हें नेतृत्व, प्रशासन और सामूहिक निर्णय–निर्माण का अनुभव प्रदान किया है। ग्राम पंचायतों से लेकर नगर निकायों तक महिलाओं की उपस्थिति ने न केवल उनकी राजनीतिक दृश्यता बढ़ाई है, बल्कि विकास संबंधी मुद्दोंकृ जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता और जलकृको प्राथमिकता देने की प्रवृत्ति भी विकसित की है।

इसके बावजूद यह भी देखा गया है कि अनेक मामलों में महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व प्रतीकात्मक बना रह जाता है। प्रॉक्सी नेतृत्व की समस्या, जहाँ निर्वाचित महिला प्रतिनिधि के स्थान पर वास्तविक निर्णय पुरुष सदस्य लेते हैं, राजनीतिक सशक्तिकरण की गुणवत्ता पर प्रश्नचिह्न लगाती है। यह स्थिति दर्शाती है कि राजनीतिक सशक्तिकरण केवल संख्या में वृद्धि से नहीं, बल्कि निर्णय–निर्माण की वास्तविक शक्ति से जुड़ा हुआ है। राष्ट्रीय और राज्य स्तर की राजनीति में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अभी भी सीमित है। विधायिकाओं और मंत्रिमंडलों में महिलाओं की कम उपस्थिति यह संकेत देती है कि सत्ता के उच्च स्तर पर पहुँचने के लिए संरचनात्मक बाधाएँ अभी भी प्रभावी हैं। राजनीतिक दलों की आंतरिक संरचना, टिकट वितरण की प्रक्रिया और चुनावी व्यय जैसे कारक महिलाओं की राजनीतिक प्रगति को सीमित करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए संस्थागत सुधार और दलगत इच्छाशक्ति दोनों आवश्यक हैं।राजनीतिक नेतृत्व स्त्री को न केवल अधिकार प्रदान करता है, बल्कि उत्तरदायित्व भी सौंपता है। महिला नेतृत्व सामाजिक न्याय, समावेशन और कल्याणकारी नीतियों के प्रति अधिक संवेदनशील दृष्टिकोण विकसित कर सकता है। यह धारणा कि महिलाएँ केवल ”सॉफ्ट सेक्टर” तक सीमित नेतृत्व कर सकती हैं, स्वयं में एक पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रह है, जिसे व्यवहारिक उदाहरणों ने बार–बार चुनौती दी है। स्पष्ट है कि राजनीतिक भागीदारी स्त्री सशक्तिकरण की प्रक्रिया का उच्चतम स्तर है, जहाँ शक्ति–संनाद सार्वजनिक नीति और शासन के रूप में मूर्त होता है। जब स्त्री नेतृत्व निर्णय–निर्माण की प्रक्रिया में आत्मविश्वास और स्वतंत्रता के साथ सक्रिय होता है, तभी लोकतंत्र वास्तव में समावेशी बनता है। इस प्रकार राजनीतिक सशक्तिकरण न केवल स्त्री की स्थिति को परिवर्तित करता है, बल्कि लोकतांत्रिक व्यवस्था की गुणवत्ता को भी सुदृढ़ करता है।

आर्थिक सशक्तिकरण का सामाजिक प्रभाव भी व्यापक है। आर्थिक रूप से सशक्त स्त्री घरेलू निर्णयों में अधिक भागीदारी करती है, बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान देती है तथा सामाजिक कुरीतियों का विरोध करने में सक्षम होती है। इस प्रकार आर्थिक स्वतंत्रता केवल व्यक्तिगत उपलब्धि न होकर सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बन जाती है। जब स्त्री आय–स्रोत की स्वामिनी होती है, तो उसका सामाजिक संनाद अधिक प्रभावशाली हो जाता है।

स्पष्ट है कि आर्थिक सशक्तिकरण स्त्री सशक्तिकरण की प्रक्रिया में वह आधार है, जो शिक्षा और कानून को व्यवहारिक प्रभाव प्रदान करता है। आत्मनिर्भरता से उत्पन्न आत्मविश्वास स्त्री को निष्क्रिय लाभार्थी से सक्रिय सहभागी में परिवर्तित करता है। इस प्रकार आर्थिक सशक्तिकरण न केवल स्त्री को शक्ति प्रदान करता है, बल्कि समाज की संरचना में भी संतुलन और न्याय की दिशा में निर्णायक भूमिका निभाता है।

सांस्कृतिक बाधाएँ और मानसिकता का परिवर्तन : सामाजिक पुनर्संरचना की अनिवार्यता :– स्त्री सशक्तिकरण की प्रक्रिया में सबसे जटिल और दीर्घकालिक चुनौती सांस्कृतिक बाधाओं और सामाजिक मानसिकता से जुड़ी हुई है। कानून, शिक्षा, आर्थिक अवसर और राजनीतिक प्रतिनिधित्व जैसे संरचनात्मक उपाय स्त्री को औपचारिक अधिकार प्रदान कर सकते हैं, किंतु जब तक समाज की सामूहिक चेतना में परिवर्तन नहीं होता, तब तक इन उपायों का प्रभाव सीमित बना रहता है। सांस्कृतिक मान्यताएँ व्यवहार को दिशा देती हैं, और वही व्यवहार अंततः स्त्री की सामाजिक स्थिति का निर्धारण करता है।

भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक संस्कृति ऐतिहासिक रूप से गहराई तक जड़ें जमाए हुए है। परिवार को सत्ता का केंद्र मानने वाली यह व्यवस्था स्त्री को आज्ञाकारी, सहनशील और परनिर्भर भूमिका में स्थापित करती रही है। बाल्यावस्था से ही लड़कियों को त्याग, समर्पण और मौन का पाठ पढ़ाया जाता है, जबकि लड़कों को निर्णय और नेतृत्व की भूमिका सिखाई जाती है। यह लैंगिक सामाजिककरण स्त्री के आत्मविश्वास और आत्म–अभिव्यक्ति को सीमित कर देता है, जिससे सशक्तिकरण की संभावनाएँ प्रारंभिक स्तर पर ही बाधित हो जाती हैं। सांस्कृतिक बाधाएँ केवल पारिवारिक ढाँचे तक सीमित नहीं हैं, बल्कि धार्मिक व्याख्याओं, सामाजिक रीति–रिवाजों और लोक–मान्यताओं के माध्यम से भी सुदृढ़ होती हैं। परंपरा के नाम पर स्त्री के आचरण, गतिशीलता और आकांक्षाओं को नियंत्रित किया जाता है। अनेक बार संस्कृति को स्थिर और अपरिवर्तनीय मान लिया जाता है, जबकि वास्तव में संस्कृति एक गतिशील प्रक्रिया है, जो समय, संदर्भ और मानवीय विवेक के साथ परिवर्तित होती रहती है। इस तथ्य की अनदेखी स्त्री सशक्तिकरण के मार्ग में गंभीर अवरोध उत्पन्न करती है।

मानसिकता का परिवर्तन किसी तात्कालिक नीति या कानून से संभव नहीं है। इसके लिए दीर्घकालिक सामाजिक संवाद, शिक्षा और उदाहरणों की आवश्यकता होती है। जब स्त्री शिक्षा, रोजगार और नेतृत्व में सफल उदाहरण प्रस्तुत करती है, तब वह सांस्कृतिक रूढ़ियों को चुनौती देती है। ऐसे उदाहरण सामाजिक मानस पर धीरे–धीरे प्रभाव डालते हैं और यह सिद्ध करते हैं कि स्त्री की क्षमता पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं है। मीडिया और लोकप्रिय संस्कृति भी मानसिकता के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि स्त्री को केवल उपभोग की वस्तु या द्वितीयक भूमिका में प्रस्तुत किया जाता है, तो यह सामाजिक पूर्वाग्रहों को मजबूत करता है। इसके विपरीत, जब मीडिया स्त्री को आत्मनिर्भर, निर्णयक्षम और सशक्त रूप में प्रस्तुत करता है, तो यह सामाजिक चेतना को सकारात्मक दिशा में प्रभावित करता है। अतः सांस्कृतिक पुनर्संरचना में मीडिया की जिम्मेदारी अत्यंत महत्वपूर्ण है। पुरुषों की भूमिका भी मानसिकता परिवर्तन में केंद्रीय है। स्त्री सशक्तिकरण को केवल स्त्री का प्रश्न मानना स्वयं में एक सीमित दृष्टिकोण है। जब तक पुरुष अपनी विशेषाधिकार प्राप्त स्थिति की समीक्षा नहीं करते और समानता को साझा मूल्य के रूप में स्वीकार नहीं करते, तब तक सांस्कृतिक परिवर्तन अधूरा रहेगा। साझेदारी, सम्मान और सहयोग की भावना ही सामाजिक संतुलन की आधारशिला बन सकती है।

स्पष्ट है कि सांस्कृतिक बाधाओं का उन्मूलन और मानसिकता का परिवर्तन स्त्री सशक्तिकरण की सबसे गहरी और स्थायी प्रक्रिया है। जब सामाजिक मूल्य समानता, सम्मान और न्याय को व्यवहार में आत्मसात करते हैं, तभी शिक्षा, कानून और आर्थिक अवसर अपने वास्तविक उद्देश्य को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार सांस्कृतिक पुनर्संरचना स्त्री सशक्तिकरण की वह अनिवार्य शर्त है, जो समग्र सामाजिक परिवर्तन को संभव बनाती है।

मीडिया, तकनीक और समकालीन विमर्श : नए अवसर और नई चुनौतियाँ :– इक्कीसवीं सदी में मीडिया और तकनीक ने स्त्री सशक्तिकरण के स्वरूप को गहराई से प्रभावित किया है। पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं के भीतर सीमित रहने वाली स्त्री अब डिजिटल मंचों, सामाजिक मीडिया और तकनीकी संसाधनों के माध्यम से व्यापक सार्वजनिक विमर्श का हिस्सा बन रही है। इस परिवर्तन ने न केवल स्त्री की दृश्यता बढ़ाई है, बल्कि उसे अपनी पहचान, अनुभव और विचारों को अभिव्यक्त करने का नया मंच भी प्रदान किया है। इस संदर्भ में मीडिया और तकनीक को स्त्री सशक्तिकरण का समकालीन उत्प्रेरक कहा जा सकता है।

मीडिया स्त्री की सामाजिक छवि के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाता है। समाचार माध्यम, टेलीविजन, सिनेमा और डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म स्त्री को जिस रूप में प्रस्तुत करते हैं, वही रूप सामाजिक मानसिकता को आकार देता है। जब मीडिया स्त्री को केवल सौंदर्य, त्याग या सहनशीलता की प्रतीक के रूप में सीमित करता है, तो यह पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण को सुदृढ़ करता है। इसके विपरीत, जब स्त्री को नेतृत्वकर्ता, विचारक और परिवर्तनकर्मी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तो यह समाज में समानता और सम्मान की चेतना को प्रोत्साहित करता है।

डिजिटल तकनीक ने स्त्री को अभिव्यक्ति की नई स्वतंत्रता प्रदान की है। सामाजिक मीडिया मंचों ने महिलाओं को अपने अनुभव साझा करने, सामाजिक अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने और समर्थन नेटवर्क बनाने का अवसर दिया है। ऑनलाइन अभियानों और जन–जागरूकता प्रयासों ने लैंगिक हिंसा, भेदभाव और असमानता जैसे मुद्दों को सार्वजनिक विमर्श के केंद्र में लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस प्रकार तकनीक स्त्री सशक्तिकरण के लिए एक वैकल्पिक सार्वजनिक क्षेत्र का निर्माण करती है। हालाँकि, तकनीकी विस्तार अपने साथ नई चुनौतियाँ भी लेकर आया है। साइबर उत्पीड़न, ऑनलाइन दुर्व्यवहार और डिजिटल निगरानी ने स्त्री की सुरक्षा और निजता को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। अनेक महिलाएँ ऑनलाइन हिंसा के भय के कारण अपनी अभिव्यक्ति को सीमित करने के लिए विवश होती हैं। यह स्थिति दर्शाती है कि तकनीक स्वयं में तटस्थ नहीं है; उसका सामाजिक प्रभाव उस संरचना और मानसिकता पर निर्भर करता है, जिसमें उसका उपयोग किया जाता है। डिजिटल विभाजन भी स्त्री सशक्तिकरण के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण चुनौती है। ग्रामीण क्षेत्रों, आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों और वंचित समुदायों की महिलाएँ अभी भी तकनीकी संसाधनों और डिजिटल साक्षरता से वंचित हैं। इससे तकनीक आधारित अवसरों का लाभ सीमित वर्ग तक ही सिमट जाता है, और असमानताएँ और अधिक गहरी हो जाती हैं। अतः तकनीकी सशक्तिकरण के लिए समावेशी नीति और डिजिटल शिक्षा अनिवार्य है।

समकालीन विमर्श में स्त्री सशक्तिकरण के प्रश्नों ने वैश्विक और स्थानीय दोनों स्तरों पर नया स्वरूप ग्रहण किया है। वैश्विक अभियानों और अंतरराष्ट्रीय संवादों ने स्थानीय मुद्दों को वैश्विक संदर्भ प्रदान किया है, जबकि स्थानीय अनुभवों ने वैश्विक विमर्श को यथार्थ से जोड़ा है। यह पारस्परिक संवाद स्त्री सशक्तिकरण को एक बहुआयामी और गतिशील प्रक्रिया के रूप में स्थापित करता है।

अतः यह कहना उचित ही होगा कि मीडिया और तकनीक स्त्री सशक्तिकरण के लिए अवसर और चुनौतीकृदोनों प्रस्तुत करते हैं। जब इन्हें समानता, सुरक्षा और नैतिक उत्तरदायित्व के साथ उपयोग किया जाता है, तब ये स्त्री की आवाज़ को सशक्त बनाते हैं और सामाजिक परिवर्तन को गति देते हैं। इस प्रकार समकालीन विमर्श में मीडिया और तकनीक स्त्री सशक्तिकरण की नई संभावनाओं का द्वार खोलते हैं, किंतु उनके साथ सजग और संवेदनशील दृष्टिकोण भी उतना ही आवश्यक है।

चुनौतियाँ, संभावनाएँ और भविष्य की दिशा : स्त्री सशक्तिकरण का समग्र दृष्टिकोण :– स्त्री सशक्तिकरण की प्रक्रिया बहुआयामी होने के साथ–साथ निरंतर विकसित होने वाली सामाजिक प्रक्रिया है। पिछले दशकों में शिक्षा, कानून, आर्थिक अवसर, राजनीतिक भागीदारी और तकनीकी विस्तार के माध्यम से महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, किंतु इसके बावजूद स्त्री सशक्तिकरण आज भी अनेक संरचनात्मक और मानसिक चुनौतियों से घिरा हुआ है। इन चुनौतियों को समझे बिना भविष्य की दिशा को स्पष्ट करना संभव नहीं है। प्रमुख चुनौती सामाजिक मानसिकता की जड़ता से जुड़ी हुई है। पितृसत्तात्मक मूल्यों का प्रभाव आज भी पारिवारिक संरचनाओं, सामाजिक व्यवहार और संस्थागत निर्णयों में दिखाई देता है। स्त्री को समान अधिकार प्रदान करने वाली नीतियाँ कई बार व्यवहार में इसीलिए प्रभावहीन हो जाती हैं, क्योंकि समाज उन्हें स्वीकार करने के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं होता। यह स्थिति दर्शाती है कि सशक्तिकरण केवल नीति–निर्माण का नहीं, बल्कि मूल्य–परिवर्तन का भी प्रश्न है।

आर्थिक क्षेत्र में प्रगति के बावजूद महिलाओं की कार्यबल भागीदारी में अस्थिरता एक गंभीर चुनौती बनी हुई है। असंगठित क्षेत्र में महिलाओं का प्रभुत्व, रोजगार की अनिश्चितता और सामाजिक सुरक्षा का

अभाव उनके आर्थिक सशक्तिकरण को कमजोर करता है। इसके साथ ही, शिक्षा और कौशल विकास के बीच सामंजस्य की कमी स्त्री की क्षमता को पूर्ण रूप से उपयोग में आने से रोकती है। यह आवश्यक है कि आर्थिक नीतियाँ लैंगिक संवेदनशीलता के साथ तैयार की जाएँ।

राजनीतिक सशक्तिकरण के संदर्भ में प्रतिनिधित्व और वास्तविक निर्णय–निर्माण के बीच अंतर एक महत्वपूर्ण चुनौती है। संख्या में वृद्धि के बावजूद महिलाओं की नीति–निर्माण में प्रभावी भूमिका अभी भी सीमित है। राजनीतिक दलों और संस्थानों में आंतरिक लोकतंत्र की कमी महिलाओं के नेतृत्व विकास को बाधित करती है। इस दिशा में संस्थागत सुधार और नेतृत्व प्रशिक्षण आवश्यक हैं। इन चुनौतियों के बीच संभावनाएँ भी व्यापक हैं। शिक्षा का बढ़ता स्तर, डिजिटल साक्षरता, महिला उद्यमिता और वैश्विक विमर्श स्त्री सशक्तिकरण को नई दिशा प्रदान कर रहे हैं। स्वयं सहायता समूहों, सामाजिक आंदोलनों और स्थानीय नेतृत्व के उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि जब अवसर और समर्थन उपलब्ध होता है, तो महिलाएँ परिवर्तन की अग्रदूत बन सकती हैं। यह संभावना समाज की परिवर्तनशील क्षमता का परिचायक है।

भविष्य की दिशा में स्त्री सशक्तिकरण को एक समग्र और अंतःविषय दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, सुरक्षा और राजनीतिक सहभागिता को पृथक–पृथक न देखकर परस्पर संबद्ध प्रक्रियाओं के रूप में समझना होगा। नीति–निर्माण में स्त्री को केवल लक्षित समूह नहीं, बल्कि सहभागी और सह–निर्माता के रूप में स्थान देना आवश्यक है। साथ ही, पुरुषों और युवाओं को सशक्तिकरण की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से सम्मिलित करना अनिवार्य है। समानता को साझा सामाजिक मूल्य के रूप में स्वीकार किए बिना स्थायी परिवर्तन संभव नहीं है। संवाद, संवेदनशीलता और साझेदारी के माध्यम से ही सामाजिक संरचना में संतुलन स्थापित किया जा सकता है।

स्पष्ट है कि स्त्री सशक्तिकरण कोई एकल उपलब्धि नहीं, बल्कि निरंतर चलने वाली सामाजिक यात्रा है। चुनौतियों के बावजूद संभावनाएँ आशाजनक हैं, बशर्ते नीति, समाज और संस्कृति एक समन्वित दृ ष्टि के साथ आगे बढ़ें। भविष्य का सशक्त समाज वही होगा, जिसमें स्त्री की शक्ति को विकास की अनिवार्य शर्त के रूप में स्वीकार किया जाए।

निष्कर्ष :– यह लेख स्त्री सशक्तिकरण को एक एकांगी अवधारणा के रूप में नहीं, बल्कि एक बहुआयामी, ऐतिहासिक और सतत सामाजिक प्रक्रिया के रूप में स्थापित करता है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री सशक्तिकरण केवल अधिकारों की घोषणा या नीतिगत हस्तक्षेप तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक मानसिकता और संस्थागत व्यवहार में गहरे परिवर्तन की माँग करता है। स्त्री की स्थिति को समझने के लिए इतिहास, शिक्षा, कानून, अर्थव्यवस्था, राजनीति, संस्कृति और तकनीककृइन सभी आयामों को समग्र रूप से देखना अनिवार्य है।

लेख के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय समाज में स्त्री सशक्तिकरण की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति अवश्य हुई है, विशेषकर संवैधानिक अधिकारों, शिक्षा के विस्तार और कानूनी संरक्षण के क्षेत्र में। भारतीय संविधान ने स्त्री को समानता, स्वतंत्रता और गरिमा का विधिक आधार प्रदान किया, जिसने नारी अधिकारों को नैतिक आग्रह से आगे बढ़ाकर न्यायिक संरक्षण के दायरे में स्थापित किया। किंतु विधिक सशक्तिकरण और सामाजिक यथार्थ के बीच विद्यमान अंतर यह संकेत देता है कि कानून अपने आप में पर्याप्त नहीं है, जब तक उसे सामाजिक स्वीकृति और प्रभावी क्रियान्वयन का समर्थन प्राप्त न हो। शिक्षा को इस लेख में स्त्री सशक्तिकरण की बौद्धिक आधारशिला के रूप में रेखांकित किया गया है। शिक्षित स्त्री न केवल आत्मनिर्णय की क्षमता अर्जित करती है, बल्कि वह सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देने की वैचारिक शक्ति भी विकसित करती है। फिर भी, डिजिटल विभाजन, विषयगत असमानता और गुणवत्ता की चुनौती यह दर्शाती है कि शिक्षा के क्षेत्र में मात्र पहुँच ही नहीं, बल्कि समान अवसर और आलोचनात्मक चेतना का विकास भी आवश्यक है। आर्थिक सशक्तिकरण के विश्लेषण से यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि आत्मनिर्भरता स्त्री की वास्तविक स्वतंत्रता का मूल तत्व है। जब स्त्री आय–स्रोत, संपत्ति और संसाधनों पर अधिकार प्राप्त करती है, तब वह पारिवारिक और सामाजिक निर्णयों में प्रभावी भूमिका निभाने लगती है।

तथापि, श्रम की अवमान्यता, असंगठित क्षेत्र की असुरक्षा और समान वेतन की कमी जैसे प्रश्न यह स्पष्ट करते हैं कि आर्थिक सशक्तिकरण की प्रक्रिया अभी अधूरी है।

राजनीतिक भागीदारी और नेतृत्व स्त्री सशक्तिकरण का उच्चतम स्तर प्रस्तुत करते हैं, जहाँ नारी नीति–निर्माण और शासन की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष भूमिका निभाती है। स्थानीय स्वशासन में आरक्षण ने इस दिशा में सकारात्मक परिवर्तन उत्पन्न किया है, किंतु प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व और वास्तविक निर्णय–निर्माण के बीच का अंतर यह दर्शाता है कि राजनीतिक सशक्तिकरण की गुणवत्ता पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। सांस्कृतिक बाधाओं और मानसिकता के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि पितृसत्तात्मक मूल्य स्त्री सशक्तिकरण की सबसे गहरी और जटिल चुनौती हैं। कानून और नीतियाँ बाह्य परिवर्तन ला सकती हैं, किंतु स्थायी परिवर्तन के लिए सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक पुनर्संरचना अनिवार्य है। मीडिया और तकनीक ने समकालीन युग में स्त्री को अभिव्यक्ति और संगठन के नए अवसर प्रदान किए हैं, परंतु साथ ही नई प्रकार की असमानताओं और उत्पीड़न की चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं।

समग्र रूप से यह लेख यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि स्त्री सशक्तिकरण कोई एकल उपलब्धि नहीं, बल्कि निरंतर चलने वाली सामाजिक प्रक्रिया है। इसकी सफलता शिक्षा, कानून, आर्थिक अवसर, राजनीतिक सहभागिता और सांस्कृतिक परिवर्तनकृइन सभी के परस्पर संतुलन पर निर्भर करती है। जब स्त्री को केवल विकास की लाभार्थी नहीं, बल्कि विकास की सहभागी और सह–निर्माता के रूप में स्वीकार किया जाता है, तभी सशक्तिकरण अपने वास्तविक उद्देश्य को प्राप्त करता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि स्त्री सशक्तिकरण केवल स्त्री का प्रश्न नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, लोकतांत्रिक परिपक्वता और सतत विकास का अनिवार्य आधार है। एक सशक्त स्त्री न केवल स्वयं को रूपांतरित करती है, बल्कि परिवार, समाज और राष्ट्र के भविष्य को भी दिशा प्रदान करती है। इसलिए स्त्री सशक्तिकरण को नीतिगत प्राथमिकता के साथ–साथ सांस्कृतिक प्रतिबद्धता के रूप में स्वीकार करना ही एक समावेशी और न्यायपूर्ण समाज की ओर अग्रसर होने का मार्ग है।

संदर्भ–सूची :–

1. थ्योराइज़िंग पैट्रियार्की, लेखक–वाल्बी सिल्विया, 1990 प्रकाशक–ऑक्सफोर्ड ब्लैकवेल पब्लिशर्स।
2. जेंडरिंग कास्टः थ्रू अ फ़ेमिनिस्ट लेंस, लेखक–उमा चक्रवर्ती, 2003 प्रकाशक–कोलकाता स्त्री पब्लिकेशन्स।
3. द हिस्ट्री ऑफ़ डूइंगः एन इलस्ट्रेटेड अकाउंट ऑफ़ मूवमेंट्स फ़ॉर विमेन्स राइट्स एंड फ़ेमिनिज़्म इन इंडिया, लेखक–राधा कुमार, 1993 प्रकाशक–लंदन वर्सो पब्लिशन्स (भारतीय संस्करण : ज़ुबान, नई दिल्ली)।
4. विमेन्स स्टडीज़ एंड द विमेन्स मूवमेंट इन इंडिया, लेखकदृवीना मजूमदार, 2003 प्रकाशक–नई दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. विमेन, डेवलपमेंट एंड द यूएनः ए सिक्स्टी–ईयर क्वेस्ट फ़ॉर इक्वैलिटी एंड जस्टिस, लेखक–देवकी जैन, 1996 प्रकाशकदृब्लूमिंगटन इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. विमेन एंड सोसाइटी इन इंडिया, लेखक–नीलम देसाई एवं कृष्णराज मैत्रेयी, 1987 प्रकाशक–नई दिल्ली अजय पब्लिशन्स।
7. डिसलोकेटिंग कल्चर्सः आइडेंटिटीज़, ट्रेडिशन्स, एंड थर्ड वर्ल्ड फ़ेमिनिज़्म, लेखकदृउमा नारायण, 1997 प्रकाशक–न्यूयॉर्क रूटलेज।
8. द नेशन एंड इट्स फ़्रैग्मेंट्सः कॉलोनियल एंड पोस्ट–कॉलोनियल हिस्ट्रीज़, लेखक–पार्थ चटर्जी, 1993 प्रकाशक–प्रिंसटन प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. विमेन एंड लॉ इन इंडिया, लेखक–लोटिका सरकार, 2007 प्रकाशक–नई दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. विमेन, जेंडर एंड डेवलपमेंट, लेखक–केट यंग, 2002 प्रकाशक–लंदन ज़ेड बुक्स।
11. विमेन एम्पावरमेंट इन इंडिया, लेखक–बिनोद गोयल, 2012 प्रकाशक–नई दिल्ली प्रकाशन प्रभाग, भारत सरकार।

गुरु गोबिंद सिंह कृत 'पख्यान-चरित्र'

नारी के उच्च आदर्शों का बहुआयामी दस्तावेज

तेजा सिंह*

सारांश :– भारतीय उपाख्यान परंपरा में नीति–बोध पर आधारित कथाओं की एक प्रभावशाली परंपरा रही है। 'श्री दसम ग्रन्थ साहिब' में गुरु गोबिंद सिंह की 'पख्यान–चरित्र' रचना उसी परंपरा का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है। गुरु गोबिंद सिंह कृत 'पख्यान–चरित्र' जिसे 'चरित्रोपाख्यान' भी कहा जाता है, नारी के बहुआयामी स्वरूपों का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट दस्तावेज प्रस्तुत करता है। इस ग्रंथ में स्त्री केवल पात्र नहीं बल्कि नीति, विवेक, मनोविज्ञान और सामाजिक यथार्थ की वाहक के रूप में उभरती है। इस उपाख्यानक रचना में नारी के सकारात्मक, नकारात्मक तथा तटस्थ तीनों रूप उभरकर सामने आते हैं– जहाँ वह कभी साहस और निष्ठा का प्रतीक बनती है, तो कहीं भ्रम, आकांक्षा और छल की प्रतिमूर्ति। इस रचना में स्त्री–चरित्र केवल आलोचना का माध्यम नहीं बल्कि मानव–स्वभाव, नीति, विवेक और सामाजिक मनोविज्ञान के आदर्शीकरण का प्रतिबिंब है। इस आलेख में नारी के विविध आदर्श रूपों के अंतर्गत– शक्ति, साहस, नीति, मोह और विवेक के संदर्भ में 'पख्यान–चरित्र' का सकारात्मक विश्लेषण किया गया है।

बीज–शब्द :– चरित्रोपाख्यान, दशमग्रंथ, दशमेश, दस्तावेज़, उपाख्यान परंपरा, नीति बोध, आध्यात्मिक, सकारात्मक, आदर्श, बहुआयामी, मनोविज्ञान, वीरांगना।

प्रस्तावना :– भारतीय साहित्यिक परंपरा में नारी की उपस्थिति अत्यंत बहुआयामी और बहुरंगी रही है। वह सृजन की जननी भी है और परीक्षण की प्रेरणा भी। वेदों और उपनिषदों से लेकर पुराणों, महाकाव्यों तथा लोक कथाओं तक स्त्री–चरित्रों का वर्णन केवल सौंदर्य, प्रेम या मातृत्व तक सीमित नहीं रहा है, बल्कि उनमें नारी की विविध मानसिक, सामाजिक और राजनीतिक भूमिकाएँ स्पष्ट रूप से व्यक्त होती हैं। नारी को कभी आदर्श, कभी प्रेरक, कभी नीति–प्रद, कभी चेतावनी–प्रद और कभी यथार्थवादी स्वरूप में देखा गया। इसी परिप्रेक्ष्य में गुरु गोबिंद सिंह कृत 'चरित्रोपाख्यान' एक विशिष्ट और बहुचर्चित रचना है, जिसमें नारी के विविध रूपों का उपाख्यान शैली में प्रभावी चित्रण मिलता है। गुरु गोबिंद सिंह ने 'श्री दसम ग्रन्थ साहिब' में जब 'चरित्रोपाख्यान' की रचना की उस समय समाज में नैतिक पतन और भोगवाद का प्रसार था। इस सन्दर्भ में डॉ. हरिभजन सिंह का कथन तर्कसंगत है, वे लिखते है कि "गुरु गोबिंद सिंह ने उपदेश और व्याख्यान, दोनों रीतियों से अपने अनुयायियों को इस प्रकार के प्रलोभन के प्रति सावधान किया। उन्होंने अपने सैनिकों को जिन चार 'बज्जर कुरैहतों'– बज्र कुरीतियों अथवा घातक अपराधों से बचने का उपदेश बड़ी कड़ाई से दिया उनमें से एक था 'परस्त्री–गमन'। इसी उपदेश को सेनानियों के हृदय मैं बैठाने के लिए 'चरित्रोपाख्यान' की रचना हुई।"[1] गुरु गोबिंद सिंह का मानना है कि नारी सृष्टि की आधारशिला और समाज की नैतिक शक्ति दोनों है।

'पख्यान–चरित्र' का परिचय :– गुरु गोबिंद सिंह कृत 'पख्यान–चरित्र' एक विशिष्ट और बहुचर्चित रचना है। गुरु जी की रचनाओं के संग्रह 'दशम ग्रन्थ' में संकलित यह कृति, उपाख्यान परंपरा की एक उत्कृष्ट कड़ी है। चरित्रोपाख्यान में 404 चरित्र अथवा कथाएँ हैं, जिनमें विविध प्रकार की स्त्रियों के व्यवहार, नीति और बुद्धि का चित्रण है। इन उपाख्यानों में स्त्री के विविध रूपों का अत्यंत सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। कथाएं मात्र मनोरंजन नहीं बल्कि नीति, विवेक और जीवन–शिक्षा से प्रयोजित हैं। इन कथाओं का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं बल्कि मानव–मन की दुर्बलताओं और नैतिक स्थिरता की परीक्षा है। इसमें नारी को केवल मोह–माया का प्रतीक नहीं बल्कि शक्ति, नीति, धर्म और विवेक का प्रतिनिधित्व करने वाली माना गया है। डॉ. जोध सिंह के अनुसार "गुरु गोबिंद सिंह द्वारा रचित चरित्रोपाख्यान जीवन के विभिन्न दृष्टिकोणों,

---

***पी.एच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला।**

दु:साहसिक चरित्रों और कामोशक्ति के गंभीर क्षणों के प्रति सावधान करने वाली कृति है जिसे शुद्ध उपयोगितावाद को ध्यान में रखकर लिखा गया है।"[2]

नारी के विविध आदर्श रूपों का विश्लेषण

1. नारी का आध्यात्मिक रूप : शक्ति स्वरूपा :– गुरु गोबिंद सिंह की दृष्टि में नारी 'शक्ति' का मूर्त रूप है। उन्होंने 'पख्यान–चरित्र' में तरह–तरह के नारी चरित्रों का उल्लेख करने से पूर्व सर्वप्रथम आध्यात्मिक शक्ति का केन्द्रीय बिंदु और पौराणिक महानारी देवी भगवती के विविध शक्ति रूपों का मंगल जाप किया है। इस सन्दर्भ में डॉ. गोविन्द्नाथ राजगुरु कहते है– "गुरु जी ने विभिन्न कोटिक नारी चरित्रों का पख्यान लिखने से पूर्व एक पौराणिक महानारी (भगवती) का पुण्य स्मरण किया है। यह तथ्य एक ओर तो गुरु घर की नारी संबंधी दृष्टि के अनुकूल है तो दूसरी ओर नारी जागरण हेतु एक प्रतिष्ठित नारी –प्रतीक (चंडी) को ही अपने युग के समक्ष प्रस्तुत कर गुरु जी ने युग के अनुरूप एक नव–नारी के उदय की घोषणा की है।"[3] गुरु गोबिंद सिंह देवी को शक्ति–तत्त्व की परम अभिव्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए कहते है–

"तुही जोगमाया तुही बाकबानी। तुही आपु रूपा तुही स्री भवानी।
तुही बिशन तूं ब्रहम तूं रुद्र राजै। तुही बिस्वमाता सदा जै बिराजै।।
तुही काल की रात्रि ह्वैकै बिहारै। तुही आदि उपावै तुही अंत मारै।
तुही राज राजेस्वरी कै बखानी। तुही चौदहूँ लोक की आपु रानी।।"[4]

इन पंक्तियों में देवी, जो नारी का ही शक्ति रूप है; को प्रकृति (योगमाया), ज्ञान–वाणी (बाकबानी), स्वयंसिद्ध सत्ता (आपु–रूपा) और स्त्री–शक्ति (भवानी) के रूप में बहुआयामी स्वरूप मिलता है। त्रिमूर्ति का उद्गम भी शक्ति को बताया गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि सृष्टि रचना, पालन और संहार का आधार भी वही आदिशक्ति है। देवी को सृष्टि–चक्र की परम संचालिका कहा गया है। वह कालरात्रि रूप में विनाश की शक्ति है, वही सृष्टि का आरम्भ और अंत निर्धारित करती है। उसे समस्त राजसत्ता की अधिष्ठात्री तथा चौदह लोकों की सार्वभौम स्वामिनी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। वस्तुतः कहा जा सकता है कि गुरु गोबिंद सिंह नारी को 'दैवी ऊर्जा' का प्रतीक मानते हैं, जो संसारियों को आत्मबल प्रदान करती है। अतः नारी–तत्त्व मात्र जैविक या सामाजिक इकाई नहीं, बल्कि सृष्टि–व्यवस्था, धर्म–नियमन और जीवन–ऊर्जा का आध्यात्मिक केन्द्र स्थापित करता है।

2. नारी का नैतिक रूप : नीति और मर्यादा की संरक्षिका :– 'चरित्रोपाख्यान' की कई कथाओं में नारी मर्यादा और धर्म का पालन करती दिखाई देती है। गुरु गोबिंद सिंह का मानना है कि नारी का नैतिक रूप समाज की नीति, मर्यादा और सदाचार की संरक्षक शक्ति के रूप में उभरता है। चरित्र कथा 151 में रानी गुमानमति राजा के युद्ध पर जाने की स्थिति में अपने पति के प्रति अटूट निष्ठा और दाम्पत्य–धर्म का उद्घोष करती है। वह मानती है कि उसके लिए गृहस्थ जीवन का कोई भी सुख तब अर्थहीन है, जब वह अपने पति से पृथक हो। अतः वह यह संकल्प प्रकट करती है कि वह संघर्ष और विपत्ति के समय भी अपने पति के साथ रहेगी तथा उनके चरणों का अनुगमन ही उसके जीवन का परम कर्तव्य है। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं–

"जब राजा रन काज सिधारै। तब रानी इह भाँति उचारै।
हौ नहि तुमै छोरि ग्रहि रहिहों। प्राननाथ के चरनन गहिहों।।"[5]

इस प्रकार 'चरित्रोपाख्यान' की कथाएँ यह शिक्षा देती हैं कि नारी केवल घरेलू भूमिका तक सीमित नहीं बल्कि नैतिक संयम, विवेक और धर्मनिष्ठा की प्रेरक धुरी है। गुरु साहिब नारी को समाज में चरित्र–निर्माण और धर्मरक्षा की महत्वपूर्ण साझेदार के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। नारी मानव–चरित्र को सही दिशा देने वाली नैतिक चेतना का सशक्त प्रतीक बनकर सामने आती है। बलजीत कौर के अनुसार, "यह पात्र धर्मनिष्ठा की मूर्ति है, न कि प्रलोभन की प्रतिमा।"[6]

3. नारी का वीर रूप : धर्म की रक्षिका :– 'चरित्रोपाख्यान' में प्रस्तुत नारी चरित्र अनेक दृष्टांतों में संघर्षशील और साहसी दिखाए गए हैं। उदाहरण के लिए, ग्रंथ में कुछ नायिकाओं का वर्णन युद्ध और संकट में निडर होकर समाज की रक्षा करने वाले रूप में किया गया है। यह दृष्टिकोण उस समय के सामाजिक मानदंडों से भिन्न था, जो नारी को केवल घर और परिवार तक सीमित समझते थे। संकट आने पर स्त्री धैर्य धारण कर

लेती है और आवश्यकता पड़ने पर युद्धभूमि में उतरने से भी पीछे नहीं हटती। चरित्र कथा 147 में गुरु जी खैरी नामक स्त्री के शौर्य का चित्रांकन करते हुए कहते है कि कैसे वह स्त्री संकट की घड़ी में अपने पति के प्राणों की रक्षा करती है–

"सूरबीर बहु भांति संघारे। खेदि खेत ते खान निकारे।
निजु भरतहि छुरवाइ लयाई। भाँति भाँति सों बजी बधाई।।"[7]

गुरु गोबिंद सिंह की रचना में साहसी नारी पात्र समाज के बंधनों को तोड़कर धर्म और न्याय की रक्षा करती हैं। इन पात्रों में न केवल शारीरिक बलिदान बल्कि मानसिक दृढ़ता भी दिखाई देती है। एक अन्य चरित्र कथा में दशम गुरु द्रौपदी के माध्यम से नारी के वीरांगना रूप को व्यक्त करते है। 'द्रौपदी स्वयंवर' के दौरान जब दुर्योधन और अन्य राजा अर्जुन से युद्ध छेड़ देते हैं, तो उस संकट की घड़ी में अर्जुन का साथ देने के लिए द्रौपदी स्वयं धनुष बाण हाथ में लेकर शौर्य दिखाती है। इस बारे गुरु जी लिखते है–

"एक बिसिख अरजुन के उर मै मारियो। गिरयो मूरछना धरनि न नैक सँभारियो।
तबै द्रोपती साइक धनुख संभारकै। हो बहु बीरन कौ दियो छिनिक मौ मारिकै।।"[8]

यहाँ द्रौपदी और खैरी का वीरांगना रूप उभर कर आता है, जो पारंपरिक स्त्री चरित्रों से भिन्न है। इस प्रकार यहाँ नारी 'दुर्गा' का प्रतिरूप बन जाती है। यह चरित्र स्त्री को केवल भावनात्मक या शोकग्रस्त रूप में नहीं बल्कि युद्धोपयोगी, सक्रिय और साहसी रूप में दर्शाता है। साहसी नारी पात्र यह संदेश देते हैं कि नारी केवल संवेदनशील नहीं बल्कि संघर्षशील और सक्रिय भी हो सकती है। अतः कहा जा सकता है की गुरु गोबिंद सिंह ने नारी को केवल घरेलू सीमा तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि 'धर्म–युद्ध' की सहभागी के रूप में चित्रित किया है।

4. नारी का मोह रूप : आत्मनियंत्रण की परीक्षा :– गुरु गोबिंद सिंह ने नारी के आकर्षण को पुरुष के आत्मसंयम की परीक्षा बताया है। 'पख्यान–चरित्र' में नारी का मोह मनुष्य की आंतरिक कमजोरी और आकर्षण–जनित भ्रम का रूपक है। गुरु गोबिंद सिंह इसे नारी–दोष नहीं, बल्कि मानसिक मोह–दोष मानते हैं, जो विवेक को भ्रमित कर धर्म से विचलित करता है। चरित्रोपाख्यान के अनेक प्रसंगों में सुंदरता, चातुर्य, लोभ, भय या छल के माध्यम से नायकों की परीक्षा होती है। गुरबचन सिंह इसे "मानव–मन की 'काम–वृत्ति' पर नियंत्रण का दार्शनिक प्रतीक"[9] मानते हैं। जैसे चरित्र कथा 117 में एक सौन्दर्य यौवना, एक राजा को काम–क्रीड़ा का प्रलोभन देती हुई कहती है

"होत पुरख ते मै त्रिया, त्रिय ते नर हवै जाउ ।
नर ह्वै सिखवौ मंत्र तुहि, त्रिय हवै भोग कमाउ।।"[10]

इस तरह से अन्य चरित्रों में भी रूप, वचन, लोभ और छल के माध्यम से मोह की स्थितियाँ प्रस्तुत की गई हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि वास्तविक परीक्षा बाहरी नहीं, बल्कि आत्मनियंत्रण की है। इसलिए गुरु गोबिंद सिंह का उद्देश्य नारी को दोष देना नहीं, बल्कि मनुष्य को यह चेताना है कि मोह के क्षणों में सजगता, आत्मनियंत्रण और विवेक ही उसे पतन से बचा सकते हैं। अतः उक्त कथा के अंत में गुरु जी राजा के माध्यम से आत्म–सयंत होकर निम्न वचन सुनाते हुए उपदेश देते है–

"कोट कशट स्यानो सहहि कैसौ दहै अनंग। नैक नेक नहि कीजियै तऊ तरनि के संग।।"[11]

अर्थात बुद्धिमान एवं विवेकी व्यक्ति अनगिनत कष्टों और परिस्थितिजन्य संकटों का सामना कर सकता है, किन्तु वह काम– विकार (अनंग/कामदेव) के प्रभाव में आकर स्वयं को जलने नहीं देता। यदि व्यक्ति नैतिक मर्यादा, ईमानदारी और सदाचार का पालन नहीं करता है तो वह अवश्य ही तरनि माने सांसारिक मोह, वासनाओं या प्रलोभनों की धारा के साथ बह जाता है। गुरु गोबिंद सिंह यहाँ जीवन–संघर्ष में नैतिक आत्मसंयम को आत्मिक बल का प्रमुख स्तम्भ बताते है, जो 'चरित्रोपाख्यान' का मूल उद्देश्य भी है।

5. नारी का विवेक रूप : नीति और धर्म की उपदेशक :– 'पख्यान–चरित्र' में नारी का विवेक रूप नारी को मात्र आकर्षण या मोह का प्रतीक न मानकर, नीति, धर्म और सत्पथ की शिक्षिका के रूप में भी प्रस्तुत करता है। गुरु गोबिंद सिंह दिखाते हैं कि नारी केवल परीक्षा का कारण नहीं, बल्कि कई प्रसंगों में मार्गदर्शक, चेतावनी देने वाली और धर्म की रक्षक है। अनेक चरित्रों में स्त्रियाँ बुद्धिमत्ता, दूरदृष्टि और सत्यनिष्ठा से

भ्रमित पुरुष पात्रों को सही निर्णय लेने के लिए प्रेरित करती हैं। वे छल, अधर्म और अहंकार के परिणामों को समझाकर नीति के अनुरूप आचरण का मार्ग सुझाती हैं। शची चरित्र कथा के माध्यम से गुरु जी ने इस बात को स्पष्ट किया है, जिसमें शची राजा ययाति को नीति और धर्म का उपदेश देती हुई नारी की निष्ठा और विवेक का परिचय देती है। कथन द्रष्टव्य है–

"रोइ सची यौ बचन उचारो। गयो एस परदेस हमारो।
जे हमरे सत को तूं टरिहैं। महाँनरक के भीतर परिहै।।"[12]

इन पंक्तियों में स्त्री का रूप वफादार, नीति–निष्ठ और सत्यवादी है, जो पुरुष को उसके कर्तव्य की याद दिलाती हुई उसे नीति विरुद्ध काम करने पर, उससे होने वाले बुरे परिणामों की ओर उपदेश देते हुए सचेत करती है। इस प्रकार नारी विवेक, न्याय और नैतिक अनुशासन की प्रतिनिधि बनकर उभरती है। गुरु गोबिंद सिंह का संदेश स्पष्ट है कि धर्म केवल बाहरी शक्ति से नहीं, बल्कि अंतःकरण की शुद्धि और सद्बुद्धि से फलित होता है और इसमें स्त्री का विवेकपूर्ण योगदान समाज व व्यक्तित्व दोनों को दिशा देता है।

आधुनिक नारी विमर्श के परिप्रेक्ष्य में :– आधुनिक नारी–विमर्श के परिप्रेक्ष्य में 'पख्यान–चरित्र' का अध्ययन यह संकेत करता है कि इसकी चरित्र कथाओं को केवल नारी–आलोचना के रूप में नहीं पढ़ा जाना चाहिए बल्कि समाज की नैतिक संरचना और सकारात्मक संबंधों के विश्लेषण के रूप में समझा जाना चाहिए। गुरु गोबिंद सिंह द्वारा प्रस्तुत स्त्री–पात्र वस्तुतः किसी स्त्री समुदाय का प्रतिनिधित्व नहीं करते बल्कि वे माया, बुद्धि, मोह, विवेक, छल और नीति जैसी मानसिक व सामाजिक शक्तियों के रूपक हैं। समकालीन दृष्टि से 'पख्यान–चरित्र' यह प्रश्न उठाता है कि समाज किस प्रकार स्त्री–छवि का उपयोग नैतिकता, चेतावनी और आत्मनियंत्रण के पाठ पढ़ाने के लिए करता है? इस रचना के अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि विविध प्रसंगों में स्त्री विवेक, नीति, साहस और नैतिक चेतना की वाहक बनकर उभरी है। इस सन्दर्भ में बलजीत कौर का कथन है कि "यह रचना स्त्री की चेतना का सम्मान करती है।"[13] इस प्रकार आधुनिक दृष्टि से देखें तो 'चरित्रोपाख्यान' उच्च नैतिक आदर्शों का दार्शनिक दस्तावेज़ है।

निष्कर्ष :– स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि 'पख्यान–चरित्र' केवल स्त्री–चित्रण का ग्रंथ न होकर मानव–स्वभाव, नीति–बोध और मनोवैज्ञानिक चेतना का दार्शनिक दस्तावेज है। गुरु गोबिंद सिंह इसमें संसार को एक नैतिक रंगभूमि के रूप में चित्रित करते हैं, जहाँ प्रत्येक चरित्र कथा, मनुष्य के भीतर उपस्थित किसी न किसी विकार, आकर्षण या सद्गुण का प्रतीक है। गुरु गोबिंद सिंह ने इसमें नारी को शक्ति, नीति, साहस, विवेक और मोह आदि रूपों में प्रस्तुत कर मानव–जीवन की नैतिक संरचना को समझाने का प्रयास किया है। कथा–पात्र वास्तविक स्त्रियों के प्रतिनिधि नहीं, बल्कि मानसिक प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। अतः 'पख्यान–चरित्र' नारी–विरोधी न होकर आत्मसंयम, धर्मनिष्ठा, शौर्य और विवेक को प्रबल करने वाली शिक्षाप्रद कृति है, जो नारी के उच्चादर्श रूपों को उद्घाटित करती है और मनुष्य को आत्मसंयम, साहस, विवेक, मर्यादा और नीति की प्रेरणा देती है।

संदर्भ सूची :–

1. 'गुरुमुखी लिपि में हिंदी काव्य', डॉ. हरिभजन सिंह, हिंदी अनुसन्धान परिषद्, दिल्ली, 1963, पृष्ठ– 413।
2. श्री दसम ग्रंथ साहिब'(प्रथम सैंची), डॉ० जोध सिंह, भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ, 1990, पृष्ठ– 27।
3. श्री दशम ग्रन्थ दर्शन', डॉ० गोविन्दनाथ राजगुरु, गोबिंद सदन गदाईपुर, महरौली, नई दिल्ली, 1999, पृष्ठ –75।
4. 'श्री दसम ग्रंथ साहिब'(तृतीय सैंची), डॉ० जोध सिंह, भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ, 1984, पृष्ठ– 182–183।
5. वही, पृष्ठ– 640।
6. 'दसम ग्रंथ में नारी का स्वरूप', बलजीत कौर, खालसा कॉलेज रिसर्च जर्नल, अमृतसर, 2010, पृष्ठ– 72।
7. 'श्री दसम ग्रंथ साहिब'(तृतीय सैंची), पृष्ठ– 633।
8. वही, पृष्ठ– 600।
9. 'दसम ग्रंथ दी विचारधारा', गुरबचन सिंह तलवंडी, खालसा कॉलेज पब्लिशिंग हाउस, अमृतसर, 1985, पृष्ठ–122।
10. 'श्री दसम ग्रंथ साहिब'(तृतीय सैंची), पृष्ठ– 226।
11. वही, पृष्ठ– 235।
12. वही, पृष्ठ– 530।
13. 'दसम ग्रंथ में नारी का स्वरूप', पृष्ठ– 80।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण से अष्टछाप काव्य का मूल्यांकन

सुशांत कुमार पाण्डेय *

डॉ. अशोक कुमार ज्योति**

शोध सार :– श्रीकृष्ण अष्टछाप के कवियों के परम आराध्य हैं। सांप्रदायिक मान्यताओं के अनुसार अष्टछाप के ये कवि अष्टसखा भी हैं। इस दृष्टि से ये भगवान् की लीलाओं की अनुभूति करते हुए आनंदित रहते हैं और अपनी रचनाओं के द्वारा इस आनंद की अभिव्यक्ति करते हैं। ध्यातव्य है कि भगवान् श्रीकृष्ण पर्यावरण के विविध अंगों के साथ रागात्मक संबंध स्थापित करते हैं। ब्रज में वनों एवं उपवनों की शोभा है। विविध प्रकार के मानवेतर प्राणी हैं। यमुना नदी के तट पर श्रीकृष्ण अनेक लीलाओं का संपादन करते हैं। ऐसे प्राकृतिक परिवेश में श्रीकृष्ण की लीलाओं से संबद्ध पद लिखनेवाले अष्टछाप के कवियों के काव्य का पर्यावरणीय दृष्टि से इस शोध आलेख में मूल्यांकन प्रस्तुत है।

मुख्य शब्द :– पुष्टि संप्रदाय, अष्टछाप, ब्रजमंडल, मेंवायर, हिंडोरा, यमुनाष्टक, पर्यावरण, प्राकृतिक संसाधन, सौंदर्य।

विक्रम की 16वीं शताब्दी के मध्य में वल्लभाचार्य द्वारा वैष्णव धर्म की जिस विशिष्ट शाखा की स्थापना की गई, वह पुष्टि संप्रदाय के नाम से विख्यात है। ध्यातव्य है कि "महाप्रभु वल्लभाचार्य के अनंतर उनके पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ ने अपने पिता द्वारा स्थापित संप्रदाय की सांगोपांग उन्नति की।"[1] महाप्रभु वल्लभाचार्य एवं उनके पुत्र विट्ठलनाथ के पास शिष्यों की मंडली थी। इन शिष्यों में से वल्लभाचार्य के प्रमुख 84 शिष्य एवं गोसाईं विट्ठलनाथ के 252 प्रमुख शिष्य थे। विदित हो कि ये सभी शिष्य श्रद्धालु भक्तजन थे, परंतु इन श्रद्धालुजनों में से कतिपय ऐसे थे, जो उच्च कोटि के कीर्तनकार, गायक एवं कवि थे। " विक्रम की 17वीं शताब्दी के आरंभ में गोसाईं विट्ठलनाथ ने चार अपने पिता के और चार अपने शिष्यों की एक मंडली बनाई। उस मंडली के आठों महानुभाव परम भक्त होने के अतिरिक्त अपने समय के सर्वश्रेष्ठ काव्यकार संगीतज्ञ और कीर्तनकार थे...पुष्टि संप्रदाय के अनेक शिष्यों में से उन आठों के निर्वाचन द्वारा गोसाईं विट्ठलनाथ ने उन पर अपने आशीर्वाद की छाप लगायी थी।"[2] इस मौखिक छाप के कारण ये कवि अष्टछाप के नाम से सुप्रसिद्ध हुए। इस प्रकार वल्लभाचार्य के चार शिष्य कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्णदास एवं विट्ठलनाथ के चार शिष्य गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास थे।

अष्टछाप कवियों के आराध्य श्रीकृष्ण :– अष्टछाप के कवियों की रचनाओं में निहित पर्यावरणीय दृष्टि वर्तमान समय के लिए प्रासंगिक है। अपने आराध्य की लीलाओं का गुणगान करके अपने जीवन को धन्य करनेवाले इन कवियों की रचनाओं में पर्यावरण के सुंदर रंग विद्यमान हैं। अष्टछाप काव्य के प्राणतत्त्व भगवान् श्रीकृष्ण प्रकृति के आँगन में जब आनंदित रहते हैं, फिर इन लीलाओं के स्मरण में रमनेवाले इन अनुपम भक्त कवियों की पर्यावरणीय दृष्टि में 'सत्यं, शिवं एवं सुन्दरम्' के भाव का परिलक्षित होना स्वाभाविक ही है। अष्टछाप कवियों के आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण सर्वव्यापी हैं। निर्गुण रूप में उनकी प्रत्येक प्राकृतिक अंगों में उपस्थिति है और अपने सगुण रूप में वे जब धरा पर अवतरित होते हैं, तब प्राकृतिक पर्यावरण में अपनी लीलाओं का संपादन करते हैं। इन लीलाओं की अनुभूति कर अष्टछाप के कवि भाव–विभोर होकर प्रभु का कीर्तन कर स्वयं को आनंदित करते हुए भगवान् जहाँ उपस्थित हैं, उस परिवेश का वर्णन करते हैं। उनके काव्य के अंतर्गत इस प्रकार का वर्णन विशेष महत्ता वाला है। वर्तमान समय में जिस प्रकार की पर्यावरणीय विद्रूपताएँ हो रही हैं और जिस प्रकार से प्राकृतिक संसाधनों का अतिशोषण किया जा रहा है, तब इस परिस्थिति में यह काव्य मनुष्य को इस बात का संदेश देता है कि पर्यावरणीय सौंदर्य के बिना सबकुछ अधूरा है। प्राकृतिक संसाधनों से संपन्न एवं हरियाली के आवरण से युक्त पर्यावरण आनंद एवं शांति प्रदान करता है।

*** शोधार्थी, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी**

**** सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी**

विविध वनों की उपस्थिति का सौंदर्य :– अष्टछाप के कवियों ने अपने काव्य में अनेक प्रकार के वनों एवं उपवनों का वर्णन किया है। इस प्रकार के वनों की उपस्थिति के कारण सर्वत्र ब्रजमंडल पर्यावरण की दृष्टि से वर्तमान समय के लिए अनुकरणीय बन जाता है। ब्रजमंडल उस स्थल का प्रतीक बनकर हमारे समक्ष उपस्थित होता है, जिसके दर्शन मात्र से प्राकृतिक सौंदर्य की दिव्यता की अनुभूति होती है एवं अवतारी श्रीकृष्ण उस मनुष्य के प्रतीक बन जाते हैं, जिसे प्राप्त कर प्रकृति भी प्रफुल्लित हो जाती है। ग्राउज के मथुरा मेंवायर में बारह प्रकार के वनों का उल्लेख है। "सूरसागर में इन वनों का उल्लेख मात्र है, जबकि सारावली में इनके नाम गिनाए गए हैं।"[3] सूरसारावली (पद संख्या 1088, 89) का एक संदर्भ का उल्लेख इस पुस्तक में मिलता है–

"यहि बिधि क्रीड़त गोकुल में हरि निज बृंदावन धाम।
मधुवन और कुमुदवन, सुंदर बहुलावन अभिराम।
नंदग्राम संकेत खिदरवन और कामवन धाम।
लोहवन माठ बेलवन सुंदर भद्र बृहद् वन ग्राम।"[4]

इन वनों में 'वृंदावन' का वर्णन आठों कवियों के यहाँ दिखाई पड़ता है। कुंभनदास के स्वामी यहाँ अपनी प्रियतमा के साथ (वृंदावन कुंजधाम, बिहरत पिया संग स्याम) विहार करते हैं।

वन–विहार–लीलाएँ :– यह वृंदावन ही इन कवियों के आराध्य श्रीकृष्ण की समस्त बाल और किशोर लीलाओं का केंद्रबिंदु है। महाकवि सूरदास, परमानंददास और नंददास ने अपने पदों में वृंदावन के साथ–साथ कुमुदवन, कोकिलावन, तालवन और मधुवन का निरूपण किया है। "कुमुदवन में श्रीकृष्ण के साथ सखाओं के बहुत दिन तक रहने की, कोकिलावन में राधा और उसकी सखियों के खेलने की, तालवन में जमुना–जल पीने की और मधुबन में कदंबवृक्ष की सघन डालों में झूला झूलने की बात कही गयी है।"[5] भगवान् की वन विहार की लीलाओं का अद्‌भुत सौंदर्य है। इस संबंध में अष्टछाप के कवियों ने अनेक पदों की रचना की है। "वन विहार लीला को लौकिक दृष्टि से समझने के लिए यह कह सकते हैं कि जमुना पुलिन पर वृंदावन की शीतल सघन और सुरम्य वनस्थली में प्रियाप्रियतम नित्य प्रति विभिन्न प्रकार की लीलाओं में संलग्न रहते हैं।"[6]

अष्टछाप काव्य में वृंदावन की महत्ता सर्वविदित है। इस काव्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इन कवियों ने इस स्थल को वैकुंठ से भी अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। वृंदावन कोई साधारण स्थल नहीं है, अपितु यह श्रीराधा–कृष्ण का नित्य–धाम है। यह वह स्थान है, जहाँ पर रास विहार आदि विविध प्रकार की नित्य लीलाएँ होती रहती हैं। यह इतना मनोरम स्थान है कि यहाँ वसंत ऋतु का सदा वास रहता है। यहाँ पर सर्वत्र आनंद है। यहाँ किसी प्रकार की निराशा नहीं है, उदासी तो यहाँ लेशमात्र भी नहीं है। स्पष्ट है कि जहाँ पर्यावरणीय सौंदर्य दिव्य होगा, वहाँ निवास करनेवाले समस्त जीवधारी आनंदमय रहेंगे और इसी परमानंद को अपने पदों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए सूरदास लिखते हैं–

"नित्य धाम वृंदावन स्याम नित्य रूप राधा ब्रजनाम।
नित्य रास जल नित्य विहार, नित्यमानखंडिताभिसार।।
नित्य कुंज सुख नित्य हिंडोर, नित्यहिं त्रिविध समीर झकोर।
सदा वसन्त रहत जहाँ बास, सदा हर्ष जहाँ नहीं उदास।।"[7]

वन–विहार–लीला के अंतर्गत साँझी–लीला का वर्णन अष्टछाप के कवियों द्वारा किया गया है, जो विशिष्ट है। विदित हो कि श्रावण एवं भाद्रपद माह में वृंदावन की प्राकृतिक शोभा के अपूर्व दर्शन होते हैं। श्रावण में हिंडोरा का प्रसंग तो आश्विन मास में साँझी–लीला संपन्न होने का प्रसंग मिलता हैं। महाकवि सूरदास द्वारा साझी–लीला के उत्सव का वर्णन किया गया है, जिसमें साँझी की पूजा हेतु सखियों के साथ श्रीराधिकाश्री जी वन में विहार करती हुई पुष्पों का चयन करती हैं। विशिष्ट यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण भी कदंब के नीचे खड़े हुए साँझी–पूजन को जाने के लिए उत्सुक दिखाई देते हैं–

"सखियन संग राधिका बीनत, सुमननि बन माँह।
साँझी पूजन को आतुरही, ठाड़े कदम्ब की छाँह।।
सखी भेष दै मोहन की, लै चली आपुने गेह।
पूछी कीरति, यह को सुंदरि, तब कह्यो मेरी सनेह।
साँझी खेलि बिदा करि सबकौ, दोउ पौढ़े सेज मंझार।
सगरी राति सूर के स्वामी, बसि सुख कियौ अपार।'"[8]

यमुना की महत्ता :— वनों की इस शोभा के साथ—साथ अष्टछाप काव्य में यमुना की अत्यंत महत्ता है। पुष्टि संप्रदाय के संस्थापक महाप्रभु वल्लभ द्वारा भावपूर्ण स्तुति के रूप में 'यमुनाष्टक' की रचना इस बात का प्रमाण है। छीतस्वामी अपने एक पद में यमुना नदी के मानवीकरण द्वारा इसके माहात्म्य पर प्रकाश डालते हैं एवं श्रीयमुना जी को श्रीहरि चरणों की अनन्य उपासिका के रूप में चित्रित करते हैं। वे लिखते हैं कि "श्रीयमुना जी के दोनों तट स्तंभ—स्वरूप हैं। श्रीयमुना जी में उठने वाली लहर तरंगें दोनों स्तंभों में लगी सीढ़ियाँ हैं। श्रीयमुना जी इस जगत् के उद्धार के लिए तथा बैकुंठ धाम पहुँचाने के लिये सुदृढ़ आधार युक्त नसैनी हैं। वे मानव—मात्र के प्रति सदैव दयालु हैं। श्रीकृष्ण के चरण कमलों में उनकी गहन प्रीति है। जन्म—जन्मांतर के पापों को नष्ट करने की क्षमता उनमें है। धर्म की पैनी धार युक्त छेनी से मानो वे सदैव पापों का शमन करती रहती हैं।"[9]

श्री छीतस्वामी के कथनानुसार श्रीयमुना जी के गुण अपार हैं एवं अनिवर्चनीय हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यदि भगवान् गिरधर का सानिध्य—प्राप्त करना है, तो यमुना वंदन आवश्यक एवं प्रभावी साधन है। प्रभु श्रीकृष्ण के प्रति गहरी प्रीति हो, इसके लिए श्रीयमुना की आराधना अपेक्षित है। तभी तो वे लिखते हैं—

"गुन अपार एक मुख कहाँ लों कहिये।
तजौ साधन, भजौ नाम यमुनाजी को,
लाल गिरधन कों, तबही पइये।।
परम पुनीत प्रीति रीति की जानहि
दृढ़ करि चरन कमल जो गहिये।।"[10]

परमानंददास की गोपियाँ जब विरह की दशा में होती हैं, तब उसका चित्रण करते हुए वे यमुना तटों के परिवर्तित रूप के विषय में बताते हैं। मनोहर लगनेवाली यमुना का रूप बदल गया है। अब मंद सुंगध बयार नहीं चल रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि गोपियों के विरह में समस्त जड़—चेतन सम्मिलित होकर विरहावस्था में है। यहाँ कवि का यह पद दृष्टव्य है—

"कौन रसिक है इन बातन कौ
कहाँ वे जमुना पुलिन मनोहर कहाँ वह चंद सरद रातिन कौ
कहाँ वे मंद सुगंध अमल रस कहाँ वे षटपद जलजातन कौ
कहाँ वे सेज पौढिवौ वन कौ फूल बिछौना मृदु पातन कौ
कहँ वे दरस परस परमानंद कोमल जन कोमल गातन कौ"[11]

कदंब का वृक्ष एवं गायों की उपस्थिति का सौंदर्य :— गोविंदस्वामी के आराध्य श्रीकृष्ण कदंब के वृक्ष से गायों को बुला रहे हैं। इस पर गायों की कैसी प्रतिक्रिया है, इसको समझने के लिए यह पद विशेष रूप से ध्यातव्य है—

"कदम चढ़ि कान्ह बुलावत गैंया।
मोहन मुरली कौ सबद सुनत ही, जहाँ तहाँ ते उठि धैया।
आवहु, आवहु सखा सिमिटि सब, पाई हैं इक ठैया।
'गोविंद प्रभु' बलदाऊ सों कहन लागे अब घर कौ बगदैया।"[12]

कृष्ण तो स्वयं अप्रतिम सौंदर्य के मूर्त रूप हैं, अब इनसे सुंदर भला और किसका रूप हो सकता है। सूर के कृष्ण तो 'उपमा हरि तनु देखि लजानी हैं'। भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर समस्त उपमाएँ लज्जित होने लगती हैं। सूरदास के ऐसे श्रीकृष्ण तो नटवर का वेश धारण करके ब्रज आते हैं। कान में मकर की आकृति का कुंडल शोभा पा रहा है तो मुख पर घुँघराले बालों की शोभा देखते बनती है, लेकिन सबसे मनमोहक है उनका मोर मुकुट—

"नटवर वेष धरे ब्रज आवत।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल,
कुटिल अलक मुख पर छवि पावत।"[13]

श्रीकृष्ण के अधरों पर मुरली रखी है, जिसका स्वर अत्यंत मधुर है। श्याम गौरी राग को अलाप कर बजा रहे हैं। साथ में गाय हैं एवं गोप हैं। इन सबके साथ गाते हुए श्रीकृष्ण सर्वत्र आनंद का संचार कर रहे हैं—

"अधर अनूप मुरलि सुर पूजत, गौरी राग अलापि बजावत।
सुरभी वृंद गोप बालक संग, गावत अति आनंद बढ़ावत।"[14]

ये दृश्य भारतीय संस्कृति के अनेक महत्त्वपूर्ण पक्षों का उद्घाटन भी करते हैं। गाय तो भारतीय परंपरा में पूजनीया है और साथ ही हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की केंद्रबिंदु भी है। कृषि करनेवाले किसान के लिए गाय एक अमूल्य निधि है। गाय के पालन एवं पोषण की इच्छा तो भारतीयों के मन में सदा से रहती आई है।

अष्टछाप काव्य में भगवान् श्रीकृष्ण का गायों के साथ रागात्मक संबंध है। गाय की उपस्थिति के कारण ब्रजमंडल की शोभा और दर्शनीय हो जाती है और इन गायों के साथ श्रीकृष्ण की उपस्थिति के कारण गोचारण के दृश्य अद्भुत बन जाते हैं–

"दुहि दुहि ल्यावत धौरी गैया।
कमल नैन को अतिभावत है मथि मथि प्यावत धैया।।
मोहन अधिक भूष जो लागी छाक बाँट लेहु भैया।
परमानंददास को दीजे पुनि पुनि लेत बलैया।।"[15]

निष्कर्ष :– अष्टछाप काव्य का उद्देश्य मूलतः श्रीकृष्ण की आराधना में तल्लीन रहना है। उन्हें जब कृष्ण एवं उनकी लीलाओं की अनुभूति हो रही है, तब इस परमानंद के अतिरिक्त इन कवियों के हृदय में कोई लालसा शेष नहीं है। अष्टछाप काव्य का मूल्यांकन करते समय इस बात का स्मरण रखना अपरिहार्य है। महत्त्वपूर्ण यह है कि इन कवियों के आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण सर्वव्यापी हैं। जब ये सगुण रूप में अवतरित होते हैं, तब इनकी लीलाओं से पर्यावरण के विविध अंग आनंदित हो जाते हैं। वे अपनी लीलाओं के माध्यम से पर्यावरण के सौंदर्य को बनाए रखने एवं उसे संरक्षित रखने का संदेश देते हैं। गोवर्धन–धारण–प्रसंग में वे प्राकृतिक निधियों को पूजने की बात कहते हैं। यमुना नदी हो, वन–विहार के दृश्य हों, इन समस्त लीलाओं में वे प्रकृति एवं पर्यावरण के साथ आत्मीय संबंध स्थापित करते हैं। स्पष्ट है कि अष्टछाप काव्य के आराध्य श्रीकृष्ण की लीलाएँ एवं उनका संवाद न सिर्फ मनुष्य–जगत् के लिए है, अपितु यह संवाद मानवेतर जगत् से भी हैं। सृष्टि के प्रत्येक जीवधारियों एवं पादप–जगत् से श्रीकृष्ण अपना संबंध जोड़ लेना चाहते हैं। आज इस भावनात्मक संबंध जोड़ने के सामान्य मानवीय गुण को भी मनुष्य विस्मृत करते जा रहा है। यदि इन संबंधों में विच्छेद न आता तो देखते–ही–देखते हरे भरे–वनों से, शुद्ध जल–प्रवाह से एवं शुद्ध हवा से मनुष्य को कभी इतना दूर नहीं जाना पड़ता।

ऐसे श्रीकृष्ण के परम आराधक कवियों के काव्य में पर्यावरण के प्रति रागात्मकता के दर्शन होना स्वाभाविक ही है।

संदर्भ–सूची :–

1. अष्टछाप परिचय, प्रभु दयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, द्वितीय संस्करण, 2006 विक्रमीय, पृष्ठ संख्या–1।
2. उपरिवत्।
3. अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन, मायारानी टंडन, हिंदी साहित्य भंडार, लखनऊ, प्रकाशन वर्ष 1960, पृ.–41।
4. उपरिवत्।
5. उपरिवत्, पृष्ठ संख्या–42।
6. पृष्ठ संख्या 151, अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय में रसिक साधना, शुभम् एसोसिएट्स, वृंदावन, प्रथम संस्करण, प्रकाशन 2000।
7. अष्टछाप और वल्लभ–सम्प्रदाय में रसिक साधना, प्रेम नारायण श्रीवास्तव प्रेमेन्द्र, शुभम एसोसिएट, वृंदावन, प्रथम संस्करण 2000, पृष्ठ– 155–156।
8. उपरिवत्।
9. छीतस्वामी, संपादक भगवती प्रसाद देवपुरा, श्री विट्ठल पारीक का लेख, साहित्य मंडल, श्रीनाथद्वारा, प्रकाशन 2000, पृष्ठ 82–83।
10. छीतस्वामी, संपादक भगवती प्रसाद देवपुरा, विट्ठल पारीक का लेख, साहित्य मंडल, श्रीनाथद्वारा प्रकाशन 2000, पृष्ठ 82–83।
11. महाकवि परमानंददास, संपादक भगवतीप्रसाद देवपुरा, भगवान् मकरंद का लेख, साहित्य मंडल, श्रीनाथद्वारा, प्रकाशन वर्ष 2004, पृष्ठ संख्या–195।
12. अष्टछाप के कवियों का सांस्कृतिक सौंदर्य बोध, अभय राजौरिया, विश्वविद्यालय प्रकाशन, सागर, प्रथम संस्करण 2007, पृष्ठ 194।
13. सूरसागर सार सटीक, धीरेंद वर्मा, साहित्य भवन, इलाहबाद, प्रकाशन वर्ष 1986, पृष्ठ संख्या 138, पद संख्या–149।
14. उपरिवत्।
15. महाकवि परमानन्ददास, संपादक भगवतीप्रसाद देवपुरा, रश्मि त्रिवेदी का लेख, साहित्य मंडल, श्रीनाथ द्वारा, प्रकाशन वर्ष 2004, पृष्ठ संख्या–206।

दलित कहानी की राजनीतिक दृष्टि

डॉ. नितीन गायकवाड*

भारत में हजारों सालों से राजनीतिक सत्ता एक विशिष्ट वर्ण, वर्ग और वंश के लोगों के हाथों और हितों में कठपुथली की तरह रही है, क्योंकि भारत में राजनीतिक सत्ता को ब्राह्मणवादी सिद्धांत ने नियंत्रण और संरक्षण दिया है। साथ ही सनातन हिंदू धर्म का प्रभाव राजनीति पर स्पष्टतः दिखाई देता है। हिंदू धर्म की राजनीतिक स्वतंत्रता के संदर्भ में बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर कहते हैं–''हिंदू समाज–व्यवस्था में लोगों द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों से बनी प्रतिनिधि सरकार की आवश्यकता को कोई मान्यता नहीं दी जाती।''[1] भारत में वर्ण–व्यवस्था की आचार–संहिता को मान्यता देने के कारण लोकतांत्रिक मूल्यों की राजनीति को अनावश्यक घोषित करने की हिंदुत्ववादियों द्वारा कोशिशें की जा रही हैं। भारतीय राजनीति भी जातिगत भेद–भाव की शिकार दिखाई क्यों देती है? क्योंकि भारतीय राजनीति में धर्म और जाति के श्रेष्ठत्व के आधार पर वर्चस्व दिखाई देता है।

दलितों को अपने हितों को साधने के लिए क्या करना होगा? दलितों को अपने हितों को साधने के लिए राजनीतिक सत्ता को प्राप्त करना होगा, क्योंकि बगैर सत्ता को हासिल किए अपने समाज के हितों में निर्णय लेना मुश्किल होता है। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के शब्दों में–''उन्हें शक्ति के लिए प्रयास करना ही होगा। उन्हें याद रखना ही होगा कि हिंदुओं और अस्पृश्यों के हितों के बीच वास्तव में टकराव है और भले ही बुद्धि टकराव का शमन कर सके, पर वह कभी भी ऐसे टकराव की आवश्यकता को अनावश्यक नहीं बना सकती। शक्ति ही एक हित को दूसरे हित से प्रबल बनाती है। ऐसी दशा में शक्ति को नष्ट करने के लिए शक्ति चाहिए। यह समस्या उत्पन्न हो सकती है कि किस प्रकार की शक्ति के उपयोग को नैतिकता के अनुकूल बनाया जाए, लेकिन यह निर्विवाद है कि यदि एक पक्ष के पास शक्ति न हो तो दूसरे पक्ष की शक्ति को नष्ट नहीं किया जा सकता। शक्ति या तो आर्थिक होती है या फिर राजनीतिक।...अतः इस बात की पूर्ण आवश्यकता है कि अस्पृश्य यथासंभव अधिक–से–अधिक राजनीतिक शक्ति प्राप्त करे। सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से उनकी शक्ति की निरंतर ह्रासमान अपर्याप्तता को देखते हुए वे कदापि अत्यधिक राजनीतिक शक्ति प्राप्त नहीं कर सकते। जो भी राजनीतिक शक्ति वे प्राप्त करेंगे, वह हिंदुओं की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति के विशाल भंडार को देखते हुए सदा ही अल्प होगी। अस्पृश्य को सदैव स्मरण रखना होगा कि उसकी राजनीतिक शक्ति, भले ही कितनी विशाल हो, किसी काम की नहीं होगी, यदि विधान मंडल में प्रतिनिधित्व के लिए वह हिंदुओं का मुँह ताकेगी। हिंदुओं के राजनीतिक जीवन के आधार तो ऐसे आर्थिक तथा सामाजिक हित हैं जो अस्पृश्यों के हितों के सर्वथा प्रतिकूल हैं।''[2] अर्थात मानवीय अधिकारों से उपेक्षितों के मुक्ति का मार्ग राजनीतिक सत्ता के रास्ते से गुजरता है। इसलिए उन्हें किसी भी प्रतिकूल स्थितियों में, लेकिन अपनी विचारधारा से बगैर समझौता किए राजनीतिक सत्ता को हासिल करना ही होगा।

किसी भी देश में राजनीतिक सत्ता का उपयोग शोषित और उपेक्षित लोगों के हितों में ही होना चाहिए। लेकिन भारत में राजनीतिक सत्ता का दुरूपयोग करने में हिंदुत्ववादी संगठनों की बढ़–चढ़कर कोशिशें दिखाई देती हैं। राजेन्द्र यादव के शब्दों में–''भारतीय राजनीति में आज सबसे यथास्थितिवादी संगठन भारतीय जनता पार्टी या हिंदुत्व की सांप्रदायिक शक्तियाँ हैं। संस्कृति से लेकर वर्ण–व्यवस्था तक उन्हें वही चाहिए जो सदियों से होता रहा है या जो रामराज्य का मूलमंत्र है, सैद्धांतिक रूप से 'परिवर्तन ही जीवन है' का नारा देते रहने के बावजूद भारतीय चिंतन और सोच उनके हिसाब से अपरिवर्तनीय अजर–अमर है। उनकी सारी लड़ाइयाँ उन्हीं शक्तियों से हैं जो परंपरागत सोच और व्यवस्था को स्वीकार नहीं करतीं। उनका 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' सारे बौद्धिक भावोच्छ्वास के बावजूद सामंती व्यवस्था की

***असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे–411007 (महाराष्ट्र)**

पुनःस्थापना का दर्शन है। सबसे बड़ा अंतर्विरोध यह है कि प्रजातांत्रिक हथियारों से सामंती व्यवस्था की रक्षा संभव नहीं हो पा रही है। एक ही सांस में उन्हें गैर–बराबरी, असमानता, शोषण, विभेदवादी दमन–निर्भर सांस्कृतिक केंद्रीयता भी चाहिए और बहुलतावादी प्रजातंत्र भी।''[3] राजेन्द्र यादव इस बात का संकेत देते हैं कि समाज में फैली गैर–बराबरी और सामंती व्यवस्था को ध्वस्त करने के लिए शोषितों और उपेक्षितों को संगठित होकर संघर्ष करने की आवश्यकता है। लेकिन शोषितों और उपेक्षितों का यह संगठित संघर्ष लोकतांत्रिक मूल्यों के आधार पर होना चाहिए। जो व्यवस्था मनुष्य को आपस में जातिगत भेदभाव के आधार पर बाँटती तथा लड़ाती है और उसे गैर–बराबरी की खाई में धकेलती है ऐसी मनुष्य द्रोही व विरोधी व्यवस्था को जड़ से खत्म करने के लिए राजनीतिक सत्ता को हासिल करना आवश्यक है।

भारत में हिंदुत्व की राजनीति करने वाले वर्ग के विचार, व्यवहार और उद्देश्य क्या हैं? राजेन्द्र यादव के शब्दों में–''अंग्रेजों के जमाने से ही ये लोग सत्ता के पुजारी रहे हैं– धर्म की सत्ता, धन की सत्ता, धौंस की सत्ता–इन्हें उँगलियों पर नचाते हैं, सूत्राधार हैं संत–महंत, पूँजीपति, व्यापारी और राजा–जमींदार–अफसर। इसलिए शोषण, अत्याचार राष्ट्रहित या सामान्य–जन के लिए आवाज उठाकर क्या अपने आकाओं को नाराज करना है? मनो घी और टनों दूध फूकने वाले यज्ञों–हवनों–भंडारों के लिए पैसा कहाँ से आएगा? इस दिशा में 'हिंदुत्व' का झंडा बुलंद करने वाली इन पार्टियों और मुस्लिम लीग या 'इस्लाम खतरे में हैं' वाली पार्टियों के बीच अद्भुत समानता है–दोनों को गरीबी, भुखमरी, बेकारी, अशिक्षा, जहालत, भ्रष्टाचार जैसी दुनियावी बाधाएँ कभी नहीं सतातीं–भगवान, धर्म और संस्कृति साध लीजिए। बाकी सब तो अपने–आप सध ही जाएगा। इसलिए स्वाभाविक ही है कि रचना–कर्म से जुड़े सारे वर्ग, विशेष रूप से दलित, किसान–मजदूर, नारियाँ, लेखक और बुद्धिजीवी खुलकर पूछने लगे हैं कि आपके रामराज्य या निज़ामे–मुस्तफा में हमारी हैसियत क्या होने जा रही है? हमें शंबूक, अहिल्या, सीता, रूपकुंवर और सलमान रुश्दी बनकर ही अपने सिर कटाते रहना है; बनवास–अग्नि परीक्षा–आत्महत्याएँ ही भोगनी हैं और खदेड़े गए अज्ञातवास ही जीने हैं या कोई और भी भविष्य हमारे लिए है? जहाँ अतीत को ही भविष्य बना डालने की प्रतिबद्धता हो, वहाँ हमारा ही क्या, किसी का भी भविष्य क्या है?''[4] हिंदुत्व की सोच और राजनीति पर ऐतिहासिक संदर्भों के हवालों से राजेन्द्र यादव की टिप्पणी तर्कसंगत दिखती है क्योंकि राजनीति को धर्म से जोड़ने से समाज का अहित निश्चित है और यह काम हिंदुत्व ने शुरू से ही किया है। इसलिए भारत में राजनीति पर धर्म का प्रभाव अवश्य दिखाई देता है, क्योंकि हिंदू धर्म और धर्म ग्रंथों ने समाज के विशिष्ट वर्ग के लोगों को ही सत्ता में स्थापित होने का समर्थन और संरक्षण दिया हुआ है।

जब साहित्य समाज को दिशा देने की बात करता है तब साहित्य और राजनीति का संबंध होना आवश्यक समझा जाता है। कँवल भारती के शब्दों में–''साहित्य और राजनीति का संबंध काफी पुराना है। ब्राह्मणों का साहित्य उनकी राजनीतिक शक्ति के कारण ही फला–फूला है। अतः यह कहना गलत नहीं हैं कि राजनीति साहित्य को ऊर्जा देती है। संबल भी देती है। दलित साहित्यकारों के उत्थान ने दलितों के साथ–साथ दलित साहित्यकारों का मनोबल भी बढ़ाया है। सामाजिक न्याय का नारा राजनीति में साहित्य से ही आया है। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने 'सामाजिक परिवर्तन' की बात कही थी, जिसे कांशीराम की राजनीति ने ग्रहण किया है। इन सब ने दलित साहित्य को सकारात्मक प्रोत्साहन ही नहीं दिया, बल्कि उसके विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया है। लेकिन इसके विपरीत, इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि दलित राजनीति को भी दलित चिंतन और साहित्य से सकारात्मक प्रोत्साहन मिला है। राजनीति ने साहित्य को और साहित्य ने राजनीति को न केवल प्रभावित किया, बल्कि दिशा भी दी है।''[5] कँवल भारती के अनुसार राजनीति और साहित्य का संबंध एक–दूसरे के लिए मार्गदर्शक की तरह रहा है। समाज को सही दिशा में विकसित करने के लिए साहित्य और राजनीति इन दोनों का महत्त्व एक समान दिखाई देता है।

दलित राजनीति और दलित साहित्य का संबंध क्या है? दलित राजनीति ने दलित समाज के विकास में कौन–सा योगदान दिया है? दलित राजनीति के संदर्भ में ये दोनों सवाल महत्त्वपूर्ण है। इन दोनों सवालों का विश्लेषण डॉ. महीप सिंह के शब्दों में–''दलित राजनीति ने सामाजिक न्याय की बात अवश्य

उठाई है। इस अवधारणा से दलित साहित्य को सकारात्मक प्रोत्साहन भी मिल सकता है। किंतु मुझे खेद है कि दलित राजनीति ने भी, इस देश की राजनीति विकृति से ग्रस्त होकर, घटिया अवसरवादिता का ही परिचय दिया है। महाराष्ट्र में 'रिपब्लिकन पार्टी' के अनेक गुट वर्षों से ऐसी अवसरवादिता के शिकार हैं। कांशीराम और मायावती की 'बहुजन समाज पार्टी' ने उत्तर प्रदेश में यही काम किया। ऐसी राजनीति दलित साहित्य को कोई सकारात्मक प्रोत्साहन दे सकती है, यह मुझे नहीं लगता। वह इसकी धार को कुंठित अवश्य कर सकती है।''[6] महीम सिंह के द्वारा दलित राजनीति को दिशाहीन कहना तर्कसंगत लगता है। फिर वह मराठी क्षेत्र की दलित राजनीति हो या हिंदी क्षेत्र की दलित राजनीति। इन दोनों क्षेत्रों की दलित राजनीति में अलोकतांत्रिक समझौतों और स्वार्थ व अवसरवादी भावना में लिप्त होने के संकेत दिखाई देते है। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर की यह बात सच है कि सत्ता के बल पर सामज में सहजता से बदलाव लाया जा सकता है। 16/05/1938 में महाराष्ट्र के चिपलूण शहर में हुई दलितों की सभा को संबोधित करते हुए बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने कहा था—''मुझे आप में से प्राइम मिनिस्टर बना हुआ देखना है। मुझे इन मुट्ठी भर भटजीओं का राज्य नहीं चाहिए, आपके अस्सी प्रतिशत लोगों का राज्य चाहिए।''[7] बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के इस कथन की ओर दलित राजनीति ने अनदेखा किया है। जबसे बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने दलित समाज में राजनीतिक जागरूकता फैलाने की मुहिम शुरू की थी तब से दलितों के लिए राजनीति सिर्फ वोट डालने तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि अपना सक्षम नेतृत्व अपने ही समाज से निर्माण करने की क्षमता और सक्षमता को विकसित करने की उनमें सोच—समझ विकसित हुई है। दलित समाज में अपने समाज से उच्च शिक्षित पीढ़ी सांसद, विधायक और मंत्री तक के पदों पर विराजमान कराने की इच्छा जागृत हुई है।

देश की राजनीति में—''नब्बे के दशक के आरंभ में जिस दलित राजनीति ने सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय के नारों के साथ भारतीय राजनीति में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया था, वह जिस तेजी से ऊपर उठी थी, आज दशक के खत्म होते ही उतनी ही तेजी से नीचे गिरकर स्वयं भी खत्म हो गई है। दलित राजनीति के पैरोकार, चाहे वे महाराष्ट्र के आर.पी.आई. के नेता हों, चाहे उत्तर प्रदेश के संघप्रिय गौतम, बुद्धप्रिय मौर्य और रामधन हों और चाहे जनता दल के शरद यादव और रामविलास पासवान हो—सब भाजपा या कांग्रेस के समर्थक हो गए हैं। जिस सत्ता के बल पर दलितों के दोनों शत्रु—पूँजीवाद और ब्राह्मणवाद मजबूत हो रहे हैं और जो सांस्कृतिक राष्ट्रवाद संविधान की व्यवस्थाओं को ध्वस्त कर रहा है, उसे संजीवनी देकर स्थापित करने का काम सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय की राजनीतिक ताकतों ने ही किया है। राजनीति के इन दोनों ध्रुवों से पृथक अस्तित्व रखने वाली बसपा ने भी बीमा विधेयक को पारित कराने में काँग्रेस के साथ सरकार का समर्थन करके सार्वजनिक क्षेत्र का अंधा निजीकरण किए जाने के लिए भाजपा की ही दलित विरोधी नीति का स्वागत किया है। अतः इस सदी के अंत में ही दलित राजनीति का अवसान नई सदी में दलित मुक्ति के प्रश्न को और भी जटिल बना सकता है।''[8] भारतीय राजनीति में गैर—दलितों का वर्चस्व होने के कारण दलित मुक्ति के सवाल उपेक्षित रहे हैं। लेकिन राजनीति में दलित राजनीति ने हस्तक्षेप किया है, इसके बावजूद दलितों के सवालों को लेकर गंभीरता से सोचने और समझने का खतरा क्यों नहीं उठाया गया है?

दलित राजनीति का उद्देश्य क्या होना चाहिए? दलित राजनीति का उद्देश्य जयप्रकाश कर्दम के शब्दों में—''दलित राजनीति के दो अर्थ निकलते हैं—दलितों द्वारा की जा रही राजनीति और दलितों को लेकर की जा रही राजनीति। दोनों में अंतर है। दलितों को लेकर राजनीति सभी राजनीतिक दल कर रहे हैं। राजनीति का अपना एक चरित्र है, जिसका सर्वोच्च उद्देश्य सत्ता प्राप्त करना है। सत्ता प्राप्त करने और सत्ता में बने रहने के लिए समझौते किए जाते हैं। दलित—राजनीति का चरित्र भी इससे बहुत अलग नहीं है। इस बिंदु पर आकर दलितों द्वारा की जा रही राजनीति और दलितों को लेकर की जा रही राजनीति में कोई अंतर नहीं रह जाता। बाबा साहेब ने भी कभी कहा था कि राजनीति (अर्थात राजनीतिक सत्ता) हर ताले की चाबी है। क्योंकि सत्ता ही नीति बनाती है, वही उन नीतियों को क्रियान्वित करवाती है। यदि राजनीतिक सत्ता दलितों के हाथ में आ जाए तो उस से दलितों के उत्थान और विकास के रास्ते खुल

सकते हैं। ऐसा तब संभव है जब सत्तासीन दलित प्रतिबद्धता के साथ निर्भय होकर दलित हितों के लिए कार्य करें। यदि सत्ता के चले जाने के डर से दलित राजनीति दलित विरोधी शक्तियों से समझौता करेगी तो दलितों का उत्थान नहीं कर पाएगी।''[9] सत्ता प्राप्ति के लिए अलोकतांत्रिक संगठनों के साथ अपने व्यक्तिगत स्वर्थ को साधने के लिए समझौता करना दलित राजनीति का चरित्र रहा है। वर्तमान दौर में बदलते मनुष्य और समाज के चरित्र के अनुसार राजनीतिक समीकरणों में भी अनेक तरह के बदलाव आने के संकेत दिखाई दे रहे हैं। भारत में अधिकांश राज्यों में दलित और पिछड़ों की राजनीतिक सत्ता होने के बावजूद भी दिन–प्रतिदिन ब्राह्मणवाद, सामंतवाद और पूँजीवाद ही क्यों मजबूत होते जा रहे हैं? यह सवाल बेहद गंभीर है।

शरणकुमार लिंबाले दलित राजनीति को 'पोलिटिकल बार्गेनिंग पॉवर कहते है। राजनीति और दलित साहित्य के संबंध क्या हैं? शरणकुमार लिंबाले के शब्दों में–''दलित राजनीति का असर दलित साहित्य पर हमेशा हुआ है। दलित राजनीति के संदर्भ में दलित लेखकों ने विपुल लेखन किया है। कुछ दलितों का बीजेपी और शिवसेना के साथ जाने से दलित आंदोलन पर बुरा असर नहीं हुआ। कांग्रेस ने हिंदुत्ववादी संगठनों का डर दिखाकर दलितों का इस्तेमाल किया। दलितों को गुमराह किया। दलित जनता कांग्रेस के पीछे–पीछे भागती थी। दलितों को जब इस गलती का अहसास होने लगा तब उन्होंने कांग्रेस को नकारना शुरू किया। दलितों का बीजेपी के साथ जाना 'निगेटिव वोटिंग' जैसा है। दलित वोट जब बीजेपी को मिलने लगे तब काँग्रेस की आँखें खुलने लगीं। उसने दलितों और अल्पसंख्यकों के संदर्भ में अपना रवैया बदला। बी.एसी.पी के जलवे की वजह से काँग्रेस को सुशील कुमार शिंदे को अपना मुख्यमंत्री बनाना पड़ा। इतना ही नहीं, बाबा साहब की बात करनी पड़ी।

दलित वोट और दलित आंदोलन को समझना पड़ा। लिबरल होने की कोशिश करनी पड़ी। इसका अर्थ यह नहीं कि सांप्रदायिक ताकतें बदल गईं। कभी तो किसी मोड़ पर दलितों और सांप्रदायिक ताकतों को यह महसूस करने की जरूरत थी। इस से दलित साहित्य पर अच्छा असर हुआ है। दलित लेखकों ने फासीवाद के मुद्दे पर अपना रुख स्पष्ट किया है।''[10] शरणकुमार लिंबाले जैसे दलित आंदोलन के कार्यकर्ता और वरिष्ठ लेखक का दलित राजनीति को लेकर इस तरह की टिप्पणी करना अश्चर्यजनक है। क्योंकि राजनीति और विचारधारा को अलग–अलग दृष्टि से देखना घातक है। खासकर दलित समाज के राजनीतिक संगठन के लिए। शरणकुमार लिंबाले की दलित राजनीति के अवसरवाद, व्यक्तिगत स्वार्थ और समझौता परस्त नीति पर की गई टिप्पणी राजनीतिक प्रभाव से प्रेरित दिखाई देती है जो बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर की विचारधारा से विरोधाभास है।

साहित्य और राजनीति का संबंध किस आधार पर जुड़ता है? साहित्य के विकास में राजनीति की भूमिका किस प्रकार की होती है? इन दोनों सवालों का विश्लेषण डॉ. तुलसी राम के शब्दों में–''राजनीति में जिस वर्ग या समूह का जितना वर्चस्व होता है, ठीक उसी के अनुपात में उसका साहित्य भी पनपता है। यह तथ्य संपूर्ण विश्व के इतिहास से प्रकट हो चुका है। भारत के संदर्भ में वर्ग की अवधारणा का प्रतिनिधित्व यहाँ की वर्ण–व्यवस्था करती चली आ रही है। वर्ण–व्यवस्था सिर्फ सामाजिक व्यवस्था नहीं थी, बल्कि धर्म पर आधारित एक क्रूर राजनीतिक प्रयास था, जिसके मूल में भगवान का भय बड़ी कृत्रिमता से किंतु निहायत संगठित रूप से खड़ा किया गया था। अतः भारतीय समाज का पूरा इतिहास तथा साहित्य इसी वर्ण–व्यवस्था के इर्द–गिर्द शुरू से ही चक्कर काटता चला आ रहा है।''[11] भारतीय समाज में ब्राह्मणवादी साहित्य का विकास होने में वर्ण–व्यवस्था की राजनीतिक सोच–विचार की विशेष भूमिका रही है। वर्ण–व्यवस्था में ब्राह्मणवादी साहित्य को संरक्षण और समर्थन सामंतवादी राजनीति ने दिया है। हिंदी के दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के द्वारा दलित और गैर–दलित राजनीति के चरित्र और प्रसंगों के सच का तर्काश्रित दृष्टि से विश्लेषण करने की कोशिशें की हैं।

मोहनदास नैमिशराय की 'अधिकार चेतना' कहानी में दलितों के राजनीतिक सत्ता ने उनके अधिकारों के प्रति जागृत करने की कोशिश चित्रण किया है। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के प्रति दलितों की अथाह आस्था है। दलितों की यह आस्था उनकी अस्मिता से जुड़ी हुई है। मेरठ में बाबा साहेब डॉ.

आंबेडकर की प्रतिमा लगाने की घटना को लेकर दलितों और गैर–दलितों के बीच दंगों और खूनी हमलों का सिलसिला निरंतर जारी रहता है। मेरठ की दलित बस्तियाँ दहक रही हैं। सवर्णों का दलितों के प्रति नफरत और घृणा का सैलाब उमड़ आया था। ट्रक ड्राइवर हवलदार से कहता है–''स्साले, हमारा पेशाब ही तो हैं। अरे भई हवालदार जी कल तक तो ये ससुरे जूते साफ करते घूमते थे।...अजी हवलदार जी, समै चाहे कितना भी बदल जाए पर यै ससुरे रहवेंगे तो वई ढेढ़ चमार।''[12] गैर–दलितों के इस रवैये ने दलितों के भीतर विद्रोही की चिंगारी को जन्म दिया है। दोनों ओर के लोग मरने और मारने को उतावले थे। शहर में कर्फ्यू लगा था। अधिकार चेतना के इस आंदोलन में दलितों के सीने पुलिस ने गोलियों से छलनी कर दिए थे। लेकिन सवाल यह है कि दलितों के भीतर यह अधिकार चेतना आई कहाँ से?

दलितों के राजनीतिक आंदोलन का चित्रण इस प्रकार किया है–''शहर की सभी दलित बस्तियों में आंदोलन की रूप–रेखाएँ बन रही थीं। दलित आंदोलन के तेवर को राजनीतिक हस्तियाँ और भी पैनी बना रही थीं। लखनऊ की गद्दी पर बैठने की मायावती तैयारी कर रही थीं तो दिल्ली के तख्त पर रामविलास पासवान। रामविलास पासवान ने कई बार मेरठ में घुसने का प्रयास किया था, पर पुलिस ने उतनी ही बार रोका था। दलित सेना की दस्तक शहर के भीतर तथा बाहर हो चुकी थी। शहर ही नहीं गाँव के लोगों में भी अधिकार चेतना जाग रही थी।''[13] जब दलित समाज के साथ गैर–दलितों ने अन्याय करना शुरू किया तब दलित राजनीति के हस्तक्षेप ने इस अन्याय का विरोध किया। यह कहानी दलित समाज में जागृत हुई अपने अधिकारों की चेतना को राजनीतिक संदर्भों के साथ जोड़ती है।

जयप्रकाश कर्दम ने 'नो बार' कहानी में दलित और गैर–दलित समाज के बीच राजनीति के बारे में हो रही चर्चा का प्रसंग चित्रित किया है। दलित राजनीति के बारे में अशिक्षित गैर–दलित लोगों की बातों को अनदेखा किया जा सकता है। लेकिन शिक्षित लोगों की बातों को अनदेखा करना समाज के हित की दृष्टि से कदापि अच्छा नहीं है, क्योंकि समाज का सही दिशा में मार्गदर्शन करना शिक्षित लोगों की ही जिम्मेदारी है। लेकिन दलित और गैर–दलित के बीच राजनीति को लेकर क्या सोच पनप रही है इसका एक उदाहरण कहानी में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है– 'क्या पोजीशन है इलेक्शन की?'

'कुछ क्लीयर नहीं है। लगता है इस बार भी हंग पार्लियामेंट रहेगी।'

'और फिर साल भर के भीतर देश को दोबारा चुनाव की त्रासदी झेलनी पड़ेगी।'

'लगता तो यही है। क्लीयर मेजॉरिटी गेन करने की किसी भी पार्टी की कोई पॉसिबलेटी नजर नहीं आ रही है। बी.जे.पी. को सबसे ज्यादा सीटें मिल जाएँगी लेकिन दो सौ से ऊपर वह भी शायद ही जा पाए, इसलिए अधिक चांसेज यह है कि कोलिशन गवर्नमेंट बनेगी।' 'वो तो है, पर गवर्नमेंट बनेगी किसकी और चलेगी कितने दिन? मैं नहीं समझता एट प्रजेंट बी.जे.पी. के अलावा और कोई पार्टी स्थायी सरकार दे सकती है।' लेकिन सरकार का स्थायी होना ही जरूरी नहीं है। समाज और राष्ट्र के प्रति उसका दृष्टिकोण भी स्वस्थ, सकारात्मक और प्रगतिशील होना चाहिए। बी.जे.पी. के बारे में यह धारणा है कि उसकी सोच सांप्रदायिक और विघटनकारी है। मुस्लिम और दलित बी.जे.पी. को लेकर सशंकित हैं। उनको लगता है कि बी.जे.पी. की सरकार का रुख उनके प्रति सकारात्मक नहीं रहेगा। मुस्लिम तो खैर बी.जे.पी. को वोट देंगे ही नहीं। जहाँ तक दलितों का सवाल है वे स्वयं पिछड़ों के साथ मिलकर सत्ता में आने के लिए जोड़–तोड़ कर रहे हैं। बिहार में लालू और यू.पी. में मुलायम और मायावती बी.जे.पी. के रास्ते में सबसे बड़े हर्डल हैं।' 'बी.जे.पी. ही क्या ये सारे समाज के रास्ते में हर्डल हैं। ये सब जातिवाद फैलाकर समाज को तोड़ रहे हैं। जाति की राजनीति कर रहे हैं।'...

'सब कुछ अच्छा–खासा चल रहा था। समाज प्रोग्रेसिव हो रहा था। जातिवाद अपनी मौत मर रहा था। लेकिन वी.पी. सिंह के बच्चे ने मसीहा बनने के चक्कर में मंडल कमीशन लागू कर जातिवाद को फिर से जिंदा कर दिया। कोई देश की बात नहीं करता, सब अगड़े–पिछड़ों की बात करते हैं। लालू और मुलायम की तो फिर भी गनीमत है। कांशीराम और मायावती को देखो। ये तो बिना जाति के बात ही नहीं करते। वी.पी. सिंह ने आग लगाई, ये आग में घी डालकर उसे भड़का रहे हैं।' 'नहीं, ऐसा तो नहीं है कि कांशीराम और मायावती जातिवाद को भड़का रहे हैं। जातिवाद तो समाज में पहले से रहा है। हर चुनाव में

उम्मीदवारों के चयन से लेकर मंत्रिमंडल के गठन तक सब जगह जाति का फेक्टर काम करता रहा है। हाँ, कांशीराम, मायावती या दूसरे नेताओं के आने से इतना अंतर अवश्य आया है कि पहले दलितों की अपनी पार्टी नहीं होती थी और उनका वोट कांग्रेस या दूसरी पार्टियों को जाता था। लेकिन आज उनकी अपनी पार्टी है और वे अपनी पार्टी को वोट दे रहे हैं।''[14] राजनीति के बारे में एक दलित और दूसरे गैर–दलित इन दोनों के बीच चल रहे विचार–विमर्श से यह बात साफ हो जाती है कि सवर्णों की वर्चस्ववादी मानसिकता में केवल सुधार की उम्मीद की अपेक्षा सख्त बदलाव की आवश्यकता है।

विपिन बिहारी की 'पुनर्वास' कहानी में दलित उत्पीड़न की और तथाकथित सवर्णों के दोहरे चरित्र की राजनीति को बेनकाब किया गया है। दलित को उसकी जाति खरोंचती है और आर्थिक अभाव उसकी खिल्ली उड़ाती है। कहानी का पात्र 'वैरागी' जाति और गरीबी की इस विवशता को जिंदगी–भर ढोने के लिए अभिशप्त है। लेकिन वह इस अभिशप्त रहने के कारणों को समझ गया है। अपने मालिक के प्रति बेहद ईमानदार है। लेकिन यह ईमानदारी उसकी मजबूरी है। क्योंकि दो वक्त की रोटी के लिए मालिक के यहाँ मजदूरी पर जाना पड़ता है। इसलिए मालिक के सारे अन्याय आँख मूँदकर सहता है।

नरोतम बाबू, मुखदेव और देवशरण बाबू इन तीनों ने मिलकर दलित बस्ती में घुसकर दलितों के साथ गाली–गलौज क्यों की? भाला, गंडासा, गोली–बंदूक जैसे हथियारों से डरा–धमकाकर उनके घास–फूस की झोंपड़े आग के हवाले क्यों किये थे? क्योंकि सरकारी पुनर्वास योजना की आड़ में पक्के घर की राजनीति का दाँव आसानी से खेला जा सके। इस राजनीतिक षड्यंत्र की पोल खोलते हुए वैरागी कहता है–''कॉलोनी बनेगी तो सभी झोंपड़े पक्के हो जाएँगे तो जो रेखा खींची हुई है अगड़ों–पिछड़ों–दलितों के बीच पत्थर की लकीर हो जाएगी वह। क्यों नहीं सोचती सरकार कि सभी एक साथ रहें। वाह, यही है सरकार की गरीबों से निकटतम स्थिति। ये तो स्थायी तौर पर बना रहेगा। क्या इंतजाम किया जा रहा है विभेद का?''[15]

दलित वैरागी सोचता है–''दलितों की हिफाजत का जिम्मा सरकारी हो गया। लेकिन फिर भी दलितों की हिफाजत नहीं हुई। अलबत्ता दलित नपुंसक हो गए सरकार की इस नीति से। दलितों के बीच। लाख–दो लाख सहायता के नाम पर लुटा देगी सरकार लेकिन लाख–दो लाख का रोजगार नहीं खड़ा करवा सकती। सारे दर्द, उत्पीड़न भूल जाओ रुपयों के आगे। वाह, पहले मारो, फिर मुआवजा देकर झाड़ लो अपना पल्ला। मुआवजा के रुपये मारे गये और चोट खाये लोगों के लिये संजीवनी बन जायेंगे। हाड़–मांस की कीमत पैसे से लगाई जाती है। कभी किसी ने ये सोचा, जिसका घरवाला मारा गया, उसके बाद जो स्थिति मृतक के परिवार के साथ जुड़ती है, उसे क्या होगा? रुपयों से कोई मरा हुआ जिंदा हो जायेगा? है जवाब किसी के पास? सब एक ही थैले के चट्टे–बट्टे हैं। कोई नहीं चाहता गरीबी खत्म हो। हालाँकि गरीबों के उत्थान के लिये करोड़ों–अरबों रखे जाते हैं, क्या ये पैसे गरीबों तक आते हैं, क्या उनकी समस्या खत्म कर दी जाती है उन पैसों से। कहीं ऐसा तो नहीं कि गरीबी उन्मूलन के नाम पर पैसे गरीबी बनाये रखने के लिए खर्च किये जाते हैं। गरीब खत्म हो जायेंगे तो फिर राजनीतिक रोटियाँ कैसे पकायी जायेंगी। तो एक सफल राजनीति के लिये जरूरी है गरीब का होना। कई मसीहा हो जायें गरीबों के, लेकिन नीयत मसीहाई नहीं है। दरअसल वे मसीहा नहीं, षड्यंत्रकर्ता हैं जो गरीबों की गरीबी बनाये रखने के लिये पांसे फेंकते रहते हैं।''[16] अपराधियों और संसद–विधान सभाओं में बैठे नेताओ के सरकार की साँठ–गाँठ से चल रही राजनीति ने दलितों और गरीबों की जिंदगी को मुसीबत में कैसे डाला है इसका खुलासा प्रस्तुत कहानी के प्रसंगों में चित्रित किया है।

राम निहोर विमल ने 'नये रिश्ते' कहानी में गैर–दलित और दलित राजनीति के दांव–पेंच को चित्रित किया है। दलित रग्घू अपने घर–परिवार, जाति–बिरादरी और समाज को सवर्णों–सामंतों के वर्चस्व से मुक्त करने की दिशा में सोचता हैं। राष्ट्रीय विकास पार्टी में एक दलित नेता दलित साहित्यकार भी है और पार्टी का वफादार सेवक भी है। उसका पार्टी की तरफ से काफी मान–सम्मान होता है और एक दिन वह राज्यपाल बन जाता है। लेकिन यह सब उस पार्टी की ओर से होता है, जो दलितों का सदियों से शोषण करने वाले सवर्णों की सब से पुरानी व बड़ी पार्टी है। लेकिन राज्यपाल साहित्यकार महोदय अपना

जीवन इस पार्टी की सेवा में समर्पित कर देते हैं। इस पर रग्घू कहता है–"वाह नेता जी, धन्य हो। जब तक हम लोग बे–जुबान, गूंगे–बहरे, हरिजन बनकर आपको वोट देते रहे, तब तक ठीक थे। गूंगे–बहरे बनकर, सवर्णों–सामंतों के जुल्म सहते रहे, तो भले थे। अन्याय–अत्याचार, छुआछूत ऊँच–नीच, के भेद–भाव सहते हुए, आजाद भारत में भी, गुलाम बने रहे, तब तक अच्छे थे।...और अब, जब दलित बनकर अपनी आजादी की बात कर रहे हैं, अपनी गुलामी को तोड़ने की बात कर रहे हैं तो हम उग्रवादी बन गए?''[17] जब दलित अपने अधिकारों को हासिल करने के लिए संघर्ष की बात करते हैं, आंदोलन छेड़ते हैं तब उन्हें उग्रवादी और नक्सलवादी घोषित करके उनके आंदोलन को पुलिस प्रशासन द्वारा प्रताड़ित और प्रतिबंधित करने के प्रसंगों का इस काहनी के द्वारा खुलासा किया है।

बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर द्वारा बताये गये मुक्ति के मार्ग पर चलने के लिए दलित समाज तैयार हुआ है। दलित अब गैर–दलितों की राजनीति के दाँव–पेंच समझ रहा हैं। राष्ट्रीय विकास पार्टी के दलित हितैषी मुखौटों और नकाबों में छिपे असली चेहरे और चरित्र को बेनकाब करते हुए अपनी दलित पार्टी के नये रिश्ते से जुड़ते हुए कहता है–''नये रिश्ते की बातें, जिसने हमारे बीच आकर, हमारे बीच रहकर हमें बाबा साहब और संघर्ष की बातें बताई।...अब हमारे वोट उसे ही। अब, पुराना रिश्ता...यानी कि विकास पार्टी को वोट देने वाला रिश्ता–समाप्त।....जहाँ हम कुछ नहीं जानते थे, वहाँ दलित पार्टी ने हमारी मुक्ति के मूल मंत्र...संघर्ष को हमारे दिलो–दिमाग में बिठा दिया है। इस पार्टी ने हमें समझा दिया है कि शोषक वर्गो के विरुद्ध हमारा संगठित संघर्ष ही हमें कुछ दे सकता है। इसलिए...हमारे वोट अब दलित पार्टी को।''[18] इस कहानी में दलितों में आयी राजनीतिक चेतना को अभिव्यक्त किया है।

राम निहोर विमल ने 'नई सोच' कहानी में दलित में आयी राजनीतिक चेतना के दाँव–पेंच को चित्रित किया है। दलित बस्ती चुनाव और राजनीति से बेखबर व दूर रही हैं। लेकिन इन दिनों दलितों को अपना अमूल्य मत का महत्त्व समझ में आ गया है। दलितों को मिल रही सारी सुविधाएँ, अधिकार और आरक्षण बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के नेतृत्व में चलाए गए आंदोलन की देन है। संतोषी कहता है–''हमारी दलित पार्टी के नेता लोग, खुद तो सांप्रदायिक और दलित विरोधी पार्टी से हाथ मिलाते हैं और हमें यानी दलित–जनता को कहते हैं कम्युनिस्टों से दूर रहो। अर्थात खुद तो देश की सबसे गंदी समझी जाने वाली सांप्रदायिक पार्टी से हाथ मिलाते हैं और दलित जनता को दुनिया के सबसे भले समझे जाने वाले लोगों से दूर रहने की सलाह देते हैं। खुद तो पैसा लेकर पार्टी तोड़ते हैं। पार्टी तोड़कर दुश्मनों की पार्टी में चले जाते हैं और हमें कहते हैं...संगठित रहो।''[19] दलित नेताओं के दोहरे चरित्र का खुलासा किया है। राजनीति के सौदेबाज सौदागर दलित पार्टी के दल–बदलू नेताओं को कोसते हैं। दलित बस्ती के लोग सोच रहे हैं कि दलित और बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के नाम पर ठग रहे हैं–''इन्हें मारकर समाज से मिटा देने की जगह, दलित लोग, इनकी गद्दारी, फरेब, जालसाजी और शोषण को सहन करते हैं और उन सबका बार–बार शिकार होता रहता है।, इसलिए दलित हैं।... देश के साथ गद्दारी करने पर, गद्दार को मौत दी जाती है तो जनता और समाज के साथ गद्दारी करने वालों को मौत क्यों नहीं दी जानी चाहिए?''[20] दलित बस्ती के बुधई और संतोषी दोनों ने मिलकर जनता को मूर्ख बनाकर पार्टियों के आपसी समझौते, विधायकों की खरीद–बिक्री, शोषकों–लुटेरों को सुरक्षा देना आदि सवालों के घेरे में दलित और गैर–दलित दोनों राजनीतिक पार्टियों को आड़े हाथों लिया हैं।

श्यौराज सिंह 'बेचैन' की 'भरोसे की बहन' कहानी में दलित राजनीति की असलियत को चित्रित किया है। दलित पार्टी का रामभरोसे एक ईमानदार कार्यकर्ता है। लेकिन रामभरोसे की घरवाली रामकली राजनीति से सख्त नफरत क्यों करती है– "भाड़ में जाये तुम्हारी भैन जी और चूल्हे में जाई उवा को रैला, बालक भूखे मरि रए हैं और तुम्हें नेतागिरी को नशा चढ़ि रओ है। दुए बैठि गये दस पास करि कें अब सीलमपुर की सड़कन पै बेलदारी करत फिरें हैं और तीसरी बेटी लिकारी दई स्कूल तैं। कहाँ से देउँ पिराईवेट स्कूल की मोटी फीस?''[21] रामकली देश के दलित की स्थिति में दिनोंदिन आ रही गिरावट के लिए राजनीति को जिम्मेदार ठहराती है। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर का मिशन और बहुजन समाज के उत्थान की बड़ी–बड़ी बातें करके दलित राजनीति गलत विचारधाराओं से गंठबंधन और समझौते करती है। लेकिन

दलित समाज के शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य जैसी प्राथमिक जरूरतों को अनदेखा करती है। दलितों के चुनाव में वोट लेकर केवल उन्हें बड़ी–बड़ी योजाएँ और नीतियों का सब्जबाग दिखाया जाता है। दलित राजनीति में भावुक नेताओं की कमी नहीं है। लेकिन दलित नेता इन भावुक कार्यकर्ताओं की भावनाओं से खूब खिलवाड़ करते है। बहुजन समाज की सत्ता से दलित स्त्री के हित में कोई भी कदम न उठाना किस बात की ओर संकेत है? रामभरोसे कई सरकारों के वायदे और कार्यों के अंतर के खट्टे–मीठे अनुभव अर्जित कर चुका था। इसलिए बहन जी के प्रति रामभरोसे का भरोसा डगमगाने लगता है।

दलितों की समस्याएँ क्या हैं? इसका अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है– ''दलित महिलाओं के साथ ठाकुरों, ब्राह्मणों द्वारा किए गए रेप की शिकायतें हैं। गाँव में धार्मिक स्थलों में बर्ती जा रही छूआछूत की शिकायते हैं और शहरों के मीडिया संस्थानों से दलितों के मानसिक छुआछूत के बर्ताव किये जा रहे हैं। उनके बहिष्कार की अर्जियाँ हैं। कुछ पट्टे की जमीनें, गाँव के दबंगों द्वारा छीन लिये जाने की अर्जियाँ हैं। कुछ शिक्षित दलितों को कॉलेज, विश्वविद्यालयों में लेक्चरशिप नहीं मिली है। खाली बैकलॉग भरने की अर्जियाँ हैं। एक अर्जी में बताया गया है कि भारत की संसद ने बैकलॉग भरने के लिए संविधान संशोधन 2000 में 50 प्रतिशत की सीमा रेखा समाप्त कर दी है। उच्च शैक्षिक पदों पर भर्ती के लिए अर्हताओं में सकारात्मक शिथिलता लाने की अपेक्षा की गयी है। सरकारी स्कूलों से शिक्षा और शिक्षिका विलुप्त होने और पब्लिक स्कूलों की गलेकाट फीस बढ़ने से गरीब दलितों के बच्चे शिक्षा न ले पाने की चिंता व्यक्त करती अर्जियाँ हैं। दलित हिंदी में पीएच.डी. भी हों तो भी उनसे नौकरी के लिए बी.ए. में संस्कृत माँगी जाती है।''[22] जब दलित राजनीति दलितों के इन समस्याओं को अनदेखा करेगी तो बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के राजनीतिक सपनों का क्या होगा? तब निरक्षर और निर्धन दलित उनकी ओर देखकर कहेगा–''खूब जमि रए हो पत्थर में बदलि कें हू, पूज्यनीय, पर तुम्हारी वे हाड़मांस की जिंदा दलित प्रतिमाएँ निरक्षर हैं। बर्बाद हैं। बेकार हैं, बेघर हैं। उनके बालक नांय खरीद पा रहे प्राइवेट तालीम और जो शिक्षित बेरोजगार हैं बाबा साहब उनकी का कहूँ।''[23] दलित राजनीति द्वारा आयोजित संकल्प रैली के सच के माध्यम से दलित और गैर–दलित दोनों तरफ के नेताओं का चरित्र इस कहानी के द्वारा कहानीकार ने उजागर किया है। सत्ताधारी पार्टी ने चुनाव में एक दलित के खिलाफ दूसरे दलित को खड़ा करके भारी मतों से जिता दिया था। इस तरह की घटना बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के साथ भी हुई थी।

यह देश अनेक जातियों में विभाजित है। चुनावी जीत के लिए एक जाति को दूसरी जाति पर निर्भर रहना पड़ता है। इसलिए व्यापक सामाजिक एकता का कोई दूसरा विकल्प नहीं हैं। सवर्णों के मत दलितों को नहीं मिलते। सारा बहुजन समाज एक हो जाये तो इस देश की जातिप्रथा के विरोध में संघर्ष किया जा सकता है। महात्मा बुद्ध, कबीर, फुले, आंबेडकर सब ने कोशिश की, लेकिन यह समाज जैसा था वैसा ही अब भी है। राजनीतिक अवसर को हासिल करने के लिए दिवाकर ने अपनी भूमिका बदली और अपनी विचारधारा के साथ समझौता करके चुनाव जीत गया और नीला छोड़कर भगवे रंग में रंग गया। लेकिन सत्ताधारी पार्टी के दलित दिवाकर के विरोध में थे। इस राजनीति के नये समीकरण से दलित आंदोलन को नई दिशा मिलने की बात तो दूर रही, इस जीत के उल्लास में निकाले गए जुलूस में अपनी जान से हाथ धो बैठा। जुलूस में शामिल सवर्णों ने भीम नगर का नामोंनिशाँ मिटा दिया।

संक्षेप में, साथ ही मोहनदास नैमिशराय की 'अधिकार चेतना' विपिन बिहारी की 'आधे पर अंत' और 'पुनर्वास' जयप्रकाश कर्दम की 'नो बार', राम निहोर विमल की 'नये रिश्ते', 'नई सोच', श्यौराज सिंह 'बेचैन' की 'भरोसे की बहन' आदि हिंदी दलित कहानियों में स्वार्थ, समझौते और अवसरवादियों के बीच फँसी दलित राजनीति का सच समाज के सामने अभिव्यक्त किया गया है। सवर्ण समाज की दलित राजनीति की ओर देखने के दृष्टि पर भी सवाल उठाया गया है। देश में शिक्षा, सत्ता, संसाधन, संपत्ति, सम्मान और संस्कृति पर पीढ़ी–दर–पीढ़ी सामंतों और तथाकथित सवर्णों का एकाधिकार दिखाई देता है। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के शब्दों में–'हिंदू समाज–व्यवस्था में लोगों द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों से बनी सरकार की आवश्यकता को कोई मान्यता नहीं दी जाती।' इसके कारण सदियों से दलित मनुष्य का जीवन जिन जटिल समस्याओं में उलझता गया है, उसे दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों में अभिव्यक्त किया है। राजनीति

और साहित्य के अंर्तसंबंध के संदर्भ में कँवल भारती कहते हैं–'राजनीति और साहित्य अलग–अलग होने के बावजूद भी दोनों की विषय अर्थवृत्ताएँ समान है।' सामाजिक परिवर्तन तभी संभव है, जब दलित इस पर गंभीरता से सोचना शुरू करे। सत्ता उन लोगों के हाथों में हो जो पराधीन और अधिकार विहीन लोग अपने श्रम से मनुष्य और सृष्टि को सुंदर बनाने के लिए प्रतिबद्ध हैं। बेशक, देश की राजनीतिक सत्ता में हिस्सेदारी दलितों और स्त्रियों के उत्थान और उद्धार के लिए अत्यंत आवश्यक है। इस बात से बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर शत–प्रतिशत सहमत रहे हैं। इस विषय में उन्होंने कहा है–'दलित वर्ग को संविधान द्वारा प्राप्त मताधिकारों के उपयोग से योग्य तथा प्रबुद्ध व्यक्ति जो स्वयं दलित हो, उसे अपने समाज का अस्तित्व बनाये रखने के लिए राजनीति में चयन करे।' लेकिन सत्ता हासिल करने के लिए मनुष्य–द्रोही विचारों और संगठनों से समझौता करना समाज विरोधी है। दलित कहानीकारों ने दोनों भाषिक क्षेत्र में सत्ताधारी वर्ग की दलित राजनीति के प्रति विचार व दाँव–पेंच और दलितों की राजनीति की दिशा और दशा पर सवाल उठाये हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. डॉ. आंबेडकर, बाबा साहेब–हिंदुत्व का दर्शन, संपूर्ण वाङ्मय, खंड–6, प्रकाशक : डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली–110 001, चौथा संस्करण–2013, पृ. 145
2. डॉ. आंबेडकर, बाबा साहेब–अस्पृश्यों का विद्रोह, गाँधी और उनका अनशन पूना पैक्ट, संपूर्ण वाङ्मय, खंड–10, प्रकाशक डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नईदिल्ली–110 001, चौथा संस्करण–2013, पृ. 328–29
3. यादव, राजेन्द्र–शब्द का भविष्य, खंड–9, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नईदिल्ली–110 002, प्रथम संस्करण–1998, पृ. 36
4. यादव, राजेन्द्र–खामोश, चिंतन चालू आहे!, खंड–5, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नईदिल्ली–110 002, प्रथम संस्करण–1998, पृ. 12–13
5. 'मीनू', रजत रानी, 'बेचैन' श्यौराज सिंह (संपादक)–दलित दख़ल, आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, ई–10/663, उत्तरांचल कॉलोनी, लोनी बार्डर, गाज़ियाबाद (उ. प्र.)–201 102, संशोधित संस्करण–2007, पृ. 95
6. वही, पृ. 90
7. खैरमोडे, चांगदेव भवानराव–भीमराव रामजी आंबेडकर, खंड–7, सुगावा प्रकाशन, 562, सदाशिव पेठ, चित्रशाला इमारत, पुणे–411 030, संस्करण–2013, पृ. 64
8. कंवल, भारती–दलित विमर्श की भूमिका, साहित्य उपक्रम, संस्करण–2012, पृ. 127
9. कर्दम, जयप्रकाश–मेरे साक्षात्कार, अमन प्रकाशन, 104ए/80सी, रामबाग, कानपुर–208 012, प्रथम संस्करण–2013, पृ. 66–67
10. चौधरी, उमाशंकर (संपादक)–हिस्सेदारी के प्रश्न–प्रतिप्रश्न : दलित विमर्श–2, अनामिका पब्लिशर्स एंडडिस्टीब्यूटर्स, दरियागंज, नईदिल्ली–110 002, संस्करण–2009, पृ. 417
11. तुलसी राम–दलित साहित्य की राजनीतिक अवधारणा, दलित–प्रसंग, प्रणव बंद्योपाध्याय (संपादक), शिलालेख, नईदिल्ली–110 002, संस्करण–1999, पृ. 134–35
12. नैमिशराय, मोहनदास–आवाजें, समता प्रकाशन, 30/64, गली नं. 8, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली–110 032, प्रथम संस्करण–1998, पृ. 122, पृ. 83
13. वही, पृ. 89
14. वाल्मीकि, ओमप्रकाश–सलाम, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., जी–17, जगतपुरी, नईदिल्ली–110 051, प्रथम संस्करण –2000, पृ. 44–45
15. बिहारी, विपिन–पुनर्वास, कामना प्रकाशन, सी–19, डी.डी.ए, (L.I.G) फ्लैट्स, ईस्ट ऑफ लोनी रोड, दिल्ली–110 093, पृ. 104
16. वही, पृ. 99
17. विमल, राम निहोर–मंकी भाई, शैवाल प्रकाशन, डी. आई. जी. आवास के सामने ढलान से नीचे चन्द्रावती कुटीर, दाऊदपुर, गोरखपुर–273 001, प्रथम संस्करण–2008, पृ. 113
18. वही, पृ 115
19. वही, पृ. 119
20. वही, पृ. 120
21. 'बेचैन', श्यौराज सिंह–भरोसे की बहन, वाणी प्रकाशन, 4695, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002, प्रथम संस्करण–2010, पृ. 137
22. वही, पृ. 156
23. वही, पृ. 153

हबीब तनवीर के नाटकों में यथार्थवाद

सदानंदे नागेश*
डॉ. बाळासाहेब सोनवणे**

प्रस्तावना :– हिंदी नाटक साहित्य के इतिहास मे हबीब तनवीर जी लोकप्रिय भारतीय नाटककारों मे एक महान नाटककार है हबीब तनवीर जी का आधुनिक हिंदी और भारतीय रंगकर्म के शीर्ष पुरुषों में से एक विशिष्ट रंग व्यक्तित्व है। हबीब तनवीर जी सच्चे अर्थो मे रंगमंच कला और संस्कृती के ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व थे, जिन्होने अपनी रंगयात्रा को आंतरराष्ट्रीय मुकाम पर पहचान दिलाई। भारतीय जनमानस मे पत्रकार, कवी, समीक्षक, गीतकार, संगीतकार, नाट्यलेखक, निर्माता, निर्देशक, रंगकर्मी, फिल्म–अभिनेता और प्रयोग धर्मी नाटककार के रूप मे अपने को स्थापित करने वाले हबीब तनवीर जी लोक कलाकार थे।

हबीब तनवीर जी ने आम आदमी के स्वप्नों, आकांक्षाओं, जीवन और संघर्षशीलता आदी को प्रस्तुत करने के साथ–साथ जनसामान्य में व्याप्त समस्या को अपने नाटकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। हबीब तनवीर जी का व्यक्तित्व भारतीय रंगमंच एवं उसकी आगे आने वाली पिढी के लिए सदैव अनुकरणीय रहेगा।

हबीब तनवीर जी अपने नाटको में यथार्थवाद का उनकी लोकधर्मी शैली सामाजिक प्रतिबद्धता झलकती है। उन्होने छत्तीसगढ़ी लोक कलाओं और ग्रामीण कलाकारों को शहरी मंच पर लाकर आधुनिकता और परंपरा का मिश्रण किया जिससे समकालीन सामाजिक, राजनीतिक मुद्दे जैसे शोषण, अन्याय और सांस्कृतिक पहचान का यथार्थवादी चित्रण आगरा बाजार, चरणदास चोर, बहादुर कलादिन, एक औरत हिपेशिया भी थी, जैसे नाटको में यथार्थवादी चित्रण उन्होने किया है।

हबीब जी ने रंगमंच को जनमंच के रूप मे यथार्थवादी प्रयोग किया है। जिसमें उन्होने आम आदमी के स्वप्नों, आकांक्षाओं, जीवन और संघर्षशीलता आदि को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने के साथ–साथ जनसामान्य की समस्याओं को अपने नाटकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है, जिससे उनके नाटको मे सिर्फ लोक यथार्थ की अभिव्यक्ती होती है। ये नाटक उन्होने सही मायनों में एक यथार्थवादी नाटककार बना देती है। उनके रचना प्रक्रिया और रंग प्रस्तुतीकरण यथार्थवादी दृष्टिकोन निम्न प्रकार से देख सकते है।

आगरा बाजार :– हबीब तनवीर जी द्वारा लिखा गया नाटक आगरा बाजार हिंदी नाटक साहित्य के इतिहास में अपना एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान रखता है। नजीर अकबराबादी के नज्मों, उनके जीवन और उनके परिवेश पर आधारित होते हुए भी यह नाटक तत्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थिति का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करता है। नाटक में बाजार की चहल–पहल, भाषा और वर्गभेद के बीच की कश्मकश को दिखाया गया है, जो उसे समय के सामाजिक यथार्थ को दर्शाता है।

हबीब तनवीर जी ने इस नाटक में रोजमर्रा आम आदमी की जिंदगी की वास्तविक स्थिति को उसके समूचे परिवेश के साथ चित्रित किया है। हबीब जी के नाटकों में आम जनमानस के जीवन का यथार्थवादी चित्रण दिखाई देता है। नाटक फकीरों के गीत से शुरू होता है, जिसमें आगरा के बाजार का यथार्थवादी चित्र देखने को मिलता है जैसे –

"है अब तो कुछ सुखन का मेरे कारोबार बंद
रहती है तबूअ सोच में लै लो निहार बंद
दरिया सुखन की फिक्र का है मौजदार बंद
हो किस तरह न मुंह में जुबा बार–बार बंद

***शोध–छात्र : हिंदी विभाग,** सावित्री बाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे।
****शोधनिर्देशक : हिंदी विभाग,** अरविंद तेलंग महाविद्यालय, निगडी–पुणे।

जब आगरे की खल्क का हो रोजगार बंद
जितने हैं आज आगरे में कारखानाजात
सब पर पड़ी है आन के रोजी की मुश्किलात
किस–किस के दुख को रोइये और किसकी कहिए बात
रोजी के अब दरख्त का मिलता नहीं है बात
ऐसी हवा कुछ आगे हुई एक बार बंद"[1]

इस एक नज्म से आगरा के बाजार का पूरा माहौल सामने आ जाता है। जिसमें किसी भी व्यापारी का कोई सामान नहीं बिक रहा है। रोजी की मार है और भयानक मंदी है बाजार में विभिन्न प्रकार के चरित्र है। ककड़ी बेचनेवाला, पान बेचनेवाला, लड्डू बेचनेवाला, किताब बेचनेवाला, एक उदयीमान कवि, एक ईर्ष्यालु कवि, एक ईमानदार आलोचक, नजीर का प्रशंसक, एक तवायफ, नज्में गानेवाला एक युवक, होली खेलने वालों का दल, पतंग वाला, पुलिस का आदमी, इस बाजार में सब आते हैं। यह सब पात्रों किसी न किसी तरह से नजीर से जुड़े हैं।

नाटक में बाजार है, दुकानदार है, सामान भी है पर खरीददार नहीं है, ऐसी भयानक मंदी बाजार की है। हबीब जी ने यथार्थ का दर्शन इस नाटक के माध्यम से किया है। यह नज्में सिर्फ नज्में ही नहीं है, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक व्यवस्था के कृत्यों पर जीता–जागता व्यंग है। बाजार में साजों सामान लगाए दुकानदारों के हाथ पैसा नहीं है, लगता लगती है तो बस चिडचिडाहट, बौखलाहट, भीतरी बेचौनी जो बाहर आकर गुस्से का रूप ले लेती है और एक दूसरे से नफरत की जड़ बनती है, जो आपसी झगड़े में बदल होने में कुछ देर नहीं लगती स्पैसे के अभाव में जितना की हालत उन कुत्तों की सी हो गई है, जो अपनी भूख मिटाने के लिए रोटी के एक छोटे से टुकड़े को लेकर भिड़ जाते हैं। जैसे –

"मुफलिस की कुछ नजर नहीं रहती है आन पर
देता है वह अपनी जान एक–एक नान पर
हर आन टूट पड़ता है रोटी के ख्वान पर
जिस तरह कुत्ते लड़ते हैं एक उस्तख्वान पर
वैसा ही मुफालिसों को लड़ाती है मुफालिसी
यह दुख वह जाने जिस पर की आती है मुफलिसी"[2]

हबीब जी ने बाजार का यथार्थवादी चित्रण बेहद वास्तविकता से किया है स्ऐसा नहीं है कि बाजार में बैठे दुकानदार एकदम सीधे साधे और ईमानदार है अवसर पढ़ने पर चालाकि और धोखेबाजी भी उनके व्यक्तित्व में देखी जा सकती है। बाजार में दुकानदार द्वारा की जाने वाली मिलावट और धूर्तता को दर्शाने के लिए हबीब जी ने इस नाटक के एक दृश्य में दिखाया है, जिसमें आचार में मरा चूहा निकलने पर नजीर की नज्म द्वारा कुछ इस प्रकार पेश किया है,

"फिर गर्म हुआ आन के बाजार चूहों का
हमने भी किया ख्वानचा तैयार चूहों का
सर–पॉव कुचल–करके दो–चार चूहों का
जल्दी से कचूमर सा किया चार चूहों का
क्या जोर मजेदार है आचार चूहों का"[3]

दुकानदारों की आपसी लड़ाई–झगड़े के बाद पुलिस का आना और मामले को स्वच्छता से सुलझाने के बजाय अपना मुनाफा कमाना पुलिस व्यवस्था का यथार्थवादी चित्रण पेश करता है स्जहां पुलिस साधारण जन की मदद कम और हर बात पर वसूली ज्यादा करती नजर आती है। आम जनता जो अपनी रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा करने हेतु पहले से ही काफी परेशानियों का सामना करती है, उनके लिए किसी भी हाल में पुलिस से रूबरू होना कष्टकारी सिद्ध होता है, फिर चाहे उसने अपराध किया हो या न किया हो।

"दारोगा– हां हां वह मुझे सब मालूम है। शरारत तुम सब की है, जुर्माना तुम सबको देना होना स्थाने आकर रुपया दाखिल कर दो।

लड्डूवाला – सरकार एक आदमी के पीछे हम सब गरीब क्यों मुफ्त में मारे जायें ? उसी ने हम सब की टांग ली थी। बात–बात में झगड़ा खड़ा कर दिया।

अगर समाज में रहकर खुशहाल जीवन बिताना है तो उसका सिर्फ एकमात्र रास्ता है खुशामद, चमचागिरी व्यवस्था में रहकर उसके द्वारा किए गए कार्यों में जो रस जाता है, अथवा प्रशंसा करता है, व्यवस्था उसी पर रहमों करम करती है। विपरीत जाने पर वही व्यवस्था जन सामान्य के लिए विविध परेशानियों का सबक बन जाती है। व्यवस्था के इस यथार्थ घिनौने रूप को इस नज्म में बेहद व्यंगात्मक रूप से दर्शाया गया है" गर भला हो तो भले की ली खुशामद कीजिए और बुरा हो तो बुरे की भी खुशामद कीजिए, पाको नापाक सड़े की भी खुशामद कीजिए, कुत्ते बिल्ली वह गधे की भी खुशामद कीजिए, जो खुशामद करें खल्क उससे सदा राजी है यह सच तो यह है की, खुशामद से खुदा राजी है।"[4]

नाटक में वर्णित बाजार का दृश्य और नजीर की नज्मो जहां तत्कालीन यथार्थ को प्रस्तुत करती है वही यह समस्याएं अनेक स्तरों पर आज के समाज से जुड़कर से प्रासंगिक भी हो उठती हैं इस प्रकार आवाम में नजीर और उनके गजलों का क्या महत्व है, किस कदर जन सामान्य के दिलों–दिमाग पर उनकी विरासत बरकरार हैं, मरने के बाद भी जानता ने किस प्रकार अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में उन्हें जिंदा रखा इसकी यथार्थवादी मार्मिक चित्रण हबीब तनवीर जी ने अपने नाटक में किया है। इस संबंध में देवेंद्रराज अंकुर लिखते हैं" भारतीय रंगमंच में भारतीयता अथवा उसकी अपनी निजी पहचान शैली और स्वरूप का डंका पीटने वालों नारों और मुहावरों का जन्म भी नहीं हुआ था। जिस दौर में भारतीय रंगमंच पश्चिम के तथाकथित यथार्थवादी प्रभाव में लेखन और प्रस्तुति के स्तर पर सक्रिय था, उसी क्षण हबीब तनवीर जी ने अपने नाट्य दल के साथ एक ऐसी रंग शैली की तस्वीर पेश कर रहे थे, जो बाद में भारतीय रंगमंच में झील का पत्थर साबित हुई।"[5]

हबीब तनवीर जी भारतीय रंगमंच के ऐसे महान नाटककार थे जिन्होंने लोक कलाकारों और आधुनिक थिएटर को जोड़कर यथार्थवादी नया इतिहास रचा। चरणदास चोर नाटक में उन्होंने आम जनता की पुकार का यथार्थवादी चित्रण किया है। रंगमंच की दुनिया में एक मास्टरपीस का दर्जा रखने वाला नाटक चरणदास चोर नाटक में चरणदास नामक एक चोर का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत किया है। चरणदास एक चोर होते हुए भी एक ईमानदार सहानुभूतिशील और सच्चा इंसान है, जो अपनी बात पर खरा उतरता है नाटक का विषय यथार्थवादी और पात्र समाज के विरोधाभासों और अंत विरोधी को उजागर और चित्रित करता है तथा हास्यपूर्ण ढंग से मानव स्वभाव की सामूहिक चेतना को चुनौती देते हैं। नाटक में तथाकथित नायक या प्रतिनायक चरणदास दर्शको को ही तय करने के लिए मजबूर करता है। यह नाटक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पहेलु को यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है।

यह नाटक एक बेहद साधारण छोटे से चोर के जीवन पर आधारित यथार्थवादी नाटक है। जो गुरु को दिए वचन का बेहद ईमानदारी से पालन करता है। चोरी करना उसका पेशा है पर एक बार दिए गए वचन से कहीं भी मन चुराते हुए वह नहीं दिखता फिर चाहे उसे इसके बदले में जीवन की हर सुख सुविधा मिल जाने का लालच ही क्यों न दिया गया हो। ऐसा यथार्थवादी चित्र नाटक में प्रस्तुत किया गया है।

सत्य की राह पर चलना आसान नहीं है जिन ऐशों–आराम का प्रस्ताव चरणदास चोर को दिया गया था, वह किसी का भी मन डिगाने में पर्याप्त कहा जा सकते हैं पर चोर जैसा साधारण व्यक्तित्व अपने सभी स्वार्थ को परे रख अपने वचन से टस से मस नहीं होता और एक भाग्यशाली दुर्भागा बन जाता है। अतः रानी द्वारा उसे मृत्युदंड दे दिया जाता है। इस प्रकार का यथार्थवादी वर्णन हबीब जी ने प्रस्तुत किया है। इस तरह स्वार्थ पर सच की जीत होती है। इस संपादक हरिनारायण कहते है'' यह चरणदास या किसी व्यक्ति का मूर्ति पूजन नहीं है, बल्कि सत्य और साधारण जन की असाधारण शक्ति में आस्था का नाट्य है।''[6]

हबीब तनवीर जी के नाटक चरणदास चोर में यथार्थवादी इस बात में है कि यह चोर को एक सिद्धांतवादी व्यक्ति के रूप में दिखता है, जो समाज के पाखंड सत्ता के दुष्चक्र और नैतिक दुविधाओं को उजागर करता है। जहां एक इमानदार चोर के लिए जगह नहीं होती और सत्य व असत्य की रेखा धुंधली हो जाती है साथ ही यह लोकनाट्य शैलियों का उपयोग करके आम आदमी के जीवन और संघर्ष को दर्शाता है जिससे नाटक जमिनी स्तर पर गहरा यथार्थवादी बन जाता है। नाटक शासको गुरु और समाज के पाखंड को उजागर करता है। गुरु ज्ञान देने के बावजूद भौतिकवादी है और रानी व्यक्तिगत लाभ के लिए लोगों की जान लेती है यह दिखाना है कि सत्ता में बैठे लोग अक्सर नैतिक रूप से कितने खोखले होते हैं। चरणदास चोर केवल एक कहानी नहीं बल्कि समाज की अंत विरोधी मानवीय चरित्र की जटिलताओं और सत्ता विरोधी संघर्ष का एक गहरा यथार्थवादी चित्रण है, जो लोक परंपराओं के माध्यम से आम जनता तक पहुंचता है।

हबीब तनवीर जी का नाटक बहादुर कलादिन यथार्थवादी सामाजिक शोषण का एक प्रतीक है। यह छत्तीसगढ़ के लोक जीवन सामंतवादी व्यवस्था के शोषण और नारी अस्मिता के संघर्ष को सीधे जमीन से जोड़कर दिखाया है जिसमें साधारण लोग लोकगीत और स्थानीय लोक कथाएं मंच पर जीवंत हो उठती है और समाज की विसंगतियों को बिना किसी दिखावे के लोग शैलियों और वास्तविक पात्रों के जरिए सामने लाता है। यह नाटक लोक कथाओं का यथार्थ उदाहरण है जिसमें बहादुर कलादिन नामक एक साहसी महिला के जीवन और संघर्ष को चित्रित किया गया है समाज के होशिए पर जी रहे लोगों की कहानी कहता है। हबीब जी ने सामंतवादी व्यवस्था और सामाजिक असमानता पर सीधा प्रहार करता है जहाँ साधारण किसान मजदूरों और महिलाओं का शोषण होता था जिसे नाटक यथार्थ के धरातल पर दिखता है।

बहादुर कलादिन के माध्यम से नाटककार ने नारी के सम्मान और उसकी मर्यादा और उसके प्रतिरोध की कहानी को दिखाया गया है, जो पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं की स्थिति का यथार्थवादी चित्रण है स हबीब जी ने यथार्थ का सामना करने वाली नारी बहादुर कलादिन का प्रभावशाली ढंग से चित्रण किया है। बहादुर एक सचमुच बहादुर का किरदार निभाया है। अपने बेटे छछान छडू की 126 शादियां की थी। लेकिन अतः उसने अपनी मां को ही वासना की नजर से देखता है और मां यह जानकर हैरान थी और उसने अपने ही बेटे को करने का फैसला लिया। उसने जानबूझकर उसे ज्यादा मिर्च मसालेवाला खाना खिलाया और घर के सारे बर्तन खाली कर दिए। उसने गांव वालों को पानी देने से मना पहले ही कर दिया था। अब बहादुर ने उसे ही कुए से पानी लाने को कहा और मौका पाते हैं उसे कुएं में धकेल दिया। इसके बाद उसने अपने सीने में कटार भोसकर आत्महत्या कर लेती है यही यथार्थ इस कहानी को मोड़ लेता है।

वैसे देखा जाए तो यह नाटक एक ट्रेजडी है। नाटककार ने यथार्थवादी ढंग से नाटक को सजाया है। छछान की अतृप्ति को अधिक नहीं उभार कर इस प्रसंग के जरिए स्त्री की घुटन और गुलामी को प्रस्तुत किया है। छछान की हत्या यथार्थवादी रूप से एक अत्याचारी की हत्या है जिसे हबीब जी ने यथार्थ की दृ ष्टि से बहुत ही सहज ढंग से प्रस्तुत किया है। "सहज प्रस्तुति में हबीब ने पंथी लोक कलाकारों के साथ जनजातियों के नर्तकों को सम्मिलित करने का प्रयोग भी किया मंडला गांव के यह गोंड नृत्य की पंथी कलाकारों जैसे प्रभावपूर्ण नहीं रहे तथापि उन्होंने बहादुर कलादिन को प्राणवान बनाया।"[7]

इस तरह यह नाटक लोककथा इतिहास और समकालीन यथार्थ के मिश्रण ने एक शक्तिशाली सामाजिक यथार्थवादी नाटक बन जाता है। यह नाटक सामंतवाद और नारी उत्पीड़न के यथार्थ को उजागर करता है जहां एक वीरांगना मां अपने बेटे को मार देती है, ताकि नारी सम्मान की रक्षा हो सके और यह नाटक लोक परंपराओं को समकालीन यथार्थ से जोड़कर सामाजिक जागरूकता पैदा करता है जिससे दर्शकों को सोचने पर मजबूर करता है।

हबीब तनवीर जीने एक औरत हिपेशिया भी थी नाटक में यथार्थवादी दृष्टिकोण यह है कि यह ज्ञान, विवेक और मानवीय गुना की सच्ची परख को दिखाता है, जहां एक अकेली महिला हिपेशिया अंधेरे के

बीच उम्मीद की किरण दिया बनकर उभरती है और यह दर्शाता है कि कैसे विज्ञान और तर्क को दबाया जाता है, लेकिन विवेक और हमदर्दी की जरूरत हमेशा बनी रहती है जो हबीब तनवीर के लोकनाट्य शैली और सामाजिक यथार्थ को दर्शाता है।''[8] नाटक हिपेशिया के माध्यम से यथार्थ दिखाना है कि कैसे ज्ञान और विज्ञान को धार्मिक या सामाजिक कहरना के सामने खतरा माना जाता है और कैसे अज्ञान के अंधकार में विवेक का दीपक जलाना पड़ता है।

हिपेशिया को सिर्फ बुद्धिमान ही नहीं बल्कि दिल की अच्छी और शख्स से हमदर्दी रखने वाली दिखाया गया है जो यथार्थ में जरूरी मानवीय मूल्यों को दर्शाता है न केवल बौद्धिक श्रेष्ठता को। कुल मिलाकर यह नाटक यथार्थवादी ढंग को चित्रित करता है इस तरह से हबीब तनवीर जी ने अपने नाटक में यथार्थवादी दृष्टिकोण के माध्यम से रंगमंच को सजाया है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मूल्यों को केंद्र बनाकर नाटकों का यथार्थवादी निर्माण किया है। समाज की दुरावस्था, मानवीय संवेदना, आम आदमी की जिंदगी को यथार्थवादी दृष्टिकोण से चित्रित करने का प्रयास हबीब जी ने अपने नाटकों के माध्यम से किया है।

संदर्भ–सूची :–

1. आगरा बाजार, हबीब तनवीर, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृष्ठ–47।
2. वही, पृष्ठ – 56।
3. वही, पृष्ठ – 76।
4. वही, पृष्ठ – 74।
5. वही, पृष्ठ – 61।
6. देवेंद्रराज अंकुर, अंतरंग बहिरंग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ – 139।
7. संपादक–हरि नारायण, कथादेश, अंक–7 पृष्ठ – 6।
8. https//samvadnews.in

छप्पर उपन्यास में अभियक्त दलित सामाजिक जीवन

प्रियंका*

सारांश :— छप्पर(1994) जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखित दलित साहित्य का बहुचर्चित उपन्यास है। जो भारत में दलितों के अभावग्रस्त जीवन का चित्रण प्रस्तुत करने के साथ–साथ सामाजिक–आर्थिक शोषण की स्थितियों को भी रेखांकित करता है। साथ ही जातिभेद और वर्गभेद की कुरीतियों को चित्रित करता है। यह उपन्यास दलित साहित्य के आधार स्तम्भ डॉ. भीमराव अम्बेडकर के 'शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो' के मूल मंत्र पर रचा गया है।

बीज शब्द :— दलित, अत्याचार, शोषण, शिक्षा, जाति।

हिन्दी दलित साहित्य वर्तमान दौर में साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लिखा जा रहा है। जिसमें दलित उपन्यास दलित लेखन की सर्वोत्कृष्ट विधा है। दलित उपन्यास दलित समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक और धार्मिक इत्यादि सभी पहलुओं पर विचार विमर्श करते हुए उनका जीवंत चित्रण प्रस्तुत करता है। दलित उपन्यास किसी एक व्यक्ति विशेष पर आधारित न होकर समग्र समाज पर केन्द्रित होता है। देश व समाज की परिस्थितियों, परम्पराओं, नीतियों के अन्याय के विरूद्ध एक अलग अवधारणा की स्थापना करना दलित उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है। समाज की विषमतावादी परिस्थितियों को केन्द्रित करके एवं उनकी विद्रूपताओं का यथार्थ पूर्ण चित्रण दलित उपन्यास में हुआ है। दलित उपन्यासकारों ने उपन्यास की अपेक्षा अधिकांशतः कहानियाँ लिखीं हैं। फिर भी दलित साहित्य के प्रारम्भिक दौर में जिन साहित्यकारों ने दलित उपन्यासों का सृजन किया है। उनका नाम क्रमशः है— मोहनदास नैमिशराय, प्रेम कपाड़िया, जय प्रकाश कर्दम आदि। इसके बाद के दौर में अजय नावरिया, भगवानदास मोरवाल, कावेरी इत्यादि है। इन सबसे हटकर जयप्रकाश कर्दम है।

अम्बेडकरवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक जयप्रकाश कर्दम दलित साहित्य के एक महत्वपूर्ण लेखक है। ये कवि, कथाकार, उपन्यासकार, आलोचक होने के साथ–साथ एक संपादक के रूप में विख्यात है। इन्होंने विशालकाय साहित्य का सृजन किया है। जिनमे इनके दो कविता संग्रह है— 'गूंगा नहीं था मैं' और 'तिनका तिनका आग'। इसके आतिरिक्त इनके तीन कहानी संग्रह है— 'खरोंच', 'तालाश' और 'उधार की ज़िंदगी' आदि। साथ ही इनके दो प्रसिद्ध उपन्यास है— 'करूणा' और 'छप्पर'।

छप्पर (1994) जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखित दलित साहित्य का बहुचर्चित उपन्यास है। यह उपन्यास भारत में दलितों के अभावग्रस्त जीवन का जीवंत चित्रण प्रस्तुत करने के साथ–साथ सामाजिक–आर्थिक शोषण की स्थितियों को भी रेखांकित करता है। छप्पर उपन्यास दलित साहित्य के आधार स्तम्भ डॉ. भीमराव अम्बेडकर के 'शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो' के मूल मंत्र पर रचा गया है। छप्पर उपन्यास के सम्बंध में डॉ. एन. सिंह लिखते हैं कि— "छप्पर एक ऐसा परिवर्तनकामी उपन्यास है जिसे मैं हिंदी का पहला दलित उपन्यास मानता हूँ।"[1] वही डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी कहते हैं कि— "छप्पर हिंदी साहित्य का नींव का पत्थर या पंथ–प्रदर्शक माइलस्टोन है; जिसका स्वागत किया जाना चाहिए।"[2] प्रस्तुत आलेख में हम 'छप्पर उपन्यास में अभिव्यक्त दलित सामाजिक जीवन' पर विस्तार से अपनी बात रखने की कोशिश करेंगे।

दलित समाज का बहिष्कार और अत्याचार :— भारत एक ग्राम प्रधान समाज है। जहाँ भारत की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या गाँव में निवास करती है, इसलिए भारत को गाँवों का देश कहा जाता है। भारत के गाँवों में ज़मींदारी प्रथा और सामंती व्यवस्था का बोलबाला है। जिसके कारण वहाँ दलितों का जीवन अत्यन्त कष्टदायी है। दलित समाज को वहाँ कदम–कदम पर जातिगत असमानता और अस्पृश्यता के दंश को

***पीएच.डी शोधार्थी हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

झेलना पड़ता है। इसी समस्या को जयप्रकाश कर्दम ने 'छप्पर' उपन्यास में उठाया है। प्रस्तुत कथा में गंगा के तट पर बसा पश्चिमी उत्तर प्रदेश का एक छोटा सा गाँव मातापुर है। जहां थोड़े से सुखी संपन्न(जमींदार–ठाकुर) लोग बड़े–बड़े पक्के मकानों में रहते है। वही सुक्खा जैसा दलित पात्र अपनी पत्नी रमिया के साथ घास–फूस के बने छप्पर में रहता है। कठोर परिश्रम और दमे जैसी घातक बीमारी ने सुक्खा को समय से पहले ही बूढ़ा कर दिया है। वह इस भयंकर बीमारी से मुक्त होना चाहता है पर एक तरफ़ ग़रीबी तो दूसरी तरफ़ चंदन की पढ़ाई का खर्च। उसकी चिंता का कारण बनते है। सुक्खा अपने बेटे चंदन को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए शहर भेजता है। तो पूरे मातापुर गाँव में भूचाल–सा मच जाता है क्योंकि आज तक गाँव के ब्राह्मण–ठाकुर से लेकर लाला–साहूकार के बच्चे गाँव छोड़कर शहर पढ़ने नहीं गए। चंदन चमार जाति से होने के बाद भी शहर चला गया। जो तथाकथित उच्च जाति का सरासर अपमान है। एक दलित इतना बड़ा हो गया। जो शिक्षा प्राप्त करके धर्म–शास्त्रों और वेद–वेदांगों का अपमान करे। धर्म को हथियार बनाकर काणे पण्डित कहता है– "प्रायश्चित करना पड़ेगा तुझे सुक्खा–प्रायश्चित। जल्दी से अपने बेटे को शहर से वापस बुला और प्रायश्चित करने का उपाय कर।"[3] ठाकुर हरनाम सिंह काणे पण्डित की बात का समर्थन करते हुए सुक्खा को समझाने का प्रयास करता है। लेकिन सुक्खा पर उनकी बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, तो वह गुस्से से भर जाता है। जिसके कारण पंचायत सुक्खा के विरूद्ध फ़ैसला सुनाते हुए कहती है– "न तो सुक्खा को किसी खेत–क्यार में घुसने दिया जाए और न उसे किसी डौले–चकरोड से घास खोदने दी जाए और न उसे लाई–पताई या मजदूरी के लिए बुलाया जाए।"[4] यह दवाब केवल सुक्खा पर नहीं बल्कि सम्पूर्ण दलित समाज पर अलग–अलग जगह में अलग–अलग रूप में पड़ता है। जो दलित समाज की आर्थिक विपन्नता का सबसे बड़ा कारण है। भूमिहीन दलित समुदाय अपनी रोज़ी–रोटी के लिए सामंती व्यवस्था पर निर्भर रहना पड़ता है। जो उनके शोषण और अत्याचार का सबसे बड़ा कारण बनता है। सुक्खा के विरूद्ध पंचायती राज का यह फ़ैसला जातिवादी मानसिकता का घिनौना रूप है। जिसे शासन व्यवस्था पुनर्जीवित करके वर्ण–व्यवस्था को मज़बूत बनाती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं कि– "सामाजिक विपन्नता के बावजूद सुक्खा अपने इकलौते बेटे को शहर पढ़ने भेजता है। यह मामूली सी घटना गाँव के आपसी संबंधों के खोखलेपन और दमन के हथकंडों को उघाड़कर रख देती है।"[5] दलितों की यह दयनीय स्थिति ग्रामीण परिवेश तक सीमित नहीं है, बल्कि शहरी परिवेश में भी कमोबेश एक समान है। चंदन जब शहर जाता है तो दलित होने का दंश उसने गाँव की तरह ही शहर में भी झेला था। उसने कॉलेज के सहपाठियों द्वारा जातिगत अपमान और तिरस्कार होने पर दलित युवकों को संगठित कर एक दलित सर्कल बनाया था।

दलित महिला की स्थिति :– भारतीय समाज व्यवस्था में दलित स्त्री दलितों में भी दलित मानी जाती है। जिसके लिए हमारी सामाजिक व्यवस्था और पुरूष प्रधान समाज ज़िम्मेदार है। दलित स्त्री सदियों से उपेक्षित–सा जीवन जीते हुए दोहरे–तिहरे शोषण की शिकार है। छप्पर उपन्यास में दलित पात्र कमला भट्ठा मालिक के यहाँ काम करते हुए सामूहिक बलात्कार का शिकार होती है। वह समाज के डर से आत्महत्या नहीं करती बल्कि कुँवारी माँ बनकर अपने बच्चे को पालती है। कमला अपने बच्चे का स्कूल में दाख़िला कराने के लिए चंदन द्वारा खोले गए स्कूल में जाती है। वहाँ एडमिशन फॉर्म भरते समय बच्चे के पिता का नाम पूछने पर बिना कुछ बोले घर लौट आती है। लेखक ने यहाँ प्रश्न किया है कि पितृसत्तात्मक समाज में बच्चे की पहचान माँ से नहीं बल्कि पिता के नाम से होती है। चंदन कमला के घर जाकर उसकी व्यथा सुनता है। तब कमला बताती है कि– "पहले मैंने सोचा कि यह गंदगी है और इस गंदगी को फेंक दू, लेकिन ममता के मोह ने रोक लिया।"[6] फिर थोड़ा रूककर बोलती है– "सोचती थी मेहनत–मजदूरी करके इसे पढ़ाऊँगी, लेकिन इस अभागे की तक़दीर में पढ़ना नहीं लिखा है शायद। कितनी विवश हूँ मैं कि चाह कर अपने बच्चे को नहीं पढ़ा पाऊँगी।"[7] इस कारण चंदन कमला के प्रति सहानुभूति रखता है। चंदन सोचता है कि जब कमला सामाजिक अन्याय और शोषण के खिलाफ लड़ सकती है। तो पुरूष वर्ग को भी कमला से प्रेरणा लेकर इस संघर्ष में आगे आना चाहिए। इस प्रकार उपन्यासकार ने यहाँ दलित स्त्री पीड़ा का मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत करने के साथ ही स्त्री–पुरूष के जीवन संघर्षों को एक–दूसरे का पूरक माना है। तेज सिंह लिखते हैं कि– "लेखक नारी की शक्ति को पहचानता है। कमला इस उपन्यास की ऐसी

जीवंत और जीवट चरित्र है जो आर्थिक स्वावलंबन के साथ–साथ आत्मसम्मान से जीना चाहती है और दलित नारियों के उत्थान के लिए संघर्ष करती नज़र आती है।"[8] वहीं डॉ. कुसुम मेघवाल कहती हैं कि– "उपन्यास में दलित नारी के शोषण का हू–ब–हू चित्र खींचा गया है किंतु उसे दयनीय न बेचारी न रखकर अपना जीवन सम्मान से जीने की प्रेरणा दी गई है। सामूहिक बलात्कार से पीड़ित कमला अपने बच्चे सहित समाज में ससम्मान रहने की हिम्मत पैदा हो जाती है।"[9]

दलित समाज में बढ़ता शिक्षा का महत्व :– डॉ. भीमराव अम्बेडकर कहते थे कि– 'शिक्षा वह शेरनी का दूध है, जो पियेगा वही दहाड़ेगा।' इसी विचार को जयप्रकाश कर्दम ने छप्पर उपन्यास में चित्रित किया है। प्रस्तुत कथा में चंदन संतनगर शहर की जे.जे. कॉलोनी के लोगों में परंपरागत रूप से पनप रहे धार्मिक अंधविश्वास, भाग्यवाद के विरूद्ध तर्क और कर्मवाद के बीज बोकर उन्हे जागृत करता है। जे.जे. कॉलोनी में मानसून न आने के कारण वर्षा नहीं होती तब दलित लोग इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ का आयोजन करते है। चंदन उन्हें समझाता है कि दुनिया में ईश्वर, भगवान, आत्मा–परमात्मा जैसी कोई सत्ता नहीं है। ये सब काल्पनिक मिथक है। जो तुम जैसे भोले–भाले, अशिक्षित लोगों मूर्ख बनाने के लिए ईजाद किए गए है। चंदन कहता है कि– "मनुष्य की सत्ता ही सबसे बड़ी है। दुनिया में मनुष्य से बड़ी कोई चीज नहीं है।"[10] छप्पर उपन्यास की समीक्षा करते वरिष्ठ दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि– "झोपड़पट्टी में पानी की क़िल्लत है। गर्मी के मौसम में यह विकट समस्या बन जाती है। संतनगर जे.जे. कॉलोनी में लोग इन्द्र देवता को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ करते है। चंदन विरोध करता है। ब्राह्मणवादी कर्मकांडों के विरुद्ध चेतना पैदा करता है।"[11] इस प्रकार लेखक ने चंदन के माध्यम से धार्मिक अंधविश्वास का भंडाफोड़ करके सामाजिक बदलाव लाना और दलित समाज को शिक्षित करने का काम किया है। चंदन झोपड़पट्टी में रह रहे दलित बच्चों के लिए स्कूल खोलता है। जहां वह स्वंय उन्हें पढ़ाता है। साथ ही वयस्कों में भी शिक्षा के प्रति जागरूकता फैलाकर बड़े पैमाने पर दलित चेतना आंदोलन का नेतृत्व करता है। जयप्रकाश कर्दम शिक्षा के महत्व को रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि– "शिक्षा से ही सोये हुए दलितों में जागृति आएगी तभी वे शोषण की बेड़ियों तोड़ पाएंगे। बिना शिक्षा के दलित समाज के लोगों की मूक ज़बान को वाणी नहीं मिलेगी।"[12] तभी चंदन शिक्षा के साथ संघर्ष और संगठन बनाने पर ज़ोर देता है। चंदन अपने चार दलित युवकों के साथ मिलकर एक दलित सर्कल बनाता है। वह दलितों को सम्बोधित करते हुए कहता है– "हमें समाज से टक्कर लेनी है, सत्ता से लड़ाई लड़नी है, जुल्म और शोषण के विरूद्ध संघर्ष करना है। एक–दो आदमी के बस की बात नहीं है यह काम।"[13] इस प्रकार कर्दम जी यहाँ डॉ. भीमराव अम्बेडकर की विचारधारा को क्रियान्वित करने के लिए चंदन जैसे कर्मठ और अपने सिद्धांतों पर अडिग पात्र की रचना की है। चंदन दलित समाज के शोषण, अपमान का ज़िम्मेदार हिंदू धर्म–ग्रंथों को मानता है। जिन्हें वह जड़ से उखाड़ फेंकने की बात करता है। चंदन सदियों से अज्ञानता और पिछड़ेपन की गर्त में पड़े दलित समाज को जगाने का काम करता है। जिसके लिए कुछ भी त्याग करने को तत्पर है। चंदन के त्याग और दृढ़ इच्छाशक्ति से प्रभावित होकर कॉलोनी के लोगों ने संकल्प लिया कि वे सभी व्यसनों का त्याग कर देगें और अपने बच्चों को शिक्षित करेगें। ताकि उनके बच्चे भी समता और स्वाभिमान का जीवन जी सके। इस प्रकार यहाँ लेखक का एकमात्र लक्ष्य है–जातिविहीन, वर्गविहीन समाज निर्मित करना।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि 'छप्पर' उपन्यास सामाजिक परिवर्तन द्वारा एक समतामूलक समाज की स्थापना करता है। जो बाबा साहेब के 'शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो' के मूल मंत्र पर आधारित है। इस उपन्यास में चंदन सदियों से गुलामी का जीवन व्यतीत करने वाले दलितों को सामंती व्यवस्था से मुक्त करने के लिए शिक्षा का मार्ग प्रशस्त करता है। इस लिहाज़ से 'छप्पर' दलित साहित्य का महत्वपूर्ण और मौलिक उपन्यास है।

संदर्भ–सूची :–

1. डॉ. एन. सिह, लेख–उत्पीड़न का रचनात्मक प्रतिफलन : छप्पर, दलित अभिव्यक्ति संवाद और प्रतिवाद, सं. रूपचन्द गौतम, श्रीनटराज प्रकाशन दिल्ली–110053, संस्करण– 2007, पृ.स. 14।

2. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, लेख– सामाजिक बदलाव का महास्वप्न 'छप्पर', दलित अभिव्यक्ति संवाद और प्रतिवाद, सं. रूपचन्द गौतम, श्रीनटराज प्रकाशन दिल्ली–110053, संस्करण– 2007,पृ.स. 25।
3. छप्पर (उपन्यास), जयप्रकाश कर्दम, राधाकृष्ण प्रकाशन नईदिल्ली– 110002, संस्करण– 2017, पृ.स. 36
4. वही, पृ. स. 38।
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि, लेख– स्वातंत्र्योत्तर दलित पीढ़ी की संघर्षगाथा, दलित अभिव्यक्ति संवाद और प्रतिवाद, सं. रूपचन्द गौतम, श्रीनटराज प्रकाशन दिल्ली–110053, संस्करण– 2007, पृ.स. 47।
6. छप्पर (उपन्यास), जयप्रकाश कर्दम, राधाकृष्ण प्रकाशन नईदिल्ली– 110002, संस्करण– 2017, पृ.स. 55।
7. वही, पृ. स.55।
8. डॉ. तेजसिंह, लेख– सामाजिक क्रांति के आइने में छप्पर, दलित अभिव्यक्ति संवाद और प्रतिवाद, सं. रूपचन्द गौतम, श्रीनटराज प्रकाशन दिल्ली–110053, संस्करण– 2007, पृ.स. 37।
9. डॉ. कुसुम मेघवाल, लेख–दलित चेतना का महत्वपूर्ण दस्तावेज़ 'छप्पर', दलित अभिव्यक्ति संवाद और प्रतिवाद, सं. रूपचन्द गौतम, श्रीनटराज प्रकाशन दिल्ली–110053, संस्करण– 2007, पृ.स. 70।
10. छप्पर (उपन्यास), जयप्रकाश कर्दम, राधाकृष्ण प्रकाशन नईदिल्ली– 110002, संस्करण– 2017, पृ.स. 19।
11. हिंदी दलित कथा–साहित्य अवधारणाएँ और विधाएँ, डॉ. रजत रानी मीनू, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूशन (प्रा.) लिमिटेड नई दिल्ली– 110002, संस्करण– 2010, पृ.स. 234।
12. दलित अभिव्यक्ति संवाद और प्रतिवाद, सं. रूपचन्द गौतम, श्रीनटराज प्रकाशन दिल्ली–110053, संस्करण– 2007, पृ. स. 35।
13. छप्पर (उपन्यास), जयप्रकाश कर्दम, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली– 110002, संस्करण– 2017, पृ.स. 44।

जी.एस.टी. 2.0 : सरलीकरण और प्रभाव

निशान्त सक्सेना*

डॉ. अरुण श्रीवास्तव**

सारांश :– जी.एस.टी. 2.0 से भारत की कर व्यवस्था में ऐतिहासिक बदलाव आया है। 22 सितम्बर 2025 से लागू नेक्स्ट जेनरेशन जीएसटी रिफॉर्मस (जीएसटी 2.0) ने कर संरचना को सरल बनाने के साथ–साथ आम आदमी के जीवन को और सुगम बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने स्वतंत्रता दिवस 2025 के सम्बोधन में इन परिवर्तनों की घोषणा की थी जिसे **'जीएसटी बचत उत्सव'** का नाम दिया है, जो आम जनता के लिये उत्साहवर्धक पहल है। 1 जुलाई, 2017 से लागू जीएसटी ने भारत की अप्रत्यक्ष कर प्रणाली को एकीकृत किया था लेकिन बहु–स्तरीय कर स्लैब (5 प्रतिशत, 12 प्रतिशत, 18 प्रतिशत, 28 प्रतिशत) और वर्गीकरण विवादों ने व्यवस्थाओं के लिये जटिलताएँ पैदा की थी। नेक्स्ट जेन जीएसटी रिफॉर्मस इन कमियों को दूर करते हुये दो स्तरीय कर संरचना (5 प्रतिशत और 18 प्रतिशत) लागू करते है। इसके अतिरिक्त लग्जरी और सिन गुड्स (जैसे– सिगरेट, प्रीमियम कारें आदि) के लिये 40% का स्लैब जोड़ा गया है। ये बदलाव 22 सितम्बर, 2025 से प्रभावी हो चुके है। वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण के अनुसार 'ये सुधार आम आदमी की जिंदगी को आसान बनाने, व्यवसायों को प्रोत्साहन देने और पारदर्शिता सुनिश्चित करने पर केन्द्रित है।' जीएसटी काउंसिल के अनुसार, इन सुधारों से 2.5 लाख करोड़ रूपये की बचत होगी, जो उपभोक्ताओं तक पहुंचेगी। यह न केवल आर्थिक विकास को गति देगा, बल्कि भारत को वैश्विक आपूर्ति श्रंखला में सशक्त बनाएगा।

कीवर्ड :– जीएसटी 2.0, अप्रत्यक्ष कर, गंतव्य कर, समावेशी विकास, सिन गुड्स।

प्रस्तावना :– 01 जुलाई 2017 से भारत में **'वन नेशन वन टैक्स'** की अवधारणा के अनुरुप **'वस्तु एवं सेवा कर'** (जीएसटी) लागू किया गया था जो देश की कर प्रणाली में ऐतिहासिक सुधारात्मक कदम माना गया। परन्तु इस प्रणाली को और भी सरल बनाने, पारदर्शी बनाने, आम आदमी और छोटे और मध्यम उद्योगों पर कर का बोझ कम करने, खपत और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने, कर चोरी को रोकने और राजस्व संतुलन बनाए रखने के लिए 22 सितम्बर 2025 से नेक्स्ट जनरेशन जीएसटी रिफॉर्मस (जीएसटी 2.0) लागू किया गया। जीएसटी 2.0 एक अगली पीढ़ी के सुधार के रुप में आया है जिसका लक्ष्य भारत को विकसित अर्थव्यवस्था बनाने की दिशा में कर प्रणाली को और अधिक समावेशी, कुशल और नागरिक–केन्द्रित बनाना है। यह सरलीकृत जीएसटी संरचना भारत की कर यात्रा में एक नया अध्याय है। नागरिकों के लिये वहनीयता, व्यवसायों के लिये प्रतिस्पर्धा और अनुपालन में पारदर्शिता पर ध्यान केन्द्रित करके ये सुधार जीएसटी को न केवल एक कर प्रणाली बल्कि समावेशी समृद्धि और आर्थिक रुपान्तरण के लिये उत्प्रेरक भी बनाते है। ये सुधार एक सरल, निष्पक्ष और विकास उन्मुख जीएसटी संरचना के निर्माण के लिये भारत की प्रतिबद्धता की पुष्टि करते है जिससे लोगों के जीवन में सुगमता और उद्यमों के लिये व्यापार करने में आसानी सुनिश्चित करते है।

शोध साहित्य का पुनरावलोकन :– शोध साहित्य का पुनरावलोकन शोध अध्ययन का दूसरा और महत्वपूर्ण चरण होता है। शोध साहित्य का पुनरावलोकन शोधकर्ता को अपने शोध विषय पर और अधिक जानकारी प्राप्त करने के साथ–साथ अपने अध्ययन में दुहराव से बचने में भी मदद करता है। प्रासंगिक साहित्य का पुनरावलोकन शोधकर्ता को अपने उद्देश्यों को सुविन्यस्त करने, अपने ज्ञान का केन्द्र गहरा करने, वर्तमान अध्ययन से पूर्व अध्ययन को भिन्न पहचानने तथा पूर्व अध्ययन की अनुपूर्ति करने अथवा कभी–कभी प्रतिवाद करने हेतु शोध को सुधारने में भी सहायता करता है। पूर्व अध्ययन वर्तमान अध्ययन के लिये मार्गदर्शक का भी कार्य करता है। 'जीएसटी 2.0 : सरलीकरण और प्रभाव' शीर्षक जीएसटी की अवधारणा पर आधारित शीर्षक है जिसका अपना ऐतिहासिक विवरण भी उपलब्ध है और राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक प्रकाशित पुस्तकें, शोध पत्र,

---

***शोधार्थी, वाणिज्य विभाग, एआरएनआई विश्वविद्यालय, कांगड़ा, हिमांचल प्रदेश।**

**** शोध निर्देशक, एआरएनआई विश्वविद्यालय, कांगड़ा, हिमांचल प्रदेश।**

समाचार पत्र एवं विचार गोष्ठी लेख उपलब्ध है जिनमें से कुछ प्रमुख स्त्रोतों का अध्ययन शोधार्थी द्वारा किया गया है जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

पुनीत कुमार कनौजिया एवं युद्धवीर सिंह (2018) ने **'भारत में जीएसटी एक कर सुधार के रुप में'** निष्कर्ष दिया है कि जीएसटी बिल देश की जटिल कराधान प्रणाली के लिये एक वरदान साबित हुआ है, यह देश के जीडीपी अनुपात को सक्रिय रुप से सुधारने का प्रयास करेगा और मुद्रास्फीति को भी बाधित करेगा। जीएसटी ने विभिन्न प्रकार के क्षेत्रों जैसे–FMG, Auto तथा सीमेन्ट आदि के मुकाबले विनिर्माण क्षेत्र को प्रतिकूल रुप से प्रभावित किया है।

जय प्रकाश प्रजापति (2017) ने **'लघु उद्योग और वस्तु एवं सेवा कर : सम्भावनाएं एवं चुनौतियां'** शोध पत्र में स्पष्ट किया कि जीएसटी व्यवस्था लागू होने से ग्रामीण और शहर के औद्योगिक विकास, आयात–निर्यात कारोबार पर प्रारम्भ में कुछ परेशानियां हो सकती है लेकिन बाद में इसके लाभ सामने आने लगेंगे। इस व्यवस्था से देश में जुगाड़बाजी पर अंकुश लगेगा और बिना हिसाब किताब वाले लेनदेन कम होगें जो कि देश हित में होगा। अतः सरकार के लिये उचित प्रशिक्षण, सेमिनार और जीएसटी पर कार्यशाला आयोजित करने की आवश्यकता है। अतः प्रशिक्षित कर्मचारियों की मदद से जनता एवं उद्योगपतियों, व्यापारियों के मध्य जागरुकता का प्रचार प्रसार करना तथा जीएसटी के फायदों और नुकसान को भी बताया जाये जिससे जीएसटी को भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में सफल बनाया जा सकता है।

अगोगो मौली (2014) ने **'माल और सेवा कर एक मूल्याकंन'** पर अध्ययन किया जिसमें उन्होनें बताया कि जीएसटी कम आय वाले देशों के लिये अच्छा नहीं है और गरीब देशों में व्यापक आधार प्रदान नहीं करता है। अगर फिर भी ये देश जीएसटी लागू करना चाहते है तो जीएसटी की दर विकास के लिये 10 प्रतिशत से कम होनी चाहिये।

आर. बसंतगोपाल (2011) ने **'भारत में जीएसटी अप्रत्यक्ष कर प्रणाली में एक बड़ी छलांग'** में निष्कर्ष के रुप में यह बताया कि भारत में वर्तमान में जटिल कर प्रणाली से निर्बाध (निजात) जीएसटी पर स्विचिंग भारतीय अर्थव्यवस्था में तेजी लाने के लिये एक सकारात्मक कदम होगा। जीएसटी की सफलता दुनिया में 150 से अधिक देशों और एशिया में अप्रत्यक्ष कर प्रणाली को एक नई राह एवं नई दिशा की ओर ले जायेगी।

नितिन कुमार (2014) ने अपने शोध अध्ययन **'वस्तु एवं सेवा कर आगे की ओर उन्मुख'** में निष्कर्ष के रुप में यह बताया कि भारत में जीएसटी के कार्यान्वयन को वर्तमान अप्रत्यक्ष कर प्रणाली द्वारा आर्थिक विरुपण हटाने में मदद मिली है और अपेक्षाकृत अप्रत्यक्ष कर ढांचे को प्रोत्साहित करने की उम्मीद है।

अध्ययन के उद्देश्य :– प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य जीएसटी 2.0 के अन्तर्गत व्यापक कर सुधारों के कार्यान्वयन, उनके सरलीकरण के पहलुओं (जैसे दरों का युक्तिकरण और अनुपालन में आसानी) और व्यवसायों, उपभोक्ताओं, अर्थव्यवस्था और राजस्व पर पड़ने वाले प्रभावों (सकारात्मक और चुनौतियों) का गहराई से विश्लेषण करना ताकि समावेशी विकास, पारदर्शिता और राजकोषीय स्थिरता की नींव रखी जा सके।

परिकल्पना :–

- जीएसटी 2.0 के तहत दरों के सरलीकरण (मुख्यतः 5% और 18% की दो स्लैब प्रणाली) और प्रक्रियागत सुधारों (डिजीटलीकरण, वस्तु एवं सेवा कर अपीलिय न्यायाधिकरण) से कर अनुपालन में आसानी होगी।
- व्यावसायों की लागत घटेगी, खपत बढ़ेगी, जीडीपी में वृद्धि होगी और अंततः भारत सरकार की अर्थव्यवस्था अधिक औपचारिक, पारदर्शी और प्रतिस्पर्धी बनेगी, जिससे उपभोक्ता और सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों को सर्वाधिक लाभ होगा।

शोध विधि :– शोध अध्ययन हेतु विश्लेषणात्मक शोध पद्धति का उपयोग किया गया है। अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु द्वितीयक आंकड़ो का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक आंकड़ो को जीएसटी 2.0 के प्रस्तावों, नीति दस्तावेजो, पूर्ववर्ती जीएसटी सुधारों, सरकारी रिपोर्ट, उद्योग सर्वे और आर्थिक सर्वेक्षणों से एकत्रित सूचनाओं से एकत्रित किया गया है।

जीएसटी का इतिहास :– भारत में वस्तु एवं सेवा कर की शुरुआत एक लम्बी प्रक्रिया का परिणाम थी। इसका उद्देश्य **'एक राष्ट्र, एक कर'** की अवधारणा को साकार करना था। भारत में सर्वप्रथम जीएसटी का विचार वर्ष 2000 में श्री अटल बिहारी बाजपेयी जी के नेतृत्व वाली एन0डी0ए0 सरकार ने रखा था। इसके लिये पश्चिम बंगाल के तत्कालीन वित्त मंत्री श्री असीम दास गुप्ता की अध्यक्षता में एक अधिकार प्राप्त समिति का गठन किया गया था। वर्ष 2004 में श्री विजय एल0 केलकर के नेतृत्व में अप्रत्यक्ष करों पर **'केलकर टास्क फोर्स'** ने अप्रत्यक्ष कर प्रणाली को सुव्यवस्थित करने और मौजूदा जटिल संरचना को बदलने के लिये जीएसटी की सिफारिश की। वर्ष 2006 में तत्कालीन वित्त मंत्री श्री पी0 चिदम्बरम ने 2006–07 के बजट में घोषणा की कि 01 अप्रैल, 2010 से देश में जीएसटी लागू कर दिया जायेगा। वर्ष 2011 में यूपीए सरकार ने जीएसटी लागू करने के लिये 115वां संविधान संशोधन विधेयक पेश किया लेकिन राज्यों के विरोध और कुछ राजनीतिक कारणों से यह पारित नहीं हो सका। वर्ष 2014 में श्री नरेन्द्र मोदी जी के नेतृत्व वाली एन0डी0ए0 सरकार के सत्ता में आने के बाद, 122वां संविधान संशोधन विधेयक संसद में पेश किया गया। अगस्त 2016 में यह विधेयक संसद के दोनों सदनों (लोक सभा और राज्य सभा) में पारित हुआ। इसके बाद 08 सितम्बर 2016 को तत्कालीन राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने इस पर हस्ताक्षर किए और यह 101वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2016 बन गया। 30 जून और 01 जुलाई, 2017 के दरमियान रात को संसद के सेन्ट्रल हॉल में एक विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया और 01 जुलाई, 2017 से पूरे भारत (जम्मू–कश्मीर राज्य को छोड़कर) में जीएसटी लागू कर दिया गया।

सबसे अन्त में जम्मू–कश्मीर की विधान सभा में 7 अगस्त, 2017 को जीएसटी विधेयक को मंजूरी मिली और 8 अगस्त, 2017 को यह जम्मू–कश्मीर में भी लागू हो गया।

जी.एस.टी. 2.0 :– भारत में जीएसटी 2.0 (जिसे नेक्स्ट जनरेशन जीएसटी सुधार भी कहा जाता है) वस्तु एवं सेवा कर प्रणाली का अब तक का सबसे बड़ा अपग्रेड है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने 15 अगस्त 2025 को लाल किला से अपने सम्बोधन में 'जीएसटी सुधार 2.0' का विजन साझा किया था। केन्द्रीय वित्त मंत्री श्रीमती निर्मला सीतारमण जी की अध्यक्षता में हुई 56वीं जीएसटी परिषद बैठक में इस ऐतिहासिक सुधार को मंजूरी दी गयी और जीएसटी 2.0 पूरे देश में 22 सितम्बर 2025 से लागू कर दिया गया।

जीएसटी का आशय :– वस्तु एवं सेवा कर एक गन्तव्य आधारित एकल कर है जो निर्माताओं से लेकर उपभोक्ताओं तक वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति पर लागू होता है। जीएसटी के लागू होने से केन्द्र एवं राज्यों द्वारा पारित बहु–अप्रत्यक्ष कर निरस्त कर दिए गए है जिसके परिणामस्वरुप सम्पूर्ण देश एक संयुक्त बाजार में परिवर्तित हो सका। जीएसटी से 17 अप्रत्यक्ष करों और 23 उपकरों का प्रतिस्थापन किया गया है। जीएसटी में केन्द्रीय जीएसटी और राज्य जीएसटी का समावेश है। जीएसटी को कराधान तंत्र में क्रान्ति के रुप में देखा जा सकता है और सभी प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में समरुपता लाई गई है। यह भी सही है कुछ किस्म की वस्तुएं एवं सेवाएं सस्ती हुई हैं और अन्य किस्म की वस्तुएं एवं सेवाएं महंगी हुई है।

जीएसटी स्त्रोत पर कराधान नहीं है यह गंतव्य कर अर्थात् उपभोग कर है। मान लीजिए, एक वस्तु तमिलनाडु में निर्मित है और दिल्ली के व्यक्ति को बेंची जाती है तो कर का प्रभार दिल्ली के उपभोक्ता पर आएगा और केन्द्र व राज्य के मध्य कर भुगतान होगा।

जीएसटी की विशेषताएं:–

1. जीएसटी भारत में सभी राज्यों में लागू है।
2. जीएसटी वस्तुओं एवं सेवाओं की पूर्ति पर लागू है न कि वस्तुओं के निर्माण बिक्री अथवा सेवाओं पर प्रयुक्त प्रावधानों पर।
3. उद्गम आधारित कराधान सिद्धान्त की अपेक्षा जीएसटी गंतव्य आधारित खपत का सिद्धान्त है।
4. वस्तुओं एवं सेवाओं का आयात अन्तर्राज्य आपूर्ति माना जाएगा तथा प्रति लोक प्रभार के आधार पर आईजीएसटी के अन्तर्गत होगा।
5. जीएसटी परिषद के अधीन सीजीएसटी, एसजीएसटी दरों की उगाही की गणना केन्द्र औरा राज्यों के मध्य आपसी सहमति पर की गई है।

6. प्रारम्भ में सभी प्रकार की वस्तुओं एवं सेवाओं पर जीएसटी चार कर दरों पर लगता था। ये दरें 5%, 12%, 18% और 28% थी परन्तु वर्तमान जीएसटी 2.0 प्रभावी होने के बाद यह तीन कर दरों 5%, 18% और 40% में परिवर्तित हो गया है।
7. विशेष आर्थिक क्षेत्रों में निर्यात एवं आपूर्ति को 0% कर दर पर रखा गया है।
8. करदाता के लिये कर भुगतान हेतु विभिन्न विधियों का प्रावधान किया गया है। ये विधियां है– डेबिट व क्रेडिट कार्ड का उपयोग, इंटरनेट बैंकिग, NEFT और RTGS ।

जीएसटी के लाभ–नागरिकों का सशक्तिकरण :–

1. सम्पूर्ण कर–भार में कमीं
2. कोई गुप्त कर नहीं
3. वस्तुओं एवं सेवाओं के लिये देशीय एकरुप बाजार
4. उच्च प्रयोज्य आय
5. ग्राहकों के लिये वृहत् चुनाव
6. आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि
7. रोजगार अवसरों में वृद्धि

जीएसटी 2.0 सरलीकरण :– जीएसटी 2.0 कर सुधार पुरानी जटिल कर संरचना को सरल बनाने और आम जनता को मंहगाई से राहत देने के लिए लागू किया गया है। इसकी प्रमुख विशेषताएं और विवरण निम्नलिखित है–

1. **कर संरचना का सरलीकरण** –पुरानी चार स्तरीय कर संरचना (5%, 12%, 18% और 28%) को घटाकर अब मुख्य रुप से तीन श्रेणियों में बांट दिया गया है–
   - **5 प्रतिशत (कम दर)** – आवश्यक वस्तुएं, कृषि उपकरण (जैसे–ट्रैक्टर) और रू0 2500 तक के कपड़े/जूते।
   - **18 प्रतिशत (मानक दर)** – इलेक्ट्रानिक्स (ए.सी., टी.वी.), छोटी कारें (≤3500 सीसी), साबुन, शैम्पू और अधिकांश सामान्य सामान व सेवाएं।
   - **40 प्रतिशत (उच्च/लग्जरी दर)** – तम्बाकू, विलासिता वाली कारें, निजी विमान, ऑनलाइन गेमिंग और सट्टेबाजी।

जीएसटी 2.0 कर स्लैब वितरण (%)

TAX SLAB (%)	SHARE OF GOODS/SERVICES (%)
0%	18
5%	32
18%	34
40%	16
Total	100

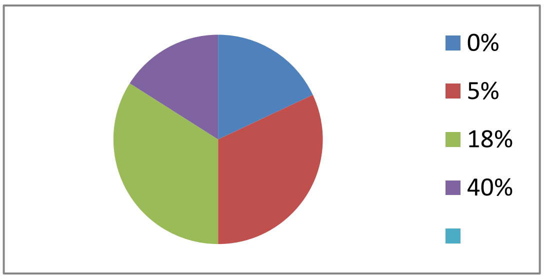

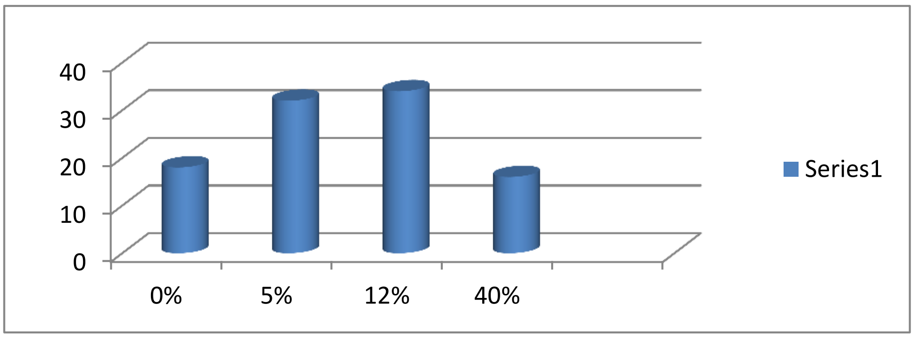

2. **शून्य कर (0% GST) श्रेणी का विस्तार** – आम आदमी को राहत देने के लिये कई महत्वपूर्ण वस्तुओं और सेवाओं को पूरी तरह कर–मुक्त किया गया है–
   - **खाद्य पदार्थ** – प्री–पैकेज्ड पनीर, दूध, दही, रोटी, चपाती और पराठा।
   - **स्वास्थ्य और शिक्षा** – व्यक्तिगत स्वास्थ्य और जीवन बीमा प्रीमियम पर अब 0% GST है (पहले 18% GST था) साथ ही 33 प्रकार की जीवन एक्ष दवाइयों और कोचिंग/ट्यूशन जैसी शिक्षक सेवाओं को कर–मुक्त किया गया है।
3. **प्रशासनिक और तकनीकि सुधार** – व्यापार को आसान बनाने के लिये प्रक्रियात्मक बदलाव किये गये है–
   - **श्रेणी से पंजीकरण** – नया जीएसटी नम्बर अब केवल 3 कार्य दिवसों के भीतर प्राप्त किया जा सकता है।
   - **स्वचलित रिफंड** – रू0 1000 करोड़ तक के रिफंड अब मानवीय हस्तक्षेप के बिना स्वचालित रुप से प्रोसेस होगें।
   - **सख्त अनुपालन** – 1 अक्टूबर 2025 से रिटर्न फाइलिंग (GSTR – 3B) और इनपुट टैक्स क्रेडिक के मिलान के लिये ए.आई. आधारित रीयल–टाइम टूल्स का उपयोग किया जा रहा है।

जीएसटी 2.0 के प्रभाव :– अर्थव्यवस्था पर प्रभाव– जीएसटी भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक बदलाव किया है इसका मुख्य प्रभाव उपभोग आधारित विकास दर, कर अनुपालन में सुधार और जीडीपी वृद्धि पर देखा जा रहा है।

1. **जीडीपी पर प्रभाव** –
   - **विकास दर वृद्धि** – विभिन्न विश्लेषणों के अनुसार जीएसटी 2.0 सुधारों से भारत की जीडीपी में 0.5 प्रतिशत से 1 प्रतिशत तक की अतिरिक्त वृद्धि का अनुमान है।
   - **आर्थिक स्थिरता** – घरेलू उपभोग में वृद्धि ने वैश्विक व्यापार की अनिश्चितताओं और आयात शुल्कों के प्रभाव को संतुलित करने में मदद की है। जुलाई–सितम्बर 2025 तिमाही में जीडीपी वृद्धि 8.2 प्रतिशत दर्ज की गई, जो इन सुधारों के सकारात्मक प्रभाव को दर्शाती है।
2. **उपभोग और मंहगाई में कमी** –
   - **मुद्रास्फीति में गिरावट** – आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं पर कर कम होने से खुदरा मुद्रास्फीति (CPI) में 0.4 प्रतिशत से 0.7 प्रतिशत की कमी आने की सम्भावना है।
   - **खरीद क्षमता में वृद्धि** – कर स्लैब के सरलीकरण से आम आदमी की बचत बढ़ी है। अनुमान है कि इससे बाजार में लगभग रू0 2 लाख करोड़ का अतिरिक्त नकदी प्रवाह (Extra liquidity) आयेगा, जिससे माँग में तेजी आई है।
3. **राजस्व और कर अनुपालन** –
   - **रिकार्ड कर संग्रह** – अप्रैल 2025 में जीएसटी संग्रह रू0 2.37 लाख करोड़ के ऐतिहासिक स्तर पर पहुंच गया। कर चोरी में कमी और अनुपालन में सुगमता के कारण अक्टूबर 2025 में संग्रह में 46 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि देखी गयी।
   - **डिजिटल भुगतान** – नई कर व्यवस्था के लागू होने के साथ डिजिटल लेन–देन में भारी उछाल आया है।

जीएसटी 2.0 से राजस्व संग्रह में वृद्धि (%)

FINANCIAL YEAR	INCREASE (%)
2021-2022	10
2022-2023	22
2023-2024	12
GST 2.0 ESTIMATE	14

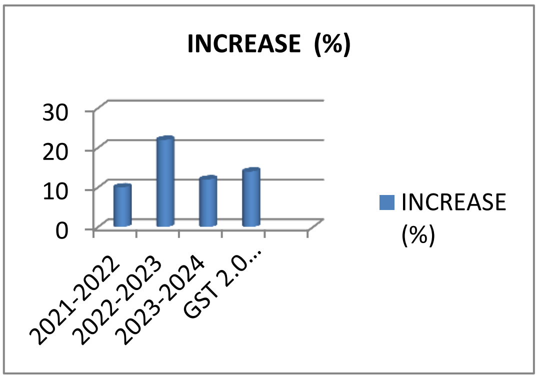

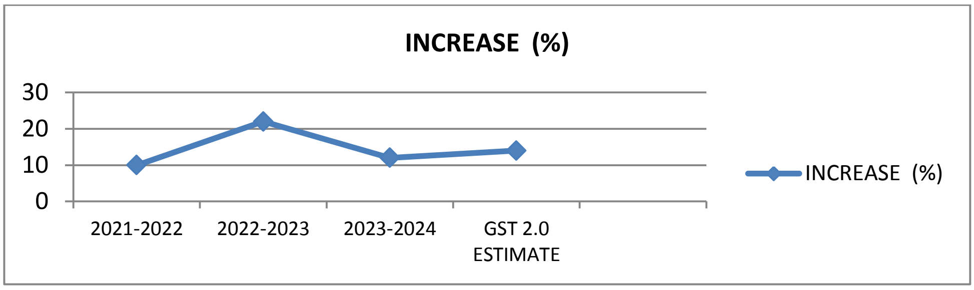

प्रमुख क्षेत्रों पर प्रभाव –

- **ऑटोमोबाइल** – वाहनों पर कटौती (28% से 18%) के बाद अक्टूबर 2025 में बिक्री में 41.3 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर्ज की गयी।
- **MSME सेक्टर** – कर रिफंड और पंजीकरण की प्रक्रिया (3 दिनों में ऑटो–अप्रूवल) सरल होने से छोटे व्यवसायों की कार्यशील पूंजी में सुधार हुआ है।
- **बीमा और स्वास्थ्य** – बीमा प्रीमियम पर 0 प्रतिशत जीएसटी और 33 जीवन रक्षक दावाओं पर कर हटाने से स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच बढ़ी है।

4. **व्यवसायिक सुगमता –**

- **सरलीकृत स्लैब** – पुरानी जटिल 4 स्लैब व्यवस्था को मुख्य रुप से दो स्लैब में बदलने से कर विवादों में भारी कमी आयी है।
- **लॉजिस्टिक और सप्लाई चेन** – ई–वे बिल (E-Way bill) जनरेशन में सितम्बर–अक्टूबर 2025 के दौरान 14.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जो सुचारु व्यापारिक गतिविधियों का संकेत है।

इन सुधारों ने भारत को $ 30 ट्रिलियन की अर्थव्यवस्था बनने में दीर्घकालीन लक्ष्य की ओर मजबूती से अग्रसर किया है।

5. **आम उपभोक्ताओं पर प्रभाव** – जीएसटी 2.0 दरों में कटौती और स्लैब के युक्तिकरण से मध्यम वर्ग को बड़ी राहत मिली है–

- **बीमा राहत** – व्यक्तिगत जीवन और स्वास्थ्य बीमा प्रीमियम को जीएसटी मुक्त (0 %) कर दिया गया है जिससे बीमा कवर लगभग 18 प्रतिशत तक सस्ता हो गया है।
- **आवश्यक वस्तुएं** – 33 जीवन रक्षक दवाओं और पराठा, रोटी, खाखरा जैसे खाने–पीने की वस्तुओं पर जीएसटी हटाकर 0 प्रतिशत कर दिया गया है।
- **घरेलू उपकरण** – टी.वी. (LCD/LED), ए.सी., रेफ्रिजरेटर और डिशवॉशर जैसी वस्तुओं पर कर 28 प्रतिशत से घटाकर 18 प्रतिशत कर दिया गया है।
- **दैनिक उपयोग की वस्तुएं** – साबुन, टूथपेस्ट, शैम्पू और साइकिल जैसे उत्पादों पर अब केवल 5 प्रतिशत जीएसटी लगेगा।
- **कृषि** – सिंचाई उपकरण और उर्वरकों पर कर 12 प्रतिशत से घटाकर 5 प्रतिशत कर दिया गया है जिससे किसानों की इनपुट लागत कम हुई है।
- **रियल स्टेट** – सीमेन्ट पर कर 28 प्रतिशत से घटकर 18 प्रतिशत होने से निर्माण लागत में 5 से 7 प्रतिशत की कमी आयी है जिससे घर खरीददाताओं को लाभ हुआ है।

जीएसटी 2.0 उपभोक्ता मूल्य प्रभाव (%)

IMPACT CATEGOARY	PERCENTAGE (%)
REDUCTION IN PRICES	45
STABLE PRICES	35
INCREASE IN PRICES	20

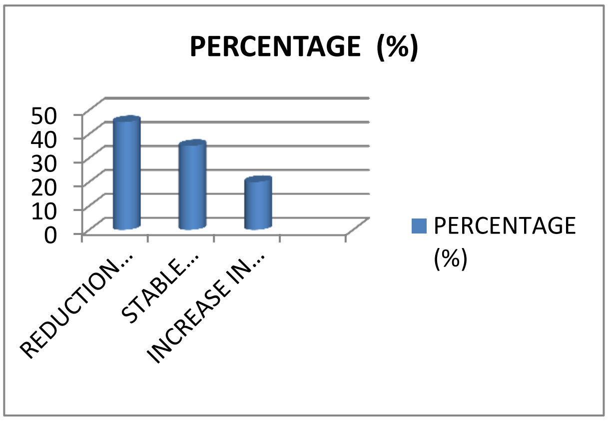

6. **विलासिता और हानिकारण वस्तुओं पर प्रभाव :–** सरकार ने राजस्व संतुलन के लिये डी–मेरिट/सिन गुड्स पर कर बढ़ाया है। तम्बाकू, पान मसाला, शीतल पेय और लग्जरी कारों पर अब 40 प्रतिशत जीएसटी लागू है। इससे सलाना करीब रू0 50,000 करोड़ का अतिरिक्त राजस्व प्राप्त होने की सम्भावना है।
7. **वैश्विक पहचान और डिजिटलाइजेशन पर प्रभाव –** जीएसटी 2.0 भारत के डिजिटल ढांचे और वैश्विक पहचान को मजबूत करता है जिससे कर प्रणाली सरल, पारदर्शी बनती है। व्यवसायों की अनुपालन लागत घटती है, एफ.डी.आई. बढ़ता है और भारत को एक 'विश्वसनीय डेटा हब' के रुप में स्थापित करता है जो 'डिजिटल इंडिया' विजन को मजबूत करता है और वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं के लिये भारत को अधिक आकर्षक बनाता है।

जीएसटी 2.0 के कारण व्यापार लागत में कमी (%)

BUSINESS CATEGORY	REDUCTION IN COST (%)
MSME	22
SMALL BUSINESS	18
MEDIUM INDUSTRY	25
LARGE INDUSTRY	15

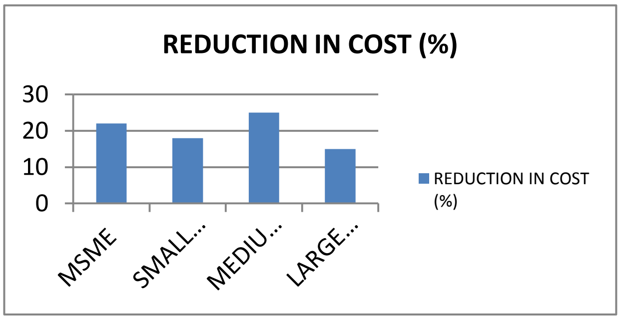

निष्कर्ष :– समावेशी विकास की ओर नेक्स्ट जेन जीएसटी रिफॉर्मस केवल कर सरलीकरण तक सीमित नहीं है बल्कि यह भारत के आर्थिक उदय का प्रतीक है। यह हर नागरिक, किसान, व्यापारी और उद्योग के लिये सकारात्मक बदलाव ला रहा है। जीएसटी लागू होने से सुख साधन की वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतें बड़ी है, वहीं जनखपत की वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों में गिरावट आयी है। विरोधी मापदण्ड जीएएसटी की प्रमुख विशेषता है। यह मापदण्ड व्यापारियों पर अधिक लाभ पर वस्तुओं एवं सेवाओं को बेचन पर रोक लगाता है। जीएसटी 2.0 एक समावेशी विकास का आधार है जो सामाजिक न्याय और आर्थिक प्रगति को जोड़ता है। यह सुधार न केवल देश की अर्थव्यवस्था को गति दे रहा है बल्कि वैश्विक मंच पर भारत की स्थिति को और सशक्त बना रहा है।

संदर्भ–सूची :–

1. सिंह, एस.के. एवं गुप्ता, संजय. 2025 व्यावसायिक अध्ययन, राजीव बंसल, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन, आगरा।
2. कुमार, अजीत एवं सिंह, नागेन्द्र. 2025 व्यवसाय अध्ययन, अरिहन्त प्रकाशन, मेरठ।
3. कनौजिया, पुनीत कुमार एवं सिंह, युद्धवीर. 2018 'भारत में जीएसटी एक कर सुधार के रुप में' IJRAR, Volume – 05, Issue – 04, December, 2018.
4. प्रजापति, जय प्रकाश 2017 लघु उद्योग और वस्तु एवं सेवा कर : सम्भावनाएं एवं चुनौतियां. JMME Volume – 07, Issue – 04, October 2017.
5. बसंत गोपाल, आर. 2011 भारत में जीएसटी अप्रत्यक्ष कर प्रणाली में एक छलांग, ' IJTEM, Volume – 02, Issue – 02, April 2011.
6. कुमार, नितिन. 2014, वस्तु एवं सेवा कर आगे की ओर उन्मुख, GJMS, Volume – 03, Issue, May, 2014
7. Mawuli, Agogo. 2014, Goods and Service Tax – An Appraisal, paper presented at The PNG Taxation Research and Review Symposium, Holiday Inn Port Moresby, 29-30.
8. www.Jagatkranti.co.in
9. www.pib.gov.in
10. www.egyankosh.ac.in
11. www.gstcounsil.gov.in
12. www.cbic.gov.in
13. www.indiabudget.gov.in
14. www.taxmann.com
15. www.niti.gov.in

ഓ★ൽ

जगदीशाभिमतापादानपञ्चम्यर्थविचारः

नीरजकुमारभार्गव*

जगदीशमते अपादाने समागतपञ्चमीविभक्तेः अपादनत्वमर्थो वर्तते। यतोहि अपादाने पञ्चमीविधायकं सूत्रं वर्तते अपादाने पञ्चमी इति। अत्र च सूत्रे जगदीशमते अपादाने, इत्यत्र भावप्रधाननिर्देशो वर्तते लाघवात्। तथा च सूत्रस्यार्थो भवति अपादानत्वे पञ्चमीविभक्तिः स्यादिति। तस्मादुक्तप्रामाण्यात् सिध्यति अपादानत्वं पञ्चमीविभक्तेरर्थः। अपादानत्वं च किमिति जिज्ञासायामाह जगदीशः

क्रियाधर्मिणि यः स्वार्थः पञ्चम्या विग्रहस्थया।
अनुभाव्यः कारकन्तदपादानत्वसंज्ञकम्[1]।।

अन्वयः— विग्रहस्थया पञ्चम्या यः स्वार्थः क्रियाधर्मिणि अनुभाव्यः तत् कारकम् अपादानत्वसंज्ञकम्।

अयं भावः— विग्रहपदस्यात्र वाक्यमर्थः, क्रियापदेन चात्र धात्वर्थव्यापारो विवक्षितः। तथा च वाक्यघटकीभूता या पञ्चमी विभक्तिः, तस्या यो हि अर्थः धात्वर्थव्यापारे विशेषणतया अन्वेति तत् अपादानकारकम् इत्युच्यते। तथा चोक्तं जगदीशेन क्रिया धात्वर्थः। तथा च फलितलक्षणमपि वदति ग्रन्थकारः— ''तथा च यद्धातूपस्थाप्ययादृशार्थे विग्रहवाक्यस्थपञ्चम्या य स्वार्थो अनुभावयितुं शक्यः स तद्धातूपस्थाप्यतादृशक्रियायामपादानत्वमुच्यते''[2]। यथा पर्णं वृक्षात् पतति इत्यत्र पञ्चम्या विभागोऽर्थः, तत्र विभागे प्रकृत्यर्थस्य वृक्षस्य निष्ठत्वसम्बन्धेनान्वयः। पतत्यर्थश्चात्र अधःसंयोगानुकूलव्यापारः, तत्र व्यापारे विभागस्य अनुकूलत्वसम्बन्धेनान्वयः, व्यापारस्य च तिबर्थकृतौ अनुकूलत्वसम्बन्धेनान्वयः, कृतेश्च प्रथमान्तार्थे आश्रयत्वसम्बन्धेनान्वयः, तथा चोक्तवाक्यात् वृक्षनिष्ठ विभागानुकूलाधः संयोगानुकूलव्यापारानुकूलकृतिमत्पर्णम् इति बोधो जायते। एवं चात्र पततिधातूपस्थाप्ये अधःसंयोगानुकूलव्यापारे वाक्यघटकीभूतवृक्षपदोत्तरपञ्चम्या यो हि विभागरूपः स्वार्थः स एव विशेषणतया अनुभावयितुं शक्यः, अतः स विभाग एव पततिधातूपस्थाप्यां व्यापाररूपक्रियां प्रति अपादानं वर्तते। तस्मादत्र विभाग एव अपादानकारकमिति भावः। तथा चोक्तं ग्रन्थकारेण— ''वृक्षात् पतति इत्यतो वृक्षावधिक विभागानुकूल पतनकर्तेत्यन्वयबुद्धौ धातूपस्थाप्यपतने पञ्चम्युपस्थाप्यो विभागः स्वानुकूलत्वसम्बन्धेन प्रकारः इति स एव तत्रापादानत्वम्''[3]। कृष्णकान्तीटीकाकारः प्राह प्रकृतकारिकानुसारमपादानलक्षणम् "तथा च कारकत्वे सति यद्धातूपस्थाप्ययादृशार्थधर्मिकान्वयबोधप्रकारो यः पञ्चम्यर्थः सः तद्धातूपस्थाप्यतादृशक्रियायामपादानत्वमिति भावः"[4]।

चैत्रः वृक्षात् पतति, इतिवत् चैत्रः स्वस्मात् पतति इत्यत्रापि स्वनिष्ठविभागजनकव्यापारानुकूलकृतिमान् चैत्रः, इति बोधस्यापि सम्भवेन चैत्रः स्वस्मात् पतति इति प्रयोगापत्तिः। स च प्रयोगो नेष्टः। अतः प्रोक्तप्रयोगवारणाय चैत्रः वृक्षात् पतति, इत्यादौ विभाग इव परसमवेतत्वमपि पञ्चमीवाच्यम् इति स्वीकार्यम्, किञ्च तस्य धात्वर्थव्यापारेऽपि अन्वयः स्वीकार्यः, तथा चोक्तवाक्यात् वृक्षनिष्ठविभागजनकवृक्षान्यसमवेतः यो हि अधःसंयोगानुकूलव्यापारः तदनुकूलकृतिमान् चैत्रः, इति बोधो जायते। तथा च नैव भवति चैत्रः स्वस्मात् पतति इति प्रयोगः, यतोहि तथा प्रयोगे सति स्वनिष्ठविभागजनकस्वान्यसमवेताधःसंयोगानुकूलव्यापारजनककृतिमान् चैत्रः, इति बोधः स्यात्, तच्च नैव सम्भवति। यतोहि स्वनिष्ठविभागजनको नह्यत्र स्वान्यसमवेतव्यापारः, अपितु स्वसमवेत एव। तस्मादत्र यथा विभागस्य धात्वर्थव्यापारेऽन्वयः, तथैव परसमवेतत्वस्यापि धात्वर्थव्यापारे वर्तते अन्वयः, तस्मादत्र विभाग इव परसमवेतत्वमपि अपादानकारकमिति, किञ्च तदपि विभाग इव पञ्चमीवाच्यम्। अतः कथं विभाग एव अपादानकारकमिति चेत् उच्यते न केवलं विभाग एव अपितु उभयमेव इति केचित्। तथा चाह जगदीशः— ''न च वृक्षादिव स्वस्मात् पतितश्चैत्र इत्यप्रयोगात् धात्वर्थान्वितं परसमवेतत्वमपि तत्र पञ्चम्यर्थ इति तदप्यपादानत्वं स्यात्, इष्टत्वात्''[5]।

केचित्तु— केवलं विभाग एव अपादानं तदेव च पञ्चम्यर्थो न तु परसमवेतत्वमपि। तथा सति खगः द्रव्यात् पतति, इति प्रयोगानापत्तेः। तथा स्वीकारे निरूक्तवाक्यस्यार्थः स्यात् द्रव्यनिष्ठविभागजनकः द्रव्यान्यसमवेतः यो हि अधःसंयोगानुकूलव्यापारः तदनुकूलकृतिमान् खगः, इति, इदञ्चायोग्यम्, द्रव्यान्यसमवेतस्य पतनस्याप्रसिद्धेः। अतः केवलं विभाग एवापादानं तदेव च पञ्चम्यर्थ इति भावः। तर्हि चैत्र स्वस्मात् पतति इति प्रयोगः कुतो नेति चेदुच्यते— विभागे प्रकृत्यर्थस्य नहि निष्ठत्वसम्बन्धेनान्वयो भवति किन्तु स्वावधिकत्वसम्बन्धेन, पञ्चम्यर्थस्य

*** संस्कृतदर्शनविभागः, रामकृष्णमिशन्विवेकानन्दशैक्षणिकशोधसंस्थानम्, वेलुडमठः हावडा।**

विभागस्यापि व्यापारे नहि केवलम् अनुकूलत्वसम्बन्धेनान्वयो भवति अपितु अनुकूलत्वसामानाधिकरण्योभयसम्बन्धेन अन्वयो भवति। तथा च चैत्रः वृक्षात् पतति इति वाक्यस्य वृक्षावधिकविभागजनकः वृक्षावधिकविभागसमानाधिकरणः यो हि व्यापारः तदनुकूलकृतिमान् चैत्रः, इति। तथा च नैव सम्भवति चैत्रः स्वस्मात् पतति, इति वाक्यम्। यतोहि– निरूक्तवाक्यस्यार्थः भविष्यति स्वावधिकविभागजनकः स्वावधिकविभागसमानाधिकरणश्च यो हि व्यापारः तदनुकूलकृतिमान् चैत्र इति। तच्च नैव सम्भवति स्वावधिकविभागजनकस्य स्वावधिकविभागसमानाधिकरणस्य व्यापारस्य स्वस्मिन् असत्वात्। तथा चोक्तं जगदीशेन– ''वस्तुतः परसमवेतत्वं न पञ्चम्यर्थः, तथा सति द्रव्यान्यसमवेतस्य पतनस्याप्रसिद्धया द्रव्यात् पतति खगः इत्यादेरयोग्यतापत्तेः, परन्तु स्वावधिकत्वसम्बन्धेन प्रकृत्यर्थान्वितस्य पञ्चम्यर्थविभागस्य सामानाधिकरण्यानुकूल–त्वोभयसम्बन्धेन धात्वर्थे पतनेऽन्वयस्य व्युत्पन्नत्वान्न तादृशप्रयोगः, चैत्रावधिकत्वविशिष्टविभागाधिकरणनिष्ठं यच्चैत्रविभागानुकूलं पतनं तस्य चैत्रे बाधात्, स्वावधिकत्वविशिष्टविभागस्य स्वस्मिन्नसत्वादिति युक्तमुत्पश्यामः''[6]। तस्मान्न वाच्यं परसमवेतत्वमिति भावः।

एवमेव वृक्षात् विभजते खगः इत्यत्र अवधित्वम् अवधित्वनिरूपकत्वं वा पञ्चमीविभक्तेरर्थः, विभागजनकव्यापारः विभजतेरर्थः, तिङर्थः कृतिः। तत्र पञ्चम्यर्थे अवधित्वे निष्ठत्वसम्बन्धेनान्वयः, अवधित्वस्य च धात्वर्थे विभागजनकव्यापारे निरूपकत्वसम्बन्धेनान्वयः, धात्वर्थव्यापारस्य धात्वर्थे कृतौ जनकत्वसम्बन्धेनान्वयः, कृतेश्च प्रथमान्तार्थे आश्रयत्वसम्बन्धेनान्वयः। ततश्च वृक्षात् विभजते खगः इत्यस्य वाक्यस्य वृक्षनिष्ठावधितानिरूपकविभागजनकव्यापारानुकूलकृतिमान् खगः इति बोधः। यथा अवधितानिरूपकत्वमर्थः, तदा प्रकृत्यर्थस्य वृक्षस्य पदार्थैकदेशभूतायाम् अवधितायां निष्ठत्वसम्बन्धेनान्वयः, अवधितानिरूपकत्वस्य स्वरूपसम्बन्धेन धात्वर्थे व्यापारे अन्वयः, व्यापारस्य कृतौ जनकत्वसम्बन्धेनान्वयः। ततश्च प्रकृतवाक्यात् वृक्षनिष्ठावधितानिरूपकविभागजनकव्यापारानुकूलकृतिमान् खगः इति बोधः। एवञ्च वृक्षाद्विभजते खगः इत्यत्र अवधित्वम्, अवधित्वनिरूपकत्वं वा पञ्चम्यर्थः, स च पञ्चम्यर्थः अपादानं कारकमिति भावः। तथा चाह जगदीशभट्टाचार्यः वृक्षाद्विभजते खग इत्यत्रावधित्वमवधित्वनिरूपकत्वं वा धात्वर्थेऽन्वितं पञ्चम्या प्रतिपाद्यते, तेन वृक्षनिष्ठावधिताकविभागवान् खग इत्याकारकस्तत्र बोधः। तथा चोक्तं जगदीशभट्टाचार्यैः "वृक्षाद्विभजते खग इत्यत्रावधित्वमवधिनिरूपकत्वं वा धात्वर्थेऽन्वितं पञ्चम्या प्रतिपाद्यते, तेन वृक्षनिष्ठावधिताकविभागवान् खग इत्याकारकस्तत्र बोधः"[7]।

व्याघ्रात् बिभेति, व्याघ्रात् त्रस्यति इत्यादौ हेतुत्वं पञ्चम्यर्थः, बिभेतिधातोः भयमर्थः, त्रस्यतिधातोश्च भयाभावार्थः। तत्र पञ्चम्यर्थे हेतुत्वे प्रकृत्यर्थस्य व्याघ्रस्य निष्ठत्वसम्बन्धेनान्वयः, हेतुत्वस्य च निरूपकत्वसम्बन्धेन बिभेत्यर्थे भये त्रस्यत्यर्थस्य भयाभावस्यैकदेशे भये च निरूपकत्वसम्बन्धेनान्वयः। ततश्च व्याघ्रात् बिभेति इत्यस्मात् वाक्यात् व्याघ्रहेतुकभयाश्रयः इत्यर्थः, व्याघ्रात् त्रस्यति इत्यस्मात् वाक्यात् व्याघ्रहेतुकभयाभावाश्रयः इत्यर्थो भवति। अथवा व्याघ्रात् बिभेति, व्याघ्रात् त्रस्यति इत्यादौ जन्यत्वं पञ्चम्यर्थः, तत्र पञ्चम्यर्थे जन्यत्वे व्याघ्रस्य निरूपकत्वसम्बन्धेनान्वयः, जन्यत्वस्य च बिभेत्यर्थे भये त्रस्यत्यर्थे भयाभावैकदेशे भये च स्वरूपसम्बन्धेनान्वयः। ततश्च व्याघ्रात् बिभेति इत्यतः व्याघ्रजन्यभयाश्रयः इत्यर्थः, व्याघ्रात् त्रस्यति इत्यतः व्याघ्रजन्यभयाभावाश्रयः इत्यर्थश्च भवति। एवञ्च व्याघ्रात् बिभेति व्याघ्रात् त्रस्यति इत्यादौ हेतुत्वं जन्यत्वं वा अपादानं कारकमिति भावः। तथा चाहुः जगदीशभट्टाचार्याः "व्याघ्राद् बिभेति त्रस्यतीत्यादौ हेतुत्वं जन्यत्वं वा पञ्चम्यर्थः"[8]।

पापान्निवर्त्तते, अधर्माद् विरमति इत्यादौ पञ्चम्याः द्वेषः विषयत्वं वार्थः। तत्र यदा द्वेषः पञ्चम्यर्थः, तदा प्रकृत्यर्थस्य पापस्य अधर्मस्य वा विषयत्वसम्बन्धेन अन्वयः, पञ्चम्यर्थस्य द्वेषस्य च धात्वर्थे निवृत्तौ जन्यत्वसम्बन्धेन अन्वयः, ततश्च पापान्निवर्त्तते इत्यस्मात् वाक्यात् पापविषयकद्वेषजन्यनिवृत्तिमान् इत्यर्थः, अधर्मात् विरमति इत्यतश्च अधर्मविषयकद्वेषजन्यनिवृत्तिमान् इत्यर्थश्च भवति। यदा विषयत्वं पञ्चम्यर्थः, तदा प्रकृत्यर्थस्य पापस्य अधर्मस्य च पञ्चम्यर्थे विषयत्वे निष्ठत्वसम्बन्धेनान्वयः, विषयत्वस्य धात्वर्थे अन्वयः। ततश्च पापान्निवर्त्तते इत्यतः पापविषयकनिवृत्तिमान्, अधर्माद्विरमति इत्यतश्च अधर्मविषयकनिवृत्तिमान् इत्यर्थश्च भवति। तस्मादत्र द्वेषः विषयत्वं वा अपादानत्वमिति भावः। तथा चोचुः जगदीशभट्टाचार्याः "पापान्निवर्त्तते अधर्माद्विरमतीत्यादौ पञ्चम्या द्वेषोऽर्थः, तत्र प्रकृत्यर्थस्य विषयत्वेन तस्य च निवृत्तिरूपे धात्वर्थे जन्यत्वेनान्वयः, तेन पापगोचरद्वेषजन्यनिवृत्तिमानित्येवं तत्र बोधः। तत्र विषयत्वं पञ्चम्यर्थः, तथा च पापगोचरनिवृत्तिमानित्यर्थ इत्यन्ये"[9]।

पापाज्जुगुप्सते इत्यत्र गुपिधातोः गर्हापूर्वकनिवृत्तिरर्थः, पञ्चमीविभक्तेः विषयत्वमर्थः, तस्य पञ्चम्यर्थस्य विषयत्वस्य धात्वर्थभूतायां गर्हायां निवृत्तौ चान्वयः। ततश्च प्रकृतवाक्यात् पापविषयकगर्हापूर्वकपापविषयकनिवृत्तिमान्

इत्याकारको बोधो भवति। एवञ्च प्रकृतस्थले पञ्चमीविभक्तेरर्थः विषयत्वमेव अपादानं कारकमिति भावः। तथा चाह जगदीशः "पापाज्जुगुप्सते इत्यत्र गर्हापूर्वकनिवृत्तिर्गुपधातोरर्थः, सुपो विषयत्वं, तच्च गर्हानिवृत्त्योः क्रमेणान्वयि तथा च पापविषयकगर्हाप्रयुक्तपापगोचरनिवृत्तिमानित्याकारकबोधः"[10]।

वल्मीकाग्रात् प्रभवति इत्यत्र धातोरर्थः प्राक्प्रकाशनम्, तत्र पञ्चम्याः अधिकरणत्वम् आधेयत्वं वा अर्थः। तत्र यदा अधिकरणत्वमर्थस्तदा तस्मिन् प्रत्ययार्थे अधिकरणत्वे प्रकृत्यर्थस्य वल्मीकाग्रस्य निष्ठत्वसम्बन्धेनान्वयः, अधिकरणत्वस्य च निरूपकत्वसम्बन्धेन धात्वर्थे प्राक्प्रकाशने अन्वयः एवञ्च प्रकृतवाक्यस्य वल्मीकाग्रनिष्ठाधिकरणतानिरूपकप्रथमप्रकाशनवदाखण्डलस्य धनुःखण्डमित्याकारको बोधः। यथा च आधेयत्वमर्थः तदा तस्मिन् प्रत्ययार्थे आधेयत्वे प्रकृत्यर्थस्य वल्मीकाग्रस्य निरूपितत्वसम्बन्धेनान्वयः, आधेयत्वस्य च स्वरूपसम्बन्धेन प्रथमप्रकाशने अन्वयः। ततश्च प्रकृतवाक्यस्य वल्मीकाग्रनिरूपिताधेयतावत्प्रथमप्रकाशनवदाखण्डलस्य धनुःखण्डमित्याकारको बोधः। एवञ्च वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्येत्यत्र पञ्चम्याः अधिकरणत्वम् आधेयत्वं वा प्रोच्यते। तस्मात् तदेवात्र अपादानत्वमिति। तथा चाहुः जगदीशभट्टाः "वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्येत्यत्र धातोरर्थः प्राक्प्रकाशनम्, तत्र पञ्चम्या अधिकरणत्वमाधेयत्वं वा प्रत्याय्यते, यत्र प्रकाशनं प्रभुव इति सूत्रेणाधिकरणस्यैवापादानत्वोपदेशात्"[11]।

धर्मात् उत्पद्यते सुखम् इत्यादौ प्रयोज्यत्वं पञ्चम्यर्थः, धातोः प्रागभावः इत्यर्थः। ततश्च पञ्चम्यर्थे प्रयोज्यत्वे प्रकृत्यर्थस्य धर्मस्य निरूपितत्वसम्बन्धेनान्वयः, प्रयोज्यत्वस्य प्रागभावे स्वरूपसम्बन्धेनान्वयः, तेन प्रकृतवाक्यस्य धर्मनिरूपितप्रयोज्यतावत्प्रागभावप्रतियोगित्ववत्सुखमिति बोधः। तस्मादत्र जन्यत्वमेव अपादानं कारकमिति बोध्यम्। तथा चाह जगदीशः "धर्मादुत्पद्यते सुखम्, दण्डात् जायते घटः इत्यादौ धातुना स्वाधिकरणसमयध्वंसानधिकरणसमयसम्बन्धरूपस्तत्तत्समयवृत्तिध्वंस–प्रतियोगिसमयावृत्तित्वे सति तत्तत्समयसम्बन्धरूप एव वा उत्पादः प्रत्याय्यते, पञ्चम्या च तन्निष्ठं जन्यत्वम्, तथा च धर्मजन्यो यः स्वाधिकरणसमयसम्बन्धस्तद्वत् सुखम् इत्याकारस्तत्र बोधः"[12]।

कूपादन्धं वारयति, विषाद् बालं निवारयति इत्यादौ कूपादिप्रकारकत्वं प्रतिपाद्यते। तस्मात्तदेवात्र अपादानमिति भावः। तथा चाह जगदीशः "कूपादन्धं वारयति, विषाद् बालं निवारयति इत्यादौ च क्रियाधर्मिकनिवृत्त्यनुकूलव्यापारो वारणम्, तन्निविष्टनिवृत्तौ पञ्चम्या कूपादिप्रकारकत्वम्, द्वितीयया चान्धादिनिष्ठत्वं प्रत्याय्यते"[13]।

निष्कर्षः — जगदीशमते पञ्चमीवाच्यमपादानत्वं भिन्नं भिन्नं विद्यते। यथा पर्वतात् पतति इत्यत्र पञ्चमीवाच्यः विभाग एव अपादानं कारकम्। वृक्षात् विभजते इत्यत्र पञ्चमीवाच्यम् अवधित्वम् अवधिनिरूपकत्वं वा अपादानं कारकम्।

संन्दर्भ–सूची :–

1. सटीकशब्दशक्तिप्रकाशिकापत्रसंख्या 297 / प्रकाशनम्–2007 / प्रकाशकः–चौखम्बाप्रकाशनम्, वाराणसी, उत्तरप्रदेशः।
2. वही, पत्रसंख्या 297।
3. वही, पत्रसंख्या 298।
4. वहीं।
5. वहीं।
6. वहीं।
7. वही, पत्रसंख्या 300ः।
8. वहीं।
9. वही, पत्रसंख्या 301।
10. वहीं।
11. वही, पत्रसंख्या 302।
12. वहीं।
13. वही, पत्रसंख्या 304।

✱

The Crisis of Single-Idea Criticism : Towards a Multi-Dimensional Framework for Literary Evaluation

Maitray Kaushik*

Abstract : This paper critiques the dominance of single-idea methods in contemporary literary studies and argues for a plural, multi-dimensional approach to interpretation. Drawing on theorists such as Rita Felski, Jonathan Culler, Toril Moi, and Wai Chee Dimock, I propose that criticism is a creative and dialogic act that cannot be contained within one theoretical framework. Through an examination of institutional forces, disciplinary habits, and the ethical demands of reading, the paper shows how monologic methods restrict literary understanding. Engaging thinkers like Edward Said, Dipesh Chakrabarty, and Saidiya Hartman, I argue that methodological pluralism offers a more rigorous, responsible, and ethically sensitive way to approach texts shaped by history, trauma, and cultural complexity.

Introduction : Over the years, I have become increasingly aware of a persistent narrowing within literary studies a tendency for criticism to become dependent on a single dominant method. Despite the field's self-image as theoretically sophisticated and interpretively flexible, I have often witnessed critics align themselves almost exclusively with one model of reading: Marxist critique, postcolonial theory, psychoanalysis, deconstruction, or feminist criticism. Each of these frameworks has contributed profoundly to the discipline, yet their institutionalization has produced an unintended rigidity. Critics frequently approach texts not with genuine openness but with a predetermined conceptual apparatus already in hand. It is as if the meaning of the work has been decided in advance, before analysis has even begun.

Rita Felski describes this phenomenon as the "methodological overconfidence" that characterizes much of contemporary critique (Felski, ***The Limits of Critique*** 1–3). Such overconfidence, as she argues, arises from the assumption that a theoretical model carries a kind of epistemic superiority—that it alone can reveal what literature "really" does. I recognize in her critique aspects of my own earlier approach, when I read texts as if their meanings were latent and waiting to be unlocked by the proper theoretical key. Jonathan Culler notes that criticism "constitutes what it interprets," suggesting that reading is not merely discovery but production (Culler 4). This insight forced me to acknowledge that every critical act is creative, shaped by the frameworks, expectations, and imaginative energies of the critic. If literature is plural—polyvocal, historically layered, aesthetically dynamic, ethically demanding, then criticism cannot remain monologic. A single-idea method invariably obscures as much as it illuminates. My purpose in this article is to argue for methodological pluralism: not an unstructured eclecticism, but a disciplined and reflective openness to multiple approaches. I argue that pluralism is not only intellectually necessary but ethically imperative, especially when reading texts rooted in trauma, history, and cultural conflict.

Criticism as Creation, Not Mere Judgment : My shift toward pluralism began with an altered understanding of what criticism is. I no longer view interpretation as mere evaluation or judgment. Instead, I see it as a creative, world-constructing act. Culler's point that criticism actively shapes what it perceives made me realise that interpretive frameworks are generative forces, not neutral

---

***Independent Researcher, U220, Shakarpur Block U, 110092, Delhi.**

tools. When I bring a theoretical tradition to a text, I create a new relation between reader and work, foregrounding some dimensions while backgrounding others. Toril Moi's critique of theoretical orthodoxy also shaped my thinking. In her essay "The Adventure of Reading," Moi argues that theory too often polices interpretation rather than enabling it (Moi 180–82). For her, genuine reading requires curiosity and vulnerability, not methodological rigidity. Reading this, I recognised how often I had allowed theoretical allegiance to dictate what counted as legitimate meaning.

Mikhail Bakhtin's notion of dialogism further deepened my understanding of criticism as creation. For Bakhtin, meaning emerges from interaction among multiple voices and contexts (Bakhtin 272–73). Literature is inherently dialogic; no single perspective can exhaust its possibilities. A critic who approaches literature with only one conceptual tool inevitably imposes a monologic structure on a polyphonic object. Wai Chee Dimock offers an even more radical challenge to rigidity in her essay "Weak Theory." Dimock advocates for interpretive flexibility that crosses disciplinary, temporal, and geographic boundaries (Dimock 733–35). Her call for a nomadic, relational practice of reading opened new possibilities for me: interpretation need not be a narrow, vertical descent into a single paradigm—it can be lateral, expansive, and exploratory.

To embrace criticism as creation is to acknowledge that method cannot be predetermined by disciplinary habit. Instead, the method must emerge from the demands of the text itself. This recognition prepared the ground for my rejection of single-idea criticism.

How Single-Idea Criticism Became Entrenched : Understanding the prevalence of methodological rigidity requires examining not just theory but the institutional structures of literary studies. Gerald Graff's ***Professing Literature*** demonstrates how academic departments fractured into theoretical camps during the latter half of the twentieth century, each with its preferred vocabulary and interpretive assumptions (Graff 212–15). Graduate students often learned frameworks as ideological positions rather than tools, producing generations of critics who internalized methodological loyalty as scholarly identity.

Another influential factor is professional publication. Journals often favor predictable forms of argument rooted in familiar theoretical idioms. As David Scott notes in ***Conscripts of Modernity***, intellectual traditions can harden into disciplinary common sense, not because they remain analytically fresh but because they are institutionally rewarded (Scott 7–10). I have seen this dynamic repeatedly: critics learn which gestures are publishable, which citations signal credibility, and which narratives conform to established intellectual fashions.

Pierre Bourdieu's concept of ***habitus*** explains part of the psychological force behind these patterns. Habitus naturalizes certain dispositions, making their assumptions feel self-evident while rendering alternatives nearly unthinkable (Bourdieu 53–55). Once a critic becomes fluent in the vocabulary of a single framework, alternative methods may feel awkward or illegitimate. Finally, major critical traditions—Marxism, postcolonial theory, feminist criticism—emerged from ethical and political urgencies, which gave their approaches tremendous authority. Yet even Gayatri Spivak has warned that politically necessary methods can become doctrinal, claiming a monopoly on truth (Spivak 284–85). I agree with Spivak that the danger lies not in the theories themselves but in their transformation into unquestioned orthodoxies. Recognizing these structural and psychological forces helped me understand not only why single-idea criticism took hold but why it remains difficult to challenge within the academy.

Why Methodological Pluralism Matters : My commitment to pluralism began as a practical necessity. The texts I studied, novels dealing with migration, caste trauma, ecological precarity, or

historical violence, simply did not fit within one framework. Postcolonial theory illuminated their geopolitical dynamics but said little about their narrative experimentation. Trauma theory explained its structures of memory but overlooked its political contexts. No single lens could account for their multi-layered complexity.

Dimock's "weak theory" helped me understand why: literature is always embedded in multiple temporal, ethical, and institutional networks (Dimock 739). A method that refuses to move across boundaries inevitably distorts such texts. Leah Price's work in book history strengthened this insight. In "Introduction: Reading Matter," Price emphasizes that reading is a social and material activity, shaped by institutions, circulation, and use (Price 9–10). Her argument taught me that literary meaning resides not only in formal structures but in the conditions under which texts are produced and read. Bruno Latour's "Why Has Critique Run Out of Steam?" offers a powerful parallel diagnosis. Latour argues that critique becomes sterile when it becomes a reflex rather than an inquiry (Latour 232–35). His call for a renewed "realist attitude" convinced me that criticism must begin with what the text demands, not with what our methods prescribe.

Pluralism matters because it allows the critic to respond to literature in its full richness. It prevents interpretive violence—the reduction of complexity to a single conceptual scheme. It also encourages intellectual humility. If no method can claim total explanatory power, then the critic must remain open to revision, surprise, and contradiction.

Pluralism as Rigorous, Not Loose : A common objection to pluralism is that it risks interpretive looseness. But I have found that pluralism demands ***more***rigor, not less. When I commit to using multiple methods, I must justify each choice. Why this framework? What does it illuminate? What does it obscure? Amanda Anderson argues for precisely this kind of self-aware scholarship. In ***The Way We Argue Now***, she insists that criticism must cultivate reflective distance from its own methodological assumptions (Anderson 5–8). Her work helped me understand that pluralism is incompatible with laziness; it requires constant self-interrogation.

David Herman's ***Basic Elements of Narrative*** offers an excellent example of rigorous interdisciplinarity. Herman draws on cognitive science, linguistics, and narratology, but always with explicit methodological justification (Herman 3–7). His approach demonstrates that multiple frameworks can be integrated coherently, provided the critic is transparent about the purpose and limits of each.

Toril Moi similarly argues that true rigor involves humility, an openness to being wrong and a willingness to rethink one's premises (Moi 183–85). This humility is central to pluralist criticism. Instead of clinging to one interpretive authority, I must negotiate among several, aware that each reveals only a part of the text. Pluralism is not eclecticism. It is disciplined responsiveness to complexity. It requires coherence, transparency, and thoughtful reasoning. In my own practice, pluralism has made me a slower but far more attentive reader. It demands a level of accountability that single-idea criticism often avoids.

The Ethical Stakes of Pluralism : My move toward pluralism was not only intellectual but ethical. Literature frequently emerges from conditions of injustice, trauma, and struggle. When I read such texts reductively through one lens alone, I risk doing ethical harm by distorting their complexity. Martha Nussbaum argues in ***Not for Profit*** that the humanities nurture the capacities of empathy and critical imagination (Nussbaum 23). Her work helped me see that ethical reading requires openness, not doctrinal certainty. A single-idea method often constrains rather than enables ethical engagement. Edward Said's ***The World, the Text, and the Critic*** reinforces this

idea. Said argues that criticism must remain "worldly"—attentive to the histories and materialities that shape literature (Said 33–35). A monologic method can isolate a text from its world. Pluralism restores the critic's obligation to those worlds by insisting that interpretation remain open to multiple dimensions.

Dipesh Chakrabarty further argues against what he calls "hyperrationality"—the drive to reduce complex cultural phenomena to one explanatory model (Chakrabarty 43–46). His critique helped me recognise that ethical reading requires intellectual humility.

Saidiya Hartman's ***Lose Your Mother*** offers a powerful model of this ethical sensitivity. Hartman reflects on the risks of appropriating traumatic histories through rigid theoretical structures (Hartman 8–12). Her work taught me that methodological flexibility is essential when dealing with narratives of suffering. Pluralism, in this sense, is an ethical stance. It resists the temptation to dominate the text with a single method. It encourages respect for multiplicity, vulnerability, and the autonomy of literature.

Conclusion : My argument rests on a simple conviction: because literature is plural, criticism must be plural. The dominance of single-idea methods has constrained the field, obscuring the complexity of literary works and limiting our intellectual imagination. Methodological pluralism, disciplined, reflective, and ethically attuned, offers an alternative model. It restores criticism to what it should be: a creative, dialogic, and responsive encounter between the critic and the text.

Pluralism is not a retreat from rigor but its renewal. It demands accountability, coherence, and humility. It enables the critic to acknowledge the limits of any one framework and to engage literature in its full richness. To read plurally is to honor the multiplicity of human experience. It is to accept that literature, like life, refuses to be contained by a single idea. Methodological pluralism, therefore, is not merely a strategy—it is an orientation, a way of thinking, and in many ways, a way of being.

References :-

1. Anderson, Amanda. ***The Way We Argue Now: A Study in the Cultures of Theory***. Princeton UP, 2006.
2. Bakhtin, Mikhail. ***The Dialogic Imagination***. Translated by Caryl Emerson and Michael Holquist, U of Texas P, 1981.
3. Bourdieu, Pierre. ***The Logic of Practice***. Stanford UP, 1990.
4. Chakrabarty, Dipesh. ***Provincializing Europe: Postcolonial Thought and Historical Difference***. Princeton UP, 2000.
5. Culler, Jonathan. ***Literary Theory: A Very Short Introduction***. Oxford UP, 1997.
6. Dimock, Wai Chee. "Weak Theory: Henry James, Colm Tóibín, and W. B. Yeats." ***Critical Inquiry***, vol. 39, no. 4, 2013, pp. 732–753.
7. Felski, Rita. ***The Limits of Critique***. U of Chicago P, 2015.
8. Graff, Gerald. ***Professing Literature: An Institutional History***. U of Chicago P, 2007.
9. Hartman, Saidiya. ***Lose Your Mother: A Journey Along the Atlantic Slave Route***. Farrar, Straus and Giroux, 2007.
10. Herman, David. ***Basic Elements of Narrative***. Wiley-Blackwell, 2009.
11. Hirsch, Marianne. ***Family Frames: Photography, Narrative, and Postmemory***. Harvard UP, 1997.
12. Latour, Bruno. "Why Has Critique Run Out of Steam?" ***Critical Inquiry***, vol. 30, no. 2, 2004, pp. 225–248.
13. Moi, Toril. "The Adventure of Reading." ***New Literary History***, vol. 47, no. 2, 2017, pp. 179–205.
14. Nussbaum, Martha C. ***Not for Profit: Why Democracy Needs the Humanities***. Princeton UP, 2010.
15. Price, Leah. "Introduction: Reading Matter." ***PMLA***, vol. 121, no. 1, 2006, pp. 9–16.
16. Said, Edward W. ***The World, the Text, and the Critic***. Harvard UP, 1983.
17. Scott, David. ***Conscripts of Modernity: The Tragedy of Colonial Enlightenment***. Duke UP, 2004.
18. Spivak, Gayatri Chakravorty. "Can the Subaltern Speak?" ***Marxism and the Interpretation of Culture***, edited by Cary Nelson and Lawrence Grossberg, U of Illinois P, 1988, pp. 271–313.

ᘓ★ᘐ

Uneven Tourism Development in Rajasthan's Kota Division : Special reference to Baran District

Diksha Saini*

Dr. Anil Kumar Pareek**

Abstract :- Tourism has emerged as an important driver of regional development in Rajasthan, yet its growth remains spatially uneven. Kota Division in south-eastern Rajasthan—comprising Kota, Bundi, Baran and Jhalawar—possesses rich natural, cultural and religious resources, but tourism flows are highly concentrated in Kota, Bundi and Jhalawar, while Baran continues to lag behind. Using district-wise tourism statistics for 2010–2024 and administrative documents of the Rajasthan Tourism Department, this paper examines the magnitude and causes of Baran's relative underdevelopment within Kota Division. The analysis combines trends in domestic and foreign tourist arrivals with a qualitative review of tourism governance structures, including the role of regional and district tourism offices, festival policies and eco-tourism initiatives.

Findings show that Kota Division's share in Rajasthan's total tourist arrivals remains around 1–2 per cent, with foreign arrivals heavily concentrated in Bundi and Kota while domestic visits in Kota and Jhalawar; Baran's contribution is negligible, also separate records for Baran were absent until 2022, indicating long-term marginality in official tourism statistics.

Governance analysis reveals structural disadvantages for Baran: the district tourism office is managed from Jhalawar, major state-sponsored fairs and festivals are concentrated in Kota, Bundi and Jhalawar, and Baran is weakly integrated into promoted tourism circuits, despite its historical, religious and natural sites and its location along the Chambal eco-tourism corridor.

The paper argues that Baran's tourism underdevelopment is less a result of resource scarcity and more a consequence of limited administrative presence, weak branding and inadequate infrastructure investment. It concludes with policy recommendations for strengthening district-level tourism governance, expanding event-based and eco-tourism initiatives in Baran, and improving data systems to support more balanced and sustainable tourism development in Kota Division.

Keywords: Kota Division; Baran district; regional tourism disparities; tourism governance; Rajasthan; eco-tourism; marginalisation; India.

Introduction :- Tourism is widely recognised as a strategic sector for job creation, income generation and regional development, especially in emerging economies. In India, state governments increasingly position tourism as a vehicle for inclusive growth, infrastructure development and heritage conservation. Rajasthan, with its forts, palaces, deserts and living cultural traditions, has become one of the country's leading tourism destinations. However, tourism growth within the state is geographically uneven; iconic destinations such as Jaipur, Udaipur and Jaisalmer attract a large share of visitors, while several interior regions remain under-visited.

Kota Division in south-eastern Rajasthan—historically known as the Hadoti region—offers a particularly instructive case. The division comprises four districts: Kota, Bundi, Baran and Jhalawar, covering around 24,204 sq km (7.07 per cent of the state's area), irrigated by the Chambal, KaliSindh, Parvati, Ahu and Neemach rivers and endowed with forests, waterfalls, wildlife sanctuaries and important religious and heritage sites.

*** Research Scholar, Public Administration, University of Kota, Kota, Rajasthan, India**
**** Professor, Public Administration, Govt. Arts College Kota, Rajasthan, India.**

While Kota and Bundi have developed recognisable tourism profiles—educational tourism, riverfront attractions, major fairs and heritage architecture—Baran remains relatively invisible in the tourism map despite its natural and religious assets and its strategic location along emerging eco-tourism circuits.

District-level tourism statistics between 2010 and 2024 show a strong concentration of domestic tourist visits in Kota & Jhalawar and of foreign tourist arrivals in Bundi, with Baran contributing almost nothing to foreign arrivals and only modestly to domestic tourism even in recent years. In addition, Baran lacked separately reported tourist arrival data until 2021, suggesting long-term marginalisation in data systems and planning. On the governance side, Kota Division's tourism administration is structured around a regional tourism office in Kota and district tourism offices, but Baran's tourism office functions through the tourist reception centre at Jhalawar rather than a fully developed district-level setup, in contrast to other districts of Kota Division.

Against this backdrop, this paper addresses the central question: **Why does Baran lag behind other districts of Kota Division in tourism development, despite comparable resource potential?**

The specific objectives are:

- To compare trends in domestic and foreign tourist arrivals across the four districts of Kota Division from 2010 to 2024.
- To examine the tourism governance structure of Kota Division, with particular attention to Baran district.
- To identify key administrative, infrastructural and promotional factors contributing to Baran's relative tourism underdevelopment.
- To propose policy measures for more balanced and sustainable tourism development in Kota Division.

The paper contributes to debates on intra-regional tourism inequalities and the role of sub-national governance in shaping tourism outcomes in less-visited districts of India.

Results / Findings

1. Uneven Tourist Arrivals in Kota Division:

Year-wise details of domestic tourist travel (DTV) in Kota division from 2010 to 2024:

Domestic Tourists								
S.N.	Year	Total Domestic Tourists in Rajasthan	Kota Division				Total Domestic Tourists in Kota Division	% of Kota Division in Total Domestic Tourists of Raj.
			Kota	Bundi	Baran	Jhalawar		
1	2010	2,55,43,877	97,971	53,867	-	96,012	2,47,850	0.97
2	2011	2,71,37,323	69,640	58,001	-	88,805	2,16,446	0.80
3	2012	2,86,11,831	62,029	50,788	-	86,019	1,98,836	0.69
4	2013	3,02,98,150	63,015	49,434	-	88,974	2,01,423	0.66
5	2014	3,30,76,491	51,467	49,925	-	93,344	1,94,736	0.59
6	2015	3,51,87,573	90,598	54,574	-	92,426	2,37,598	0.68
7	2016	4,14,95,115	89,546	59,864	-	88,440	2,37,850	0.57
8	2017	4,59,16,573	2,02,298	65,021	-	1,03,102	3,70,421	0.81
9	2018	5,02,35,643	1,17,596	70,442	-	97,916	2,85,954	0.57
10	2019	5,22,20,431	1,28,119	70,946	-	89,939	2,89,004	0.55
11	2020	1,51,17,239	1,02,955	19,022	-	32,592	1,54,569	1.02
12	2021	2,19,88,734	1,89,953	19,377	-	46,316	2,55,646	1.16
13	2022	10,83,28,156	8,04,971	4,07,351	18,325	2,00,985	14,31,632	1.32
14	2023	17,90,51,925	9,42,403	6,19,783	22,070	2,03,952	17,88,208	1.00
15	2024	23,00,84,198	32,51,235	9,27,017	1,41,317	1,97,488	45,17,057	1.96

Year-wise details of Foreign Tourist Arrivals (FTAs) in Kota Division from 2010 to 2024:

Foreign Tourists								
S.N.	Year	Total Foreign Tourists in Rajasthan	Kota Division				Total Foreign Tourists in Kota Division	% of Kota Division in Total Foreign Tourists of Raj.
			Kota	Bundi	Baran	Jhalawar		
1	2010	12,78,523	3,450	16,188	-	215	19,853	1.55
2	2011	13,51,974	2,441	17,148	-	213	19,802	1.46
3	2012	14,51,370	1,881	16,523	-	121	18,525	1.28
4	2013	14,37,162	2,889	15,739	-	80	18,708	1.30
5	2014	15,25,574	3,516	15,063	-	108	18,687	1.22
6	2015	14,75,311	2,574	15,290	-	114	17,978	1.22
7	2016	15,13,729	1,778	15,420	-	130	17,328	1.14
8	2017	16,09,963	1,860	16,442	-	166	18,468	1.15
9	2018	17,54,348	1,889	16,534	-	68	18,491	1.05
10	2019	16,05,560	2,867	14,610	-	65	17,542	1.09
11	2020	4,46,457	721	4,186	-	13	4,920	1.10
12	2021	34,816	154	65	-	-	219	0.63
13	2022	3,96,684	659	2,379	24	21	3,083	0.78
14	2023	16,99,869	743	7,406	13	17	8,179	0.48
15	2024	20,72,407	1,376	39,210	16	105	40,707	1.96

State-level statistics for 2010–2024 show a steady increase in both domestic and foreign tourist arrivals in Rajasthan, followed by a sharp decline during the COVID-19 pandemic and rapid recovery after 2021. Within this trajectory, Kota Division's share remained modest—around 1–1.6 per cent of Rajasthan's foreign tourist arrivals and roughly 1–2 per cent of domestic tourist visits.

Within the division, the distribution is highly uneven:

- **Foreign tourists (FTA):** Bundi consistently attracts the majority of foreign visitors to the division, reflecting its established heritage reputation, while Kota and Jhalawar host comparatively smaller numbers. Baran recorded no separate FTA data between 2010 and 2021 and only very small figures thereafter, indicating near-absence of foreign tourism.
- **Domestic tourists (DTV):** Domestic tourism in Kota Division is dominated by Kota and Jhalawar districts, driven by their historical, educational, medical, industrial and commercial travel. Bundi shows moderate, steady flows due to heritage tourism, while Baran contributes minimally. For Baran, separate domestic tourism data appear only from 2022; although there is some growth by 2024, the district still accounts for a very small share of the division's total domestic visits.

Overall, the statistical profile confirms that Baran is structurally marginal in both foreign and domestic tourism within Kota Division.

2. Baran's Administrative Disadvantage:

Tourism governance in Kota Division is anchored by the regional tourism office located at Kota, which coordinates policy implementation across the four districts. Dedicated district tourism offices operate in Kota, Bundi and Jhalawar with functions including maintenance of monuments, management of tourist information centres, support for fairs and festivals, and promotion of homestay and community-based tourism.

In contrast, **Baran district tourism office is operated through the tourist reception centre at Jhalawar**, rather than a fully resourced independent office in Baran itself. This arrangement implies limited on-ground staffing, weaker local coordination, and reduced capacity for planning and marketing Baran's tourism products.

Tourist Facilitation / Information Centres in Kota Division:

District	Tourist Centres / Offices

Kota	Regional Tourism Office, Kota
	Tourist Reception Centre, Kota
	Tourist Information Centre, Kota
Bundi	Tourist Information Centre, Bundi
Jhalawar	Tourist Reception Centre, Hotel Chandrawati, Jhalawar

3. Spatial Concentration of Festivals and Events:

Government-supported fairs and cultural festivals play a central role in Rajasthan's tourism promotion. Within Kota Division, major events include the Kota Dussehra Mahotsav, Bundi Utsav and Jhalawar's Chandrabhaga Fair—all well-publicised, with significant administrative support and media visibility.

Baran, by contrast, hosts fewer large-scale state-sponsored events. The absence of prominent, annually recurring festivals with strong branding limits Baran's ability to attract tourists, particularly during peak seasons when other districts enjoy heightened visibility and additional visitor inflows.

Kota Division				
Year	**Kota**	**Bundi**	**Baran**	**Jhalawar**
2013-14	Dussehra Fair	Bundi Festival	NO	Chandrabhaga Fair
2014-15	Dussehra Fair	Kajli Teej	NO	Chandrabhaga Fair
	Dussehra Fair	Bundi Festival	NO	
2015-16	Dussehra Fair	Kajli Teej	NO	Chandrabhaga Fair
	Dussehra Fair	Bundi Festival	NO	
2016-17	Dussehra Fair	Kajli Teej	Dhol Fair (Cultural Programme)	Chandrabhaga Fair
	Dussehra Fair	Bundi Festival		
2017-18	Dussehra Fair	Kajli Teej	Dhol Fair (Cultural Programme)	Chandrabhaga Fair
	Dussehra Fair	Bundi Festival		
2018-19	Dussehra Fair	Kajli Teej	Dhol Fair (Cultural Programme)	Chandrabhaga Fair
	Dussehra Fair	Bundi Festival		
2019-20	Dussehra Fair	Bundi Festival	NO	Chandrabhaga Fair
2020-21	NO	NO	NO	NO
2021-22	NO	Bundi Festival	NO	NO
2022-23	NO	NO	NO	NO
2023-24	Dussehra Fair	Kajli Teej	NO	Chandrabhaga Fair
	Dussehra Fair	Bundi Festival		
2024-25	Dussehra Fair	Bundi Foundation Day	NO	Chandrabhaga Fair
	Dussehra Fair	Kajli Teej		
	Dussehra Fair	Bundi Festival		

4. Under-utilisation of Eco-tourism and Nature-based Assets:

Kota Division contains important eco-tourism resources, including national parks and wildlife sanctuaries like Mukundra Hills, Ramgarh Vishdhari and Jawahar Sagar, as well as the Chambal river's rich aquatic biodiversity. The Chambal Eco-Tourism Project, developed jointly by the Tourism and Forest Departments, highlights boat safaris, bird-watching and nature education, with tourist facilities and interpretation centres.

Although parts of Baran lie within this eco-tourism landscape, the project's visibility and infrastructure are more strongly associated with Kota and specific sanctuary zones; Baran's natural and Eco-tourism sites such as **Ramgarh Crater, Shergarh Sanctuary, Sorsan Wildlife Sanctuary, Kapildhara** etc are not yet integrated as flagship eco-tourism nodes, nor are they prominently featured in promoted circuits.

5. Weak Conservation and Low Visibility of Baran's Heritage and Religious Sites:

Although Baran district possesses several historically significant sites—such as **Shahabad Fort**, **Shergarh Fort**, **Kanya Dah–Vilasgarh**, and spiritual & religious locations like **Bhand Devara Temple, Sitabari, Bansthuni, Tapayon Ki Baghichi, Kakuni Temple Group** etc.—these assets remain **poorly conserved, weakly serviced, and largely invisible** within formal tourism circuits. Most sites suffer from inadequate infrastructure, limited accessibility, absence of interpretive signage, and lack of routine maintenance, which diminishes both visitor experience and heritage value. Unlike Kota and Bundi, where state-supported conservation, festival-based branding and guided tourism experiences have contributed to destination recognition, Baran's heritage locations receive minimal promotional attention and negligible administrative investment. As a result, despite their cultural depth and architectural significance, these sites fail to attract substantial tourist inflow or be positioned as flagship attractions within Rajasthan's tourism landscape. This systematic neglect reinforces Baran's marginal status in the division and prevents its heritage and religious assets from contributing meaningfully to regional tourism development.

Discussion: The findings suggest that Baran's tourism underdevelopment is not simply due to a lack of attractions but is closely linked to governance, infrastructure and branding deficits**.**

First, the near absence of Baran in tourism statistics until 2022 reflects a form of "data invisibility" that can reinforce planning neglect. If tourist flows are not measured separately, it becomes difficult to justify targeted investments or to monitor the impact of interventions.

Second, the governance structure creates asymmetries. Kota, Bundi and Jhalawar benefit from dedicated district tourism offices, RTDC properties, and close proximity to the regional office, which facilitates coordination with line departments and private stakeholders. Baran's administration, managed through Jhalawar, lacks comparable local presence, which likely constrains stakeholder engagement, product development and timely maintenance of sites and facilities.

Third, the concentration of high-profile festivals and events in Kota, Bundi and Jhalawar generates strong place branding and recurrent media coverage, which Baran lacks. Festivals serve as "temporal anchors" that structure tourist calendars; without them, Baran struggles to establish itself in tourists' mental maps, even within Rajasthan.

Finally, eco-tourism initiatives such as the Chambal project illustrate both opportunities and gaps. While they show that nature-based tourism can be developed in the division, Baran's sites remain on the periphery of these circuits, pointing to missed chances for community-based tourism, livelihood diversification and conservation-linked development.

Overall, Baran appears as a **peripheral district within a peripheral region**: Kota Division itself has a small share in Rajasthan's tourism economy, and within the division, Baran is even more marginal. Addressing this double periphery requires deliberate policy action, not just organic market growth.

Conclusion & Policy Implications :- This paper has analysed intra-regional disparities in tourism development within Rajasthan's Kota Division, focusing on the persistent lag of Baran district despite its natural and religious tourism potential. District-wise statistics from 2010–2024 confirm that Baran contributes negligibly to both foreign and domestic tourist arrivals and even lacked separate records for much of the period. Governance analysis shows that Baran is disadvantaged by weaker administrative presence, limited integration into tourism circuits and festivals, and under-utilisation of eco-tourism opportunities.

To address these issues, the study recommends the following policy measures:

1. **Strengthen district-level tourism governance in Baran:**
    - Establish a fully resourced district tourism office headquartered in Baran with dedicated staff and budget.

- Improve coordination with line departments (PWD, Forest, Archaeology, local bodies) to plan and maintain infrastructure and amenities at key sites.

2. **Develop and brand Baran-centric tourism products:**
   - Identify a set of flagship attractions (Historical and religious sites, forest landscapes) and develop them with basic infrastructure, signage and interpretation.
   - Introduce at least one district-level annual festival or cultural event with state support, linked to Baran's unique identity, and integrate it into Rajasthan's tourism calendar.
3. **Integrate Baran into regional circuits and eco-tourism initiatives:**
   - Explicitly include Baran nodes in the Hadoti tourism circuit and in the Chambal Eco-Tourism Project itineraries, with community-based homestays and guided nature trails.
   - Promote agro-tourism and village-based experiences leveraging the district's agricultural and tribal cultural assets.
4. **Improve data systems and monitoring:**
   - Ensure consistent, district-wise reporting of tourist arrivals for Baran across all categories.
   - Use this data to set targets, monitor performance and justify further investments.
5. **Enhance community participation and benefits:**
   - Engage local communities, SHGs and NGOs in tourism planning, guiding, craft promotion and environmental management to ensure that tourism benefits are widely shared and socially legitimate.

If implemented, these measures could help transform Baran from a marginal district into an emerging nature- and culture-based destination within Kota Division, contributing to a more balanced and sustainable pattern of tourism development in Rajasthan.

References :-

1. "Rajasthan Tourism Progress Reports" – 2010-2011 to 2024–25, Government of Rajasthan, Department of Tourism, Art and Culture, Jaipur.
2. "Rajasthan Tourism Policy – 2020", Government of Rajasthan, Department of Tourism, Art and Culture, Policy Document, Jaipur.
3. "India Tourism Statistics at a Glance 2023"-Ministry of Tourism, Government of India.
4. Rajasthan Tourism Development Corporation Limited (RTDC), "Annual Report 2024–25", Corporation Headquarters, Jaipur.
5. Tourism unit registration, plans and policy updates-https://www.tourism.rajasthan.gov.in
6. Rajasthan Legislative Assembly Records, Question-and-Answer Sessions on Tourism Policy and Schemes, Year 2023–24.
7. http://www.tourism.rajasthan.gov.in/circulars-and-policies.html
8. Rajasthan State Gazette Notifications, Tourism Department Orders & Circulars, 2019–2024, Jaipur.
9. ASI (Archaeological Survey of India). (2019). *List of Monuments of National Importance: Rajasthan Circle.* Government of India.
10. Ministry of Tourism, Government of India. (2020). *Incredible India Tourism Policy 2020*.
11. Ministry of Tourism. (2018). *Guidelines for Eco-Tourism in Forest and Wildlife Areas*. Government of India.
12. Forest Department, Government of Rajasthan. (2021). *Chambal Eco-Tourism Management Plan.*
13. Jain, S. (2018). Fort Architecture of South-Eastern Rajasthan: An Archaeological Perspective. *Journal of Indian History and Culture*, 24, 89–104.
14. Meena, R. (2021). Cultural Landscapes of Hadoti: A Study of Tribal and Rural Heritage. *South Asian Studies*, 37(1), 55–72.

😀★😀

Employability Gap Analysis Between Hotel Industry Expectations and Academic Deliveries with Reference to Ahmedabad-India

Satish Singh*

Charudutt Sharma**

Shashank Rajauria***

Abstract :- Employability gap analysis requires staffs and faculties responsiveness to deal with increasingly higher expectations and industry competitiveness. This study proposes an approach to simplify the gap between hotel industry expectations and academic deliveries of staffs and faculties of hotel management institutes by combining both live feedback and data analysis. Our approach was validated with internal and external data gathered from different 5-star hotels in Ahmedabad and hotel management institutes. The collected data was processed using data analytics for developing strategies that provides value for the industry by taking advantage of hoteliers and faculties. Such gap was evaluated by industry experts & faculties which provided positive feedback, highlighting in particular time saved in the employability gap analysis process.

Keywords: Faculties, Hotels, Institutes, Employability Gap, Students, India.

Introduction: There is a huge gap between hotel industry expectations and academic deliveries. The industry wants graduates to be readily employable at the work place having experienced academic learning. However, competencies require by hotel industry are not inculcated by course. Rapid expansion in the industry during the last decade of the new millennium translated into increased opportunities for hospitality and tourism programs graduates. Hence, the professional skills industry requirements must match the curriculum and teaching process to minimize the gap. Furthermore, education will only achieve its purpose when it produces graduates with the competencies the industry demands. Graduates become less relevant to the industry when there is a gap between the competencies required and those possessed, and vice versa.

The hospitality industry is one of the fastest-growing sectors globally, requiring a well-trained and competent workforce to meet its dynamic demands. In India, and particularly in Ahmedabad, the hotel industry has witnessed significant growth due to increasing tourism, business activities, and globalization. However, despite the rising number of hospitality graduates, a gap persists between the skills imparted by academic institutions and the expectations of employers in the hotel industry.

Literature review: In the study, **'Training Needs of the Hospitality Industry,'** Paul A Whitelaw and his colleagues investigate the attributes to succeed in the hospitality and tourism industry and examine the role of academics- on how it contributes to the success of the industry. It was found that academicians suggest some changes but these changes are not necessarily accepted by the industry. Secondly, the industry is not very attractive to the new generation of graduates, who favour a better work/life balance than that offered by the hospitality industry. They suggest that for these reasons, the industry should also focus on developing a more attractive image in terms of role, wages and career development. The educational institutes diverge from the main purpose. This study helps identify concrete gaps between educational institute and the hotel industry requirement.

'Gap Analysis of Skills Provided in Hotel Management Education with Respect to Skills Required in the Hospitality Industry: The Indian Scenario' The findings revealed that there was a gap in most of the areas of desired skills needed by various departments like communication skills, leadership skills, software skills etc. and lack serious approach towards medical and safety issues. To overcome these shortcomings, the researchers recommend concrete steps like providing hands-on practice, imparting software skills, training for medical and other emergencies, etc. This study makes one aware of the current scenario and the specific areas that need attention from the academic side to progress in industry.

(Spowart, 2011) concluded that Curricula need to be assessed for the outcomes to be achieved in Work Integrated Learning and faculty need to be aware of the competencies that are required when preparing

*** Institute of hotel management, Senior Lecturer, food &beverage service, Ahmedabad, India**
**** Institute of hotel management, assistant Lecturer, food &beverage service, Ahmedabad, India**
***** Institute of hotel management,Lecturer, Rooms Division Management, Ahmedabad.**

students for the workplace.(Sharma & Broman, 2012) concluded that institutions need to be improve and upgrade themselves and there should be good cooperation and coordination between the management and students. Institutes must keep abreast with the new technologies and teaching style so as to upgrade the quality of teaching the students.(Asirifi & Polytechnic, 2013) concluded hospitality education needs articulate and a well implemented hospitality syllabus to achieve a meaningful development. The courses which are being taught should be practical and skills oriented. Trainings should be well dedicated on providing leadership skills, managerial communication and employee relation to the students.(Sarkodie, 2015) highlighted that multi sonant, communication skills, operating skills and computing skills as the most prominent skills that are required by the students to fit into the hotel industry. The researcher suggested that, there should be a close partnership between the educators and the industry players so that students can understand industry expectations.(Murray, Elliot, & Simmonds, 2017) concluded that hospitality Industry is more dependent on younger workers and bendable pool of employees that can respond to seasonal fluctuations. Employees will envisage the hospitality industry more as a career if they will receive career-style wages and see the potential future, fair return for their hard work.(Mishra, 2010) attempted to recognize the ways to reinforce the delivery mechanism of Hospitality Management education in India by applying the implications of sound pedagogical theories.

Research Gap: Many scholars and researchers have explored the factors for the decline of hotel management courses in the country. However, in depth exploration of the factors still needs to be discovered. Through this paper the researcher aims to explore the perspective of educators and hoteliers to know the gap between the industries requirement and the institutes delivery.

Objectives:

- To identify important employability competencies to be possessed by hotel management graduates from perspective of educators.
- To identify important employability competencies to be possessed by hotel management graduates from perspective of hotel managers.
- To determine the difference between hotel industry and academia interface.
- To suggest various strategies to overcome the gaps between hotel industry and academic

Research Methodology : Research methodology is a way of explaining how a researcher intends to carry out their research. It's a logical, systematic plan to solve a research problem. A methodology details a researcher's approach to the research to ensure reliable, valid results that address their aims and objectives. It encompasses what data they're going to collect and where from, as well as how it's being collected and analysed. A sample of hospitality professionals was carried on by the interview method with the educators and 5-star hotels staff in Ahmedabad. In February 2025, an email that included a link to the educators and staff members was personally filled by them. The interview was fielded for a period of a weeks, and regular reminders were sent for the responses.

PRIMARY DATA

- Method- FORMAL INTERVIEWS with educators and staff members.
- Tool used-structured questionnaire.
- Sample-n (52) MANAGERS, Sample-n (50) EDUCATORS.
- Scale-Likert scale

Secondary Data

- Through Internet
- Magazines, Research Papers

Data Analysis: (Hotel Staffs)

1.Total Responses 52

2.Gender

FIG NO.1

Gender Distribution: Data was collected from **different genders**, ensuring diverse perspectives.

3. DESIGNATION : The data was collected from staff members at different hierarchical levels, ensuring a broad perspective on industry expectations.

4. ORGANIZATION ; The survey targeted employees from **luxury five-star hotels** in Ahmedabad, reflecting insights from high-end hospitality operations.

5.EXPERIENCE : FIG NO.2

The responses include staff with varying years of experience, offering a well-rounded industry viewpoint.

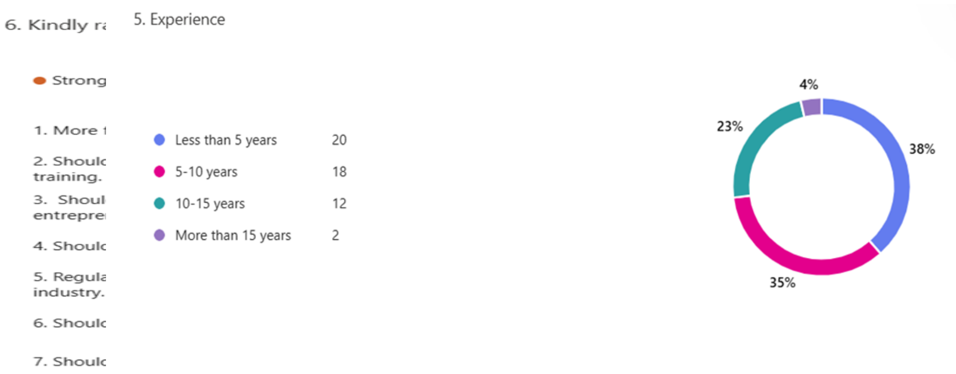

FIG NO.3

The data shows the perspective of the hotel staff on the Employability competencies to be possessed by hotel management graduates.

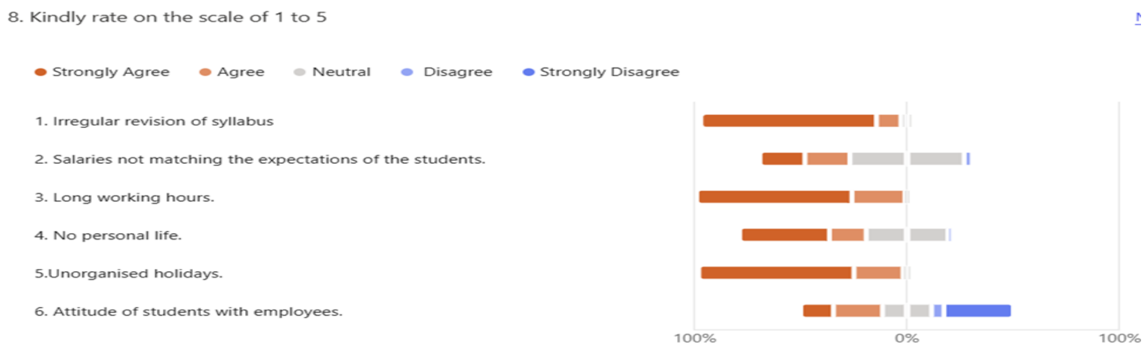

FIG NO.4

This data shows the perspective of hotel staff on the Factors responsible for the interface between hotels & institutions.

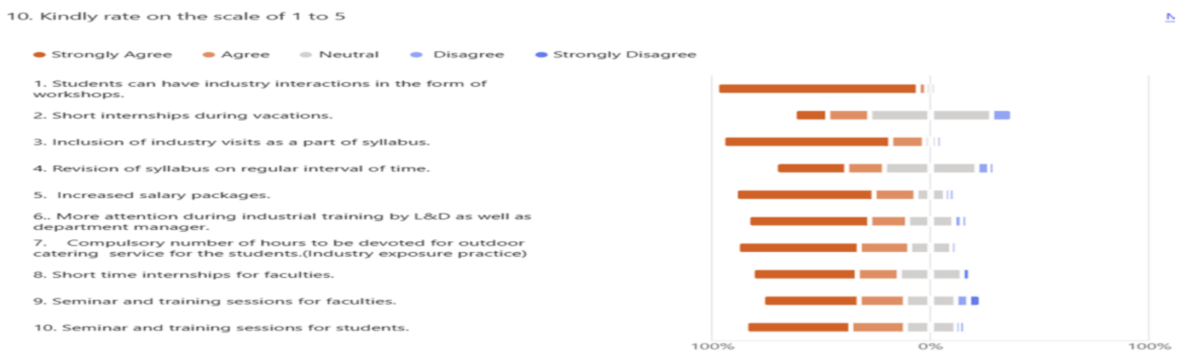

FIG NO. 5

This data shows the perspective of the hotel staff on various strategies to overcome the gap between hotel industry & academic deliveries.

Data Analysis:

(EDUCATORS)

1.**TOTAL** RESPONSES 50.

2.GENDER

FIG NO.6

Gender Distribution: Data was collected from **different genders**, ensuring diverse perspectives.

3. DESIGNATION

Respondents included **lecturers and senior lecturers**, providing insights from academic professionals at different levels.

4. INSTITUTION

Data was gathered from **multiple hotel management colleges in Ahmedabad**, ensuring a broad understanding of industry-academic challenges.

5.EXPERIENCE

FIG NO.6

Respondents had varying years of experience in the education sector, offering a well-rounded perspective on industry trends and academic preparedness.

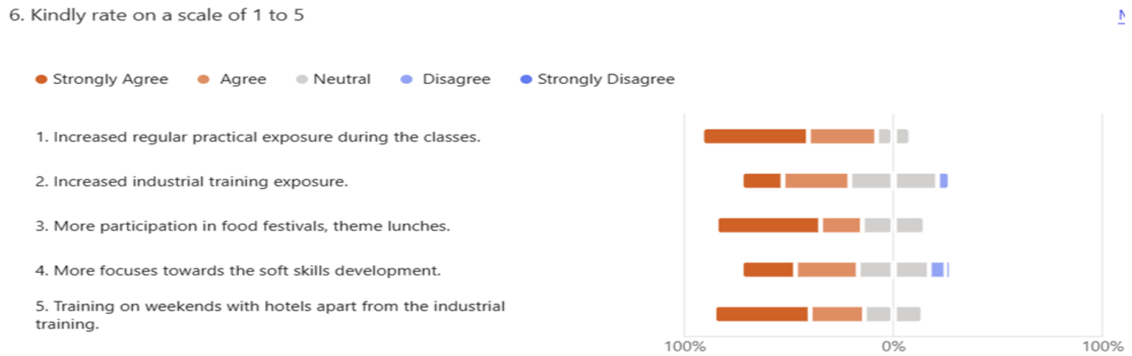

FIG NO.7

The above data shows the perspective of the faculties on the Employability competencies to be possessed by hotel management graduates.

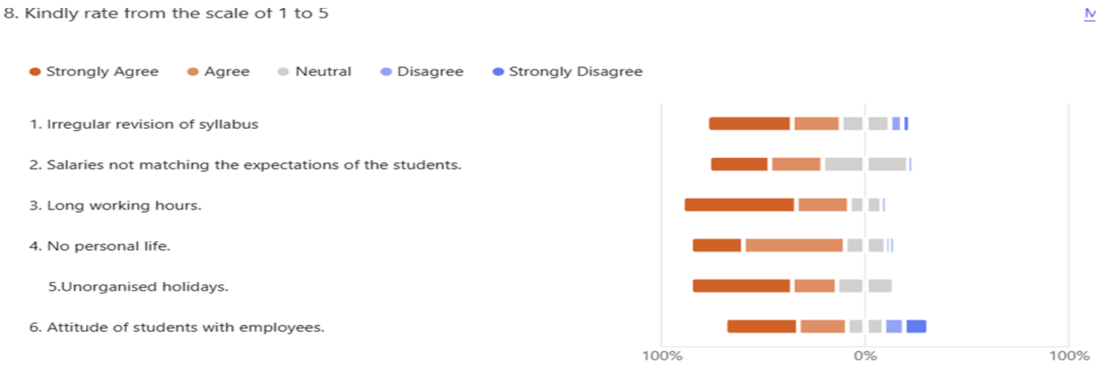

FIG NO. 8

This data shows the perspective of faculties on the Factors responsible for the interface between hotels & institutions

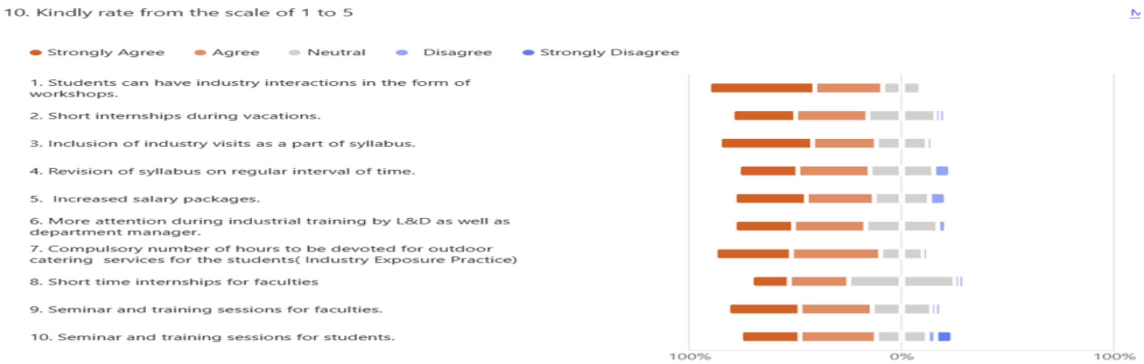

FIG NO. 9

This data shows the perspective of faculties on Various strategies to overcome the gap between hotel industry & academic deliveries.

FINDINGS & SUMMARY

(HOTELS STAFFS)

This analysis is based on **survey responses from 52 participants** working in **5-star hotels in Ahmedabad**. The findings cover **experience levels, skill gaps, employability issues, industry-academia gaps, and solutions to bridge these gaps**.

- From our survey we got to know that our 56% participants were male and other 44% were female.
- The survey was conducted among the participants of different 5-star hotels of AHMEDABAD. Among those participants, some were supervisors, associates or team leaders.

1. **Experience Level Analysis**

❖ **Work Experience of Hotel Professionals:**

- **38% (Largest Group) → Less than 5 years of experience**
  - These are mostly entry-level employees, such as Associates and newly promoted Supervisors.
  - They need more training, practical exposure, and skill-building opportunities.
- **35% → 5-10 years of experience**
  - This group includes mid-level employees such as Team Leaders and experienced Supervisors.
  - They have industry knowledge but need advanced managerial training.
- **23% → 10-15 years of experience**
  - These are seasoned professionals, likely holding senior positions such as Department Heads.
  - They require leadership and strategic management training.
- **4% → More than 15 years of experience**
  - These are highly experienced professionals in managerial roles.

During the survey, in the section 2 Employability competencies to be possessed by hotel management graduates. Following are the findings through the data collected during the survey of supervisors, associate or team leader.

- 86.5% of the participants strongly agree that the graduates should have More focus towards the development of soft skills. A significant majority of participants emphasize the need for **strong soft skills** such as communication, teamwork, adaptability, and problem-solving. Since hospitality is a customer-centric industry, these skills are critical for delivering excellent guest experiences and ensuring professional growth.57.7% of the participants are neutral that there Should have more practical exposure apart from industrial training. A considerable percentage of respondents remain **neutral** about the need for **additional practical exposure** beyond industrial training. This suggests that while practical exposure is important, there may be differing opinions on how much additional training is required or how it should be structured.
- 78.8% of the participants strongly agree that students Should host theme lunches, food festivals to inculcate entrepreneurship. A large proportion of respondents believe that **students should organize events like food festivals and theme lunches** to develop entrepreneurial skills. This hands-on experience helps students understand menu planning, budgeting, event management, and customer service, preparing them for leadership roles in the industry.26.9% of the participants strongly disagree that the students should have positive attitude. A surprising percentage of participants **strongly disagree** with the statement that students generally have a positive attitude. This could indicate concerns about students' motivation, work ethics, or readiness to adapt to the challenges of the hospitality industry.
- 65.4% of the participants strongly agree that there should be regular hotel visits during the course for updates of the industry. Many participants believe that **frequent hotel visits should be included in the curriculum** to help students stay updated with industry trends, operational changes, and technological advancements. These visits provide real-world exposure and help bridge the gap between theoretical knowledge and industry practices.55.8% of the participants strongly agree that students should be able to interact with the guests without hesitation. More than half of the respondents emphasize the importance of **confident guest interaction**. The ability to engage with guests professionally and without hesitation is crucial for success in the hospitality sector, where customer satisfaction is a top priority.
- 67.3% of the participants strongly agree that students should have thorough knowledge about the industry. A significant percentage of participants stress that **students must possess comprehensive knowledge of the hospitality industry**, including its operations, customer service standards, and emerging trends. This ensures that graduates are well-prepared to meet employer expectations.

During the survey, in the Section 3 Factors responsible for the interface between hotels & institutions. Following are the findings through the data collected during the survey of supervisors, associate or team leader.

- 82.7% of the participants strongly agree that there is irregular revision of syllabus. A vast majority of participants believe that the syllabus is **not updated regularly** to meet industry demands. This indicates a major gap where graduates may lack the latest industry-relevant skills, making them less prepared for real-world challenges. 53.8% of the participants are neutral that salaries are not matching the expectations of the students. Over half of the participants remain **neutral** on whether salaries in the hospitality sector meet students' expectations. This suggests that opinions are divided, possibly due to variations in salary structures across different hotel categories (luxury, budget, and independent hotels).
- 73.1% of the participants strongly agree about the long working hours in the industry. A significant portion of respondents strongly agree that **long working hours** remain a major challenge in the hotel industry. This factor is likely a major deterrent for students considering hospitality careers. 42.3% of the participants strongly agree that there is no personal life. A considerable percentage of participants believe that hospitality professionals **struggle with maintaining a work-life balance** due to irregular shifts and long hours. This could contribute to high attrition rates in the industry.
- 73.1% of the participants strongly agree that there are unorganized holidays in the industry. A large percentage of respondents highlight the **lack of structured holidays**, which creates instability in employees' personal lives. Unlike other industries with fixed leave policies, hotel employees often struggle with unpredictable work schedules. 32.7% of the participants strongly disagree about the attitude of students with employees. A notable portion of participants **strongly disagree** with the claim that students have a negative attitude toward employees. This suggests that students are

generally respectful and open to learning, contrary to any misconceptions about their behaviour in professional settings.

During the survey, in the Section 4 Various strategies to overcome the gap between hotel industry & academic deliveries. Following are the findings through the data collected during the survey of supervisors, associate or team leader.

- 92.3% of the participants strongly agree that Students can have industry interactions in the form of workshops. A vast majority of participants strongly support **workshops** as a way for students to engage with industry professionals. These sessions can provide hands-on learning, real-world insights, and networking opportunities.55.8% of the participants are neutral that there should be short internships during vacations. Many participants remain **neutral** about short-term internships during vacations, possibly indicating mixed opinions on their effectiveness or feasibility in balancing work and study schedules.
- 76.9% of the participants strongly agree that there should be Inclusion of industry visits as a part of syllabus. A high percentage of respondents believe that **industry visits should be mandatory** in the curriculum. This aligns with the need for students to experience hotel operations first-hand, bridging the gap between theory and practice.42.3% of the participants are neutral that there should be Revision of syllabus on regular interval of time. A significant percentage of respondents are neutral about the **need for frequent syllabus revisions**. This could indicate uncertainty about whether changes in academic content would directly impact employability or if other factors, like training methods, need more focus.
- 63.5% of the participants strongly agree that there should be increased salary packages. A majority of respondents strongly believe that **higher salaries** are necessary to attract and retain talent in the hospitality sector. This suggests that compensation is a major concern affecting students' career choices.
- 55.8% of the participants strongly agree that there should be more attention during industrial training by L&D as well as department manager. More than half of the respondents feel that **Learning & Development (L&D) teams and department managers should be more involved** in mentoring students during industrial training. This could help students gain meaningful, hands-on experience rather than just performing routine tasks.55.8% of the participants strongly agree that there should be Compulsory number of hours to be devoted for outdoor catering service for the students. (Industry exposure practice) More than half of the respondents believe students should have **compulsory exposure to outdoor catering**. This type of training helps students gain event management experience and develop skills beyond hotel-based operations.
- 48.1% of the participants strongly agree that there should be short time internships for the faculties. Nearly half of the participants strongly agree that faculty members should also undergo **short-term industry internships** to stay updated with hospitality trends and operational changes. 44.2% of the participants strongly agree that there should be more Seminar and training sessions for faculties. A significant portion of respondents support **regular training and seminars for faculty members**, which can enhance teaching effectiveness by incorporating industry-relevant skills and knowledge.

48.1% of the participants strongly agree that there should be Seminar and training sessions for students. Almost half of the participants strongly agree that **students should participate in seminars and training programs** to enhance their industry knowledge and career readiness.

FINDINGS & SUMMARY

(EDUCATORS)

The survey was conducted among lecturers and senior lecturers from hotel management colleges in **Ahmedabad** to understand their perspectives on employability gaps, industry expectations, and academic alignment. The demographic distribution of the participants is as follows:

1. **Gender Distribution**
   - **45% Male**
   - **47% Female**
   - **8% Preferred not to disclose**
   - The gender distribution suggests a fairly balanced representation of male and female educators, ensuring diverse perspectives in the findings.
2. **Work Experience of Participants**

- **36% have 5-10 years of industry experience** (The highest percentage, indicating that many participants are mid-career professionals with a solid understanding of both academic and industry challenges).
- **34% have 10-15 years of experience**, suggesting that a significant portion of respondents are highly experienced educators with deep industry insights.
- **22% have less than 5 years of experience**, representing early-career professionals who may have fresher perspectives on evolving industry trends.
- **8% have more than 15 years of experience**, contributing valuable expertise from long-term exposure to both academia and the hotel sector.

During the survey, in the section 2 Employability competencies to be possessed by hotel management graduates from the perspective of educators. Following are the findings through the data collected during the survey of lecturers and senior lecturers.

- 51% of the participants strongly agree that there should be Increased regular practical exposure during the classes. A majority of educators strongly believe that students should receive more hands-on training during classroom sessions. Practical exposure helps students develop technical skills, enhances their confidence, and prepares them for real-world hotel operations. 42% of the participants are neutral that there should be Increased industrial training exposure. A significant portion of respondents remains neutral on the need for increased industrial training exposure. This suggests that while industrial training is recognized as important, there may be differing opinions on its current effectiveness or feasibility in the academic framework.
- 50% of the participants strongly agree that there should be More participation in food festivals, theme lunches. Half of the participants strongly support the idea of students actively participating in food festivals and theme-based dining experiences. These events provide students with real-time exposure to large-scale event management, menu planning, and customer service, which are crucial skills in the hospitality industry. 34% of the participants are neutral that the students should have More focuses towards the soft skills development. A considerable percentage of respondents remain neutral about the need for soft skills training. This could indicate that while soft skills (such as communication, teamwork, and leadership) are important, some educators may feel that they are already sufficiently covered in the curriculum or that students should take personal responsibility for improving them.
- 46% of the participants strongly agree that there should be Training on weekends with hotels apart from the industrial training. Nearly half of the respondents strongly agree that students should undergo additional weekend training with hotels. This would provide extra industry exposure beyond the standard industrial training, allowing students to gain deeper insights into hotel operations and workplace culture.

During the survey, in the Section 3 Factors responsible for the interface between hotels & institutions. Following are the findings through the data collected during the survey of lecturers or senior lecturers.

- 42% of the participants strongly agree that there is irregular revision of syllabus. A significant portion of participants strongly agree that the hospitality curriculum is not updated regularly. This gap between academic learning and industry requirements can result in students graduating with outdated knowledge and skills, making it harder for them to meet industry expectations.
- 42% of the participants are neutral that salaries are not matching the expectations of the students. The neutral stance of participants on this issue suggests that there are mixed opinions regarding whether industry salaries align with student expectations. While some may feel that initial salaries in hospitality are fair, others might believe they do not match the investment students make in their education.56% of the participants strongly agree about the long working hours in the industry. A majority of respondents strongly agree that the long working hours in the hospitality industry are a major concern. This factor can discourage students from pursuing long-term careers in hotels, as they may find the demanding schedule challenging to maintain.
- 50% of the participants agree that there is no personal life. Half of the participants agree that hotel jobs can negatively impact personal life due to unpredictable shifts, extended work hours, and high work pressure. This could be a major reason why many students hesitate to join the industry after completing their education.50% of the participants strongly agree that there are unorganised holidays in the industry. Another major issue highlighted by the respondents is the lack of structured holidays in the hospitality sector. Since hotels operate 24/7, employees often do not get fixed weekly offs or planned leave, making work-life balance difficult to maintain.

- 36% of the participants strongly disagree about the attitude of students with employees. A notable percentage of participants strongly disagree that students have a negative attitude toward hotel employees. This suggests that most students respect and value industry professionals, which is a positive sign for strengthening the relationship between academic institutions and hotels.

During the survey, in the Section 4 Various strategies to overcome the gap between hotel industry & academic deliveries. Following are the findings through the data collected during the survey of lecturers and senior lecturers.

- 50% of the participants strongly agree that Students can have industry interactions in the form of workshops. Half of the participants strongly believe that conducting workshops where students interact with industry professionals can enhance their understanding of real-world hotel operations. These workshops could include guest lectures, hands-on training, and skill-building sessions to bridge theoretical knowledge with practical application.34% of the participants agree that there should be short internships during vacations. More than one-third of the participants agree that short internships during vacations can help students gain practical exposure without interfering with their academic schedules. These internships can provide a real-world learning experience and improve job readiness.
- 44% of the participants strongly agree that there should be Inclusion of industry visits as a part of syllabus. Nearly half of the respondents strongly support the idea that industry visits should be a mandatory part of the curriculum. These visits can help students understand hotel operations, interact with professionals, and witness industry challenges first-hand.34% of the participants agree that there should be Revision of syllabus on regular interval of time. Many participants believe that the curriculum should be regularly updated to reflect the evolving demands of the hospitality industry. Incorporating the latest trends, technology, and industry practices will ensure that students remain relevant in the job market.
- 34% of the participants strongly agree that there should be increased salary packages. One-third of the participants strongly agree that offering higher salaries to hospitality professionals can help attract and retain skilled talent in the industry. Better compensation packages would also motivate students to pursue long-term careers in hospitality.34% of the participants agree that there should be more attention during industrial training by L&D as well as department manager. Participants suggest that Learning & Development (L&D) teams and department managers should play a more active role in guiding students during industrial training. Enhanced supervision and mentorship would ensure that students gain meaningful experience rather than just performing routine tasks.
- 42% of the participants agree that there should be Compulsory number of hours to be devoted for outdoor catering service for the students. (Industry exposure practice) A significant percentage of respondents agree that students should be required to complete a set number of hours in outdoor catering services. This hands-on exposure will help them gain real-time experience in event catering, banquet management, and food service operations.50% of the participants are neutral that there should be short time internships for the faculties. Half of the participants are neutral on the idea of short-term faculty internships, indicating uncertainty or mixed opinions on whether such programs would be beneficial. While some may see it as an opportunity for faculty to stay updated with industry trends, others may find it unnecessary or difficult to implement.
- 34% of the participants strongly agree that there should be more Seminar and training sessions for faculties. One-third of the participants strongly believe that faculties should receive continuous professional development through seminars and training sessions. This would help educators stay updated with industry advancements and enhance their teaching effectiveness.36% of the participants agree that there should be Seminar and training sessions for students. A similar percentage of participants agree that students should also attend seminars and training sessions to improve their industry knowledge, skills, and overall preparedness for hospitality careers.

Conclusion :- The study on employability gaps in Ahmedabad's hotel industry highlights a crucial reality—while hospitality education equips students with theoretical knowledge, it often falls short in preparing them for the real-world demands of the industry. Employers are looking for graduates who not only understand hotel operations but also excel in communication, problem-solving, and adaptability. However, many fresh graduates struggle to meet these expectations due to limited hands-on experience and practical training. This gap can be bridged through stronger collaboration between educational institutions and the industry. By incorporating more internships, industry-led workshops, and real-world skill development into the curriculum, we can ensure that students step into the workforce with confidence and competence.

Ultimately, aligning academic training with industry needs will not only enhance employability but also contribute to a more skilled and efficient hospitality workforce in Ahmedabad. In spite of Hotel Industry being accepted as a multidimensional industry with various job opportunities for skilled, unskilled and semi-skilled individuals, the government has yet not able to develop the Veracious Hotel Management education system in the country. Many educational institutes have come up with Hotel Management Course without having proper infrastructure and training facilities for the students. For the purpose of money-making educational institutes are cheating with their students by making fake promises and not specified the right scenario of the hospitality industry. To bridge the gap between hotel industry expectations and education deliverables Hotel management students should be trained keeping in mind latest trends and present demands of the industry. To conclude, this research suggests that industry professionals and academicians are aware that there is a need for a change. The industry needs to develop an improved image by changing the salary structures and by providing better working environment so as to ensure a certain level of employee enrolment and retention. Secondly, it is important to outline a clear transferable nationally accepted educational system and skills scheme in terms of qualification, training by the Government.

References :-

1. Ashley R.A, Bach S. A., Chesser and J.W, Ellis E.T (1995). A customer based approach to hospitality education.” Cornell Hotel and Restaurant Administration Quarterly, 36(4), 74-79.
2. Farkas D. (1993). “Trained in Vain.” Restaurant Hospitality, 68.
3. Gale L. E. & Pole. (1975). “Competence a definition and conceptual Scheme.” Educational Technology, 19 (1) 19 – 25.
4. Https://www.careers360.com. (2018, September 18). NCHMCT JEE Syllabus 2021 - Check here for revised Syllabus pdfs. Hospitality.careers360.com.
5. Jauhari (2006). “Competencies for Career in Hospitality Industry and Indian Perspective.” International Journal of Contemporary Hospitality Management, vol. 18, No 2 123-34.
6. Jhajj, S., & Aggarwal, M. (2018). Mapping the Gaps for Matching Academia Deliverables with Hospitality Industry Needs 76 mapping the gaps for matching academia deliverables with hospitality industry needs. International Journal of Management and Applied Science, 9, 2394– 7926.
7. Http://www.iraj.in/journal/journal_file/journal_pdf/14-504-154288771676-91.pdf
8. Kate. (2019, September 10). Why is curriculum important? - Class craft Blog. Resource Hub for Schools and Districts. Https://www.classcraft.com/blog/why-is-curriculum-important/
9. Kluge, E. A. (1996). A literature review of information technology in the hospitality curriculum, Hospitality Research Journal, 19(4), 45-64.
10. Kumar, A. (2018). Hospitality Education in India: Issues and Challenges. Journal of Hotel and Business Management, 07(01). https://doi.org/10.4172/2169-0286.1000169
11. Lewis R.C (1993). “Hospitality education at a crossroads.” The Cornell Hotel Management Administration Quarterly, 23 (3), 12-15. Annals of R.S.C.B., ISSN:1583-6258, Vol. 25, Issue 3, 2021, Pages. 3307 - 3314 Received 16 February 2021; Accepted 08 March 2021. 3314 http://annalsofrscb.ro
12. Lilien, G. L. (2011). Bridging the Academic– Practitioner Divide in Marketing Decision Models. Journal of Marketing, 75, 196-210
13. Marsh C.J. & William G, (2007). Curriculum Alternative Approaches Ongoing Issues. United States of America, (8)-15, 375.
14. Ogbeide, G.C.A. (2006). Employability Skills and Students Self Perceived Competence for Careers in Hospitality Industry. Doctoral dissertation, University of Missouri, Columbia.
15. Rees, C., Forbes, P., & Kubler, B. (2006). Student Employability profiles: A guide for higher education practitioners. York: The Higher Education Academy.

A Study of Meme Marketing on Select Food Delivery Companies and its Impact on Consumer Engagement, Brand Loyalty, and Comparative Effectiveness in Ahmedabad and Mumbai

Satish Singh*
Shashank Rajauria **
Charudutt Sharma ***

Abstract : The present study seeks to assess the significance of meme marketing for select companies in the food delivery industry operating out of Ahmedabad and Mumbai. With meme marketing growing more prevalent, its effects on customer engagement, brand loyalty, and overall efficacy in food delivery are still largely unknown. Our research addresses this gap by examining how food delivery platforms incorporate memes into their marketing strategies, and the downstream effects of those attempts to engage consumers.

This research focuses on user sentiment and behavior towards meme-based campaigns, which are captured by metrics like likes, shares, or comments that reflect the nature of engagement. Additionally, it explores the impact of these campaigns on brand loyalty—are customers more likely to keep coming back if they see meme content again and again? At the second stage, we conducted a comparative analysis between Ahmedabad and Mumbai to find out any regional differences in what sort of memes work effectively. In this way, the study offers some insights regarding which cultural and demographic trends might favour meme-based marketing initiatives.

In doing so, the results of this study will provide useful information for food delivery companies that aim to refine their digital marketing strategies and contribute both in terms of industry practices as well as academic knowledge on digital marketing and consumer behaviour.

Keywords: Memes, Consumer engagement, brand loyalty, Ahmedabad, Mumbai.

Introduction : The Origins of Meme Marketing : The term "meme," coined by evolutionary biologist Richard Dawkins in 1976 in The Selfish Gene, initially described how cultural information spreads through society, akin to genes carrying biological traits. This concept captures the essence of how ideas, values, and behaviors can transfer, mutate, and evolve, resonating across social structures. In the internet era, however, memes have transformed into a unique form of digital expression—short, humorous, and often satirical content that thrives on social media platforms like Facebook, Twitter, Instagram, and Reddit.

The rise of social media has accelerated meme proliferation, as users quickly embraced their shareable, universally relatable nature. Early viral phenomena, such as "Rickrolling" and "Grumpy Cat," demonstrated the potential for memes to transcend niche communities and achieve widespread cultural relevance. These moments marked the beginning of memes as vehicles for conveying humor, opinions, and shared experiences, paving the way for their integration into mainstream culture. Recognizing this potential, brands have increasingly adopted meme marketing strategies, utilizing memes to humanize their image and engage audiences, especially younger demographics who prefer content that feels authentic and timely.Memes now play a dual role in the digital landscape: they serve as organic, grassroots reflections of social attitudes, and as strategic tools in brand communication. By aligning with trending meme formats and leveraging humor or irony, brands craft content that resonates on an emotional level. This strategy allows for a more interactive and inclusive approach to marketing, where brands engage directly in the digital culture their audiences cherish. As meme culture continues to evolve, so does its application in marketing, offering insights into societal values, preferences, and the influence of viral content on consumer behavior.The **Rise**

*** Institute of hotel management, Senior Lecturer, food &beverage service, Ahmedabad, India**
**** Institute of hotel management,Lecturer, Rooms Division Management, Ahmedabad.**
***** Institute of hotel management, assistant Lecturer, food &beverage service, Ahmedabad, India**

of Meme Marketing in the Digital Era

The rise of meme marketing as a formal strategy began in the late 2000s, aligning with the rapid adoption of social media by brands aiming to connect with a new generation of digital- savvy consumers. As social platforms like Facebook, Twitter, and Instagram became central to daily life, brands quickly recognized memes as powerful tools for engaging audiences in a more relatable and entertaining way. Studies have shown that meme marketing is effective largely because it taps into shared cultural knowledge and the inside jokes of internet communities, creating a sense of mutual understanding and relatability between brands and consumers (Patel & Sharma, 2020). Memes, often combining humor with instantly recognizable cultural references, allow brands to blend seamlessly into online conversations, positioning themselves as relevant and accessible rather than overtly corporate.

Memes have proven invaluable in creating brand awareness, driving engagement, and fostering loyalty, particularly among younger audiences who appreciate humor, authenticity, and informality in brand interactions. Research further supports this, showing that brands using humor and culturally relevant content not only see higher interaction rates but are also perceived as more approachable and authentic (Vassileva, 2017). This shift from traditional ads to meme-based content reflects a broader trend in digital marketing, where brands are increasingly encouraged to integrate into the online cultures of their target audiences rather than interrupting them with conventional advertisements. In my research, this trend is particularly relevant in the food delivery sector, where companies are increasingly using meme marketing to capture the attention of young, tech-savvy consumers. Food delivery companies like Uber Eats, DoorDash, and Zomato have strategically used memes to establish a lighthearted, relatable brand identity, which has proven especially effective on platforms where users are already seeking out humor and casual engagement. Through memes, these brands respond to trending topics, poke fun at the quirks of food delivery culture, and connect with their audiences on a more personal level. This approach allows food delivery companies not just to promote their services, but to build a loyal online community around shared experiences and values, demonstrating that they understand and relate to their customers' everyday lives.

Meme Marketing in India : With the rapid proliferation of affordable internet access in India after 2016, driven by initiatives like Jio's introduction of low-cost data plans, there was an unprecedented surge in digital content consumption across the country. This accessibility brought millions of new users online, many of whom quickly embraced meme culture as part of their everyday interactions on social media. By 2021, over 400 million Indians were actively engaging with meme content on platforms like WhatsApp, Instagram, and Twitter, according to *The Economic Times*. This digital boom opened up new avenues for marketers across various industries, especially in the fast-evolving food delivery sector, which has thrived alongside this growth in digital engagement.

For food delivery companies like Swiggy, Zomato, and Uber Eats, meme marketing presented a unique opportunity to connect with a young, digital-first audience that values humor and relatability in brand communications. These brands leveraged memes to establish a casual, approachable tone, using humor to discuss relatable aspects of food delivery and dining, such as the anticipation of waiting for a meal or the struggles of food cravings. The appeal of memes lies in their ability to capture everyday situations in a humorous way, making them effective at breaking the traditional barriers of advertising. Unlike conventional ads, memes allow brands to speak directly to their audience's experiences, which has proven effective in making brands feel more personable and authentic. For instance, Swiggy and Zomato often create memes that play on popular Bollywood references, local festivals, and even common Indian dining habits. By doing so, these brands go beyond the typical product pitch, fostering a sense of community and understanding with their audience. Through humorous, everyday scenarios, they capture moments that resonate with the shared experiences of Indian consumers, such as the excitement of ordering in on a weekend or the disappointment of delayed delivery. This meme-based approach to marketing has allowed these brands to become more than just service providers; they've become relatable participants in their customers' daily lives.

Food Delivery Industry and Meme Marketing : The food delivery market in India has experienced rapid growth over the past decade, driven by factors such as urbanization, technological advancements, and changing consumer behavior. Between 2015 and 2024, the market has transformed significantly, with a large

portion of Indian consumers—especially in urban areas—turning to food delivery services for convenience. This growth has been further fueled by the rise of a young, digitally active population, which includes a high proportion of millennials and Gen Z users who seek fast, accessible, and digitally integrated services. required more than traditional marketing methods. While conventional advertising still plays a role, these companies recognized that to truly engage their target audience, they would need a more relatable and interactive approach. Meme marketing emerged as a powerful tool to bridge this gap. With its ability to capitalize on viral trends and create shareable content, meme marketing allowed these companies to resonate with the humor, cultural references, and online habits of their audience.Research underscores the success of meme marketing in this sector, demonstrating that humor and relatability lead to stronger connections with audiences (Kumar et al., 2021). By producing content that speaks to their consumers' daily experiences and preferences, companies like Zomato and Swiggy have been able to stand out, not just as service providers, but as relatable, trusted brands. This strategic use of memes has allowed them to grow brand loyalty in a way that traditional advertising alone could not achieve, making meme marketing an integral part of their digital strategy in India's evolving food delivery industry.

Literature review : Meme marketing has emerged as a crucial digital advertising strategy, leveraging humor, relatability, and cultural references to engage audiences and influence consumer behavior. As brands strive to connect with digital-native consumers, the effectiveness of meme marketing in enhancing consumer engagement and purchase intention has gained significant academic attention. According to Rathi and Jain (2023), meme marketing activities significantly impact consumer engagement, ultimately influencing purchase decisions.. Meme marketing operates as an extension of digital marketing strategies, utilizing internet humor and cultural symbols to create engaging content. Researchers argue that memes serve as a participatory form of communication, enabling consumers to interact with brand-related material organically (Shifman, 2014). This interaction fosters a sense of community and strengthens brand recall, contributing to increased consumer purchase intentions (Navrang & Pooja, 2023). Numerous studies suggest that consumer engagement plays a crucial mediating role between meme marketing and purchase decisions. Engagement is often driven by factors such as content relatability, humor, and emotional appeal. Rathi and Jain (2023) argue that memes with strong emotional resonance result in higher engagement, which translates into increased trust and purchase probability. Additionally, engagement metrics like likes, shares, and comments provide measurable indicators of consumer interest and potential buying behavior. The effectiveness of meme marketing is deeply rooted in psychology. Humor enhances cognitive processing and memory retention, making advertisements more memorable (Berger & Milkman, 2012). Consumers are more likely to remember and associate positive emotions with brands that employ humorous content.

Meme marketing has proven to be a powerful tool in digital advertising, effectively influencing consumer engagement and purchase behavior. Well-executed meme marketing campaigns contribute to heightened brand awareness, consumer interaction, and increased purchase intentions. However, brands must strike a balance between humor and sensitivity to maintain authenticity and avoid audience fatigue

Literature Gap : Meme marketing has gained significant traction as a digital marketing strategy, particularly in industries targeting younger, digitally engaged consumers. While previous studies have explored the general impact of meme marketing on brand awareness, consumer engagement, and purchase intention (Rathi & Jain, 2023; Shifman, 2014), there remains a lack of focused research on its effectiveness in the food delivery industry, particularly in the Indian market.

Existing literature has primarily examined meme marketing in the context of general branding strategies and social media engagement (Navrang & Pooja, 2023). However, there is limited empirical evidence on how meme marketing directly influences consumer behavior in service- based industries like food delivery. Furthermore, most studies have been conducted in Western markets, leaving a gap in understanding how Indian consumers, especially in urban centers like Ahmedabad and Mumbai, respond to meme-based marketing campaigns.

Another critical gap in the literature is the lack of comparative studies across different regions.

Consumer behavior and social media engagement patterns can vary significantly between cities due to cultural, economic, and digital access differences. While meme marketing has been widely adopted by food delivery companies like Swiggy and Zomato, no study has specifically analyzed its differential impact in multiple urban centers within India. This study seeks to bridge this gap by examining whether consumer engagement, brand loyalty, and repeat usage behaviors vary between Ahmedabad and Mumbai. Additionally, existing research has predominantly focused on engagement metrics such as likes, shares, and comments but has not adequately addressed how meme marketing influences brand loyalty and repeat purchase behavior in the long run. This study aims to fill this void by assessing how meme marketing strategies contribute to building sustained customer relationships in the food delivery sector.

By addressing these research gaps, this study will provide valuable insights into the role of meme marketing in shaping consumer behavior in the Indian food delivery industry. The findings will help businesses refine their digital marketing strategies and contribute to the academic discourse on the evolving dynamics of social media-driven consumer engagement.

Objectives

- To evaluate the impact of meme marketing by select food delivery companies on consumer engagement in Ahmedabad and Mumbai.
- To assess the influence of meme-based campaigns on brand loyalty and repeat usage by select food delivery companies in Ahmedabad and Mumbai.
- To compare the effectiveness of meme marketing strategies on consumer in Ahmedabad and Mumbai by select food delivery companies.

Hypothesis : H1: Meme advertising by select food delivery companies plays a significant role in increasing consumer engagement on social media platforms.

Null Hypothesis: Meme marketing by selected food delivery companies does not play a significant role in increasing consumer engagement on social media platforms.

H2: Meme-based marketing campaigns have significant impact on brand loyalty and repeat usage of the food delivery service.

Null Hypothesis: Meme-based marketing campaigns have no significant impact on brand loyalty and repeat usage of the food delivery service

H3: There is significant difference in the effectiveness of meme marketing on consumers between Ahmedabad and Mumbai.

Null Hypothesis: There is no significant difference in the effectiveness of meme marketing on consumers between Ahmedabad and Mumbai.

Research Methodology : This chapter outlines the research methodology adopted to analyse the impact of meme marketing done by select food delivery companies on consumer engagement, brand loyalty, and repeat usage of food delivery Services in Ahmedabad and Mumbai. It explains the research design, sampling methods, data collection tools, analysis techniques used to meet the study's objective

Variables : The study identifies key variables that influence the impact of meme marketing on food delivery services. These variables help establish relationships between different factors affecting consumer behaviour.

Dependent variables : Dependent variables are those that are affected by meme marketing strategies and consumer exposure. The main dependent variables of this study are:

- Consumer Engagement: A measure of how much consumers participate in meme-based marketing campaigns, such as likes, shares, comments, and the attention given to meme ads.
- Brand Loyalty: The extent to which meme marketing contributes to establishing long-term customer relationships, influencing their selection of a particular food delivery service over others.
- Repeat Purchase Behaviour: This study examines the effects of meme advertising on consumer

repeat purchase behaviour towards the same food delivery platform based on the influence of funny adverts on sustained use behaviours.

Independent Variables

- Independent variables are the factors that influence consumer interaction, brand loyalty, and repeat purchase behavior tendency. The main independent variables in this study are as follows:
  - Meme Marketing Strategies: The various strategies followed by food ordering services, including funny, relevant, or popular memes, and how successful they turn out to be in drawing consumer attention.
  - Social Media Exposure: The breadth and media (Instagram, Twitter, Facebook, etc.) through which customers are exposed to meme-based marketing campaigns, shaping their interaction and attitude towards brands.

Research Methodology

Sample Size and Demographics : Target population: Consumers who frequently make use of food delivery services in Ahmedabad and Mumbai. Minimum 100 respondents are taken as a sample for statistical reliability and representativeness. Convenience sampling method is employed, targeting those who have been exposed to meme-based advertising campaigns of food delivery businesses. The sample is comprised of diverse demographic variables, such as age, income level, and frequency of ordering food online.

Data sources

Primary Data : Primary data is collected through structured questionnaires distributed online through social media platforms in the cities of Ahmedabad and Mumbai. The survey includes questions for exposure to meme marketing, the extent of engagement, and the impact on brand perception.

Secondary data : Secondary data are gathered from academic journals, industry reports, social media analysis, and marketing case studies that are relevant to meme marketing and food delivery services. Swiggy, Zomato and other marketing agencies' findings are used to substantiate the primary findings.

Data Collection Tools : A structured questionnaire is used, consisting of closed-ended and 5 point Likert scale questions to quantify consumer responses. The questionnaire includes:

- Demographic details (age, city, social media usage).
- Exposure to meme marketing (frequency, preferred platforms).
- Consumer behavior (engagement, brand perception, loyalty).

Data Tabulation and Analysis

Figure 1 The survey was conducted among the participants of Ahmedabad and Mumbai. Among those participants, 53.8% were from the age group 18-24 years, 23.1% were from the age group 25-34 years, 9.6% were from the age group 35-44 years, 6.7% were from the age group 45 and above, and 6.7% were below 18 years.

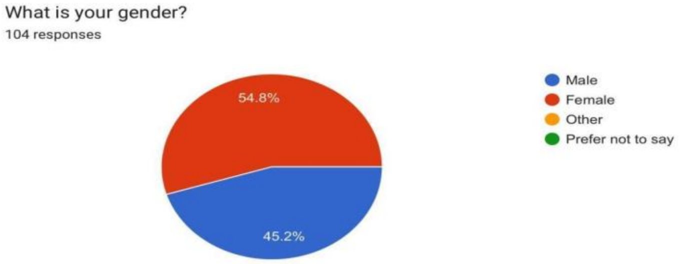

Figure 2

The survey included participants from Ahmedabad and Mumbai. Among those participants, **54.8% were female, while 45.2% were male.** No participants selected the "Other" or "Prefer not to say" options.

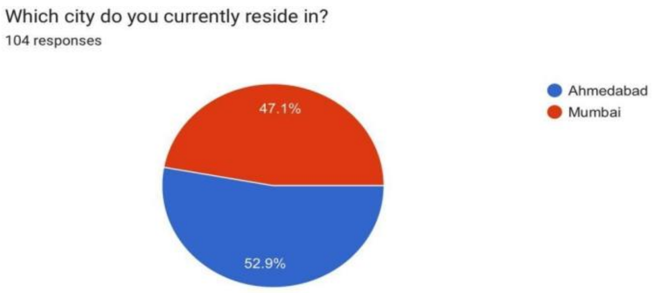

Figure 3

Based on the survey conducted, **52.9% of the participants reside in Ahmedabad, while 47.1% are from Mumbai.**

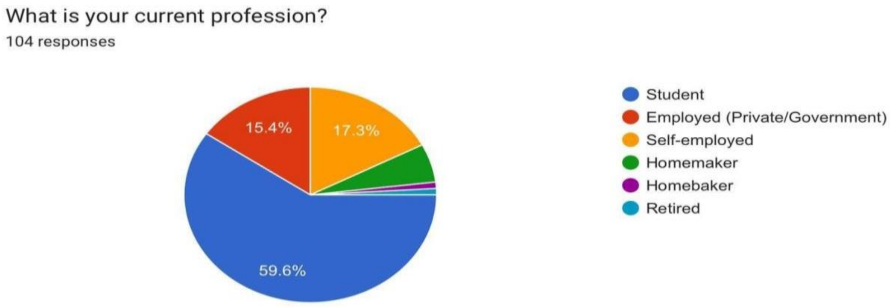

Figure 4

According to the survey results, **the majority of respondents (59.6%) are students, followed by 17.3% who are self-employed, and 15.4% who are employed in private or government sectors. The remaining participants include homemakers (6%), homebakers (1%), and retired individuals (1%).**

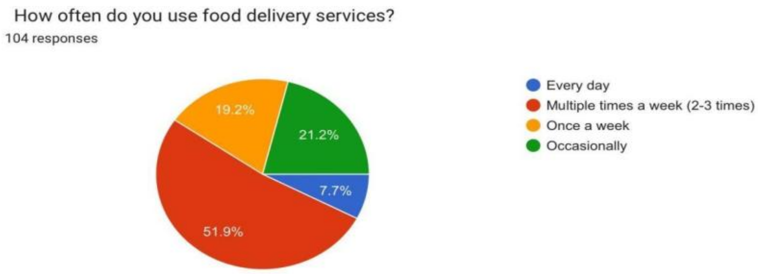

Figure 5

The survey results indicate that **a majority of respondents (51.9%) use food delivery services multiple times a week, while 19.2% order once a week. Additionally, 21.2% use these services occasionally,**

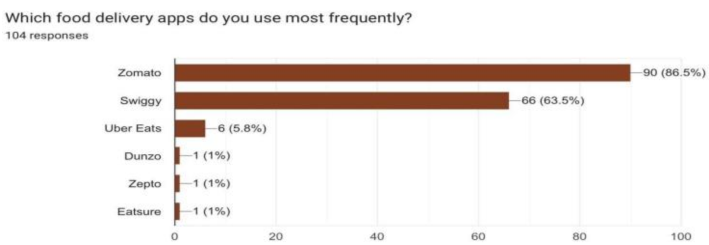

and only 7.7% rely on them daily.

Table 1

The survey results reveal that **Zomato is the most frequently used food delivery app, with 86.5% of respondents favoring it. Swiggy follows closely, used by 63.5% of participants. Other apps like Uber Eats (5.8%), Dunzo (1%), Zepto (1%), and Eatsure (1%) have significantly lower usage.**

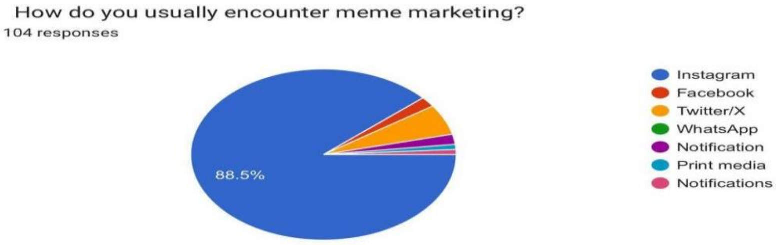

Figure 6

The survey results indicate that **Instagram is the dominant platform for encountering meme marketing, with 88.5% of respondents reporting it as their primary source. Other platforms such as Facebook (1.9%), Twitter/X(5.8%), WhatsApp, notifications(1.9%), and print media contribute only a small fraction to meme marketing exposure**

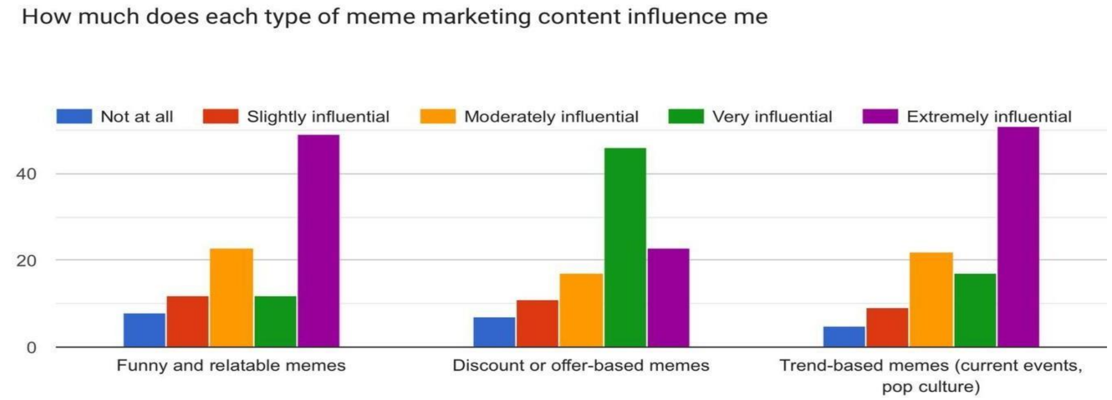

Table 2

The survey results suggest that "Funny and relatable memes" and "Trend-based memes (current events, pop culture)" are the most influential types of meme marketing, with a significant number of respondents rating them as "Extremely influential."

- **Funny and relatable memes** had the highest number of people selecting "Extremely influential," followed by a moderate influence from other categories.
- **Trend-based memes** also received a strong response in the "Extremely influential" category, indicating their effectiveness in engaging audiences.
- **Discount or offer-based memes** were mostly rated as "Very influential," showing that while they are effective, they may not be as emotionally engaging as the other two categories

Overall, **humor and cultural relevance appear to be the most powerful drivers of meme marketing influenc**

Data analysis of Impact of meme marketing by select food delivery companies on consumer engagement.

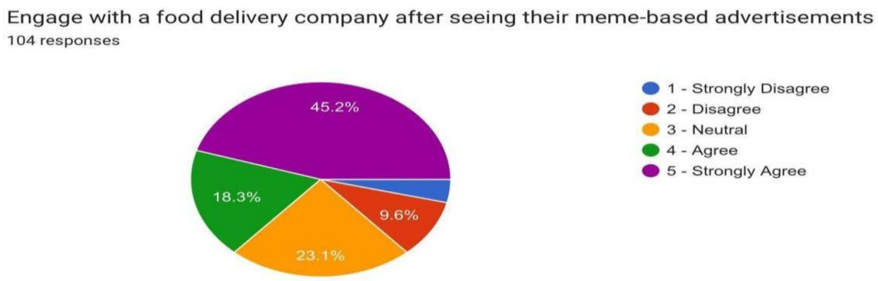

Figure 7

The Pie chart indicates that **63.5% of respondents (Agree + Strongly Agree)** engage with food delivery companies after seeing meme-based advertisements. In contrast, only **13.4% (Disagree + Strongly Disagree)** do not find these ads influential. This suggests that meme marketing is highly effective in driving consumer interaction.

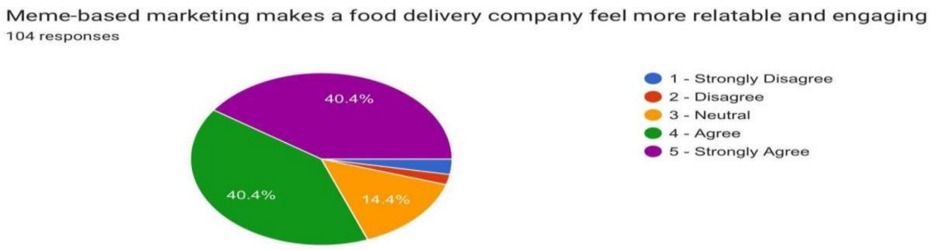

Figure 8

The chart shows that **80.8% of respondents (Agree + Strongly Agree)** believe meme-based marketing makes food delivery companies more relatable and engaging. Only **7.7% (Disagree+ Strongly Disagree)** disagree with this sentiment. This highlights the strong positive impact of meme-based marketing on brand perception.

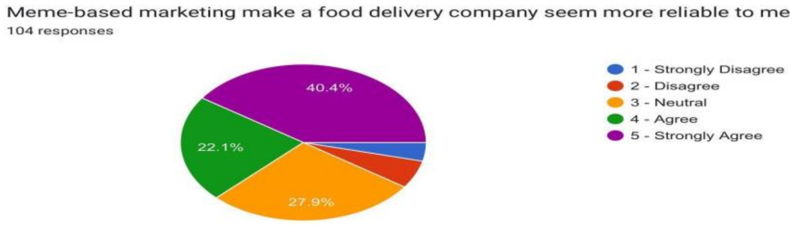

Figure 9

The chart shows that **62.5% of respondents (Agree + Strongly agree)** believe meme-based marketing makes food delivery companies seem more reliable. **27.9% remain neutral**, while **9.6% (Disagree + Strongly Disagree)** do not find it reliable. This suggests that while many view meme-based marketing positively, some remain uncertain about its impact on reliability.

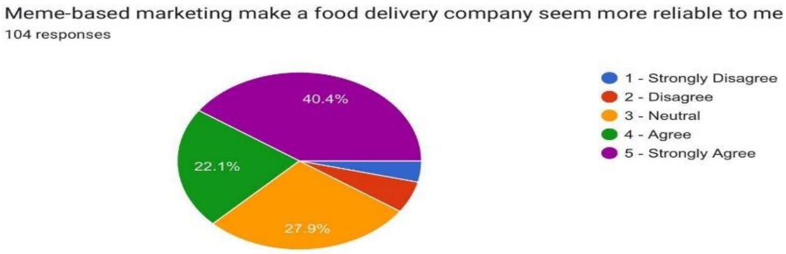

Figure 10

The chart indicates that **62.5% of respondents (Agree + Strongly agree)** feel that meme- based marketing makes a food delivery company seem more reliable. **27.9% remain neutral**, while **9.6% (Disagree + Strongly Disagree)** do not find it reliable. This suggests that a majority perceive meme-based marketing as positively influencing trust in a food delivery service, but a notable portion remains indifferent.

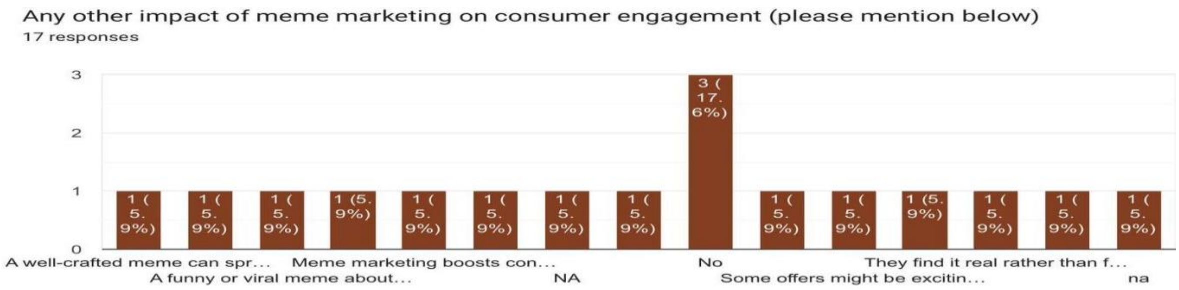

Table 3

This chart presents responses about any other impact of meme marketing on consumer engagement. Out of **17 respondents**, the most common response (17.6%) was **"No"**, indicating that some people do not perceive any impact. The rest of the responses were diverse, each with **5.9% agreement**, mentioning effects such as increasing brand visibility, boosting. Consumer engagement, making offers more exciting, and making content feel more real rather than forced. This suggests that while meme marketing may have some positive effects, perceptions vary widely.

Data Analysis on Influence of meme based campaigns on brand loyalty and repeat usage.

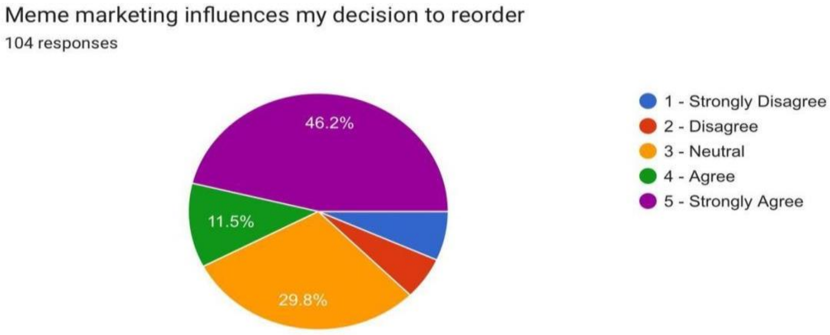

Figure 11

The Pie chart shows that **46.2% strongly agree** that meme marketing influences their decision to reorder, while **11.5% agree** and **29.8% remain neutral**. A smaller percentage disagrees or strongly disagrees (12.2%), indicating minimal negative impact. Overall, meme marketing plays a significant role in influencing repeat purchases.

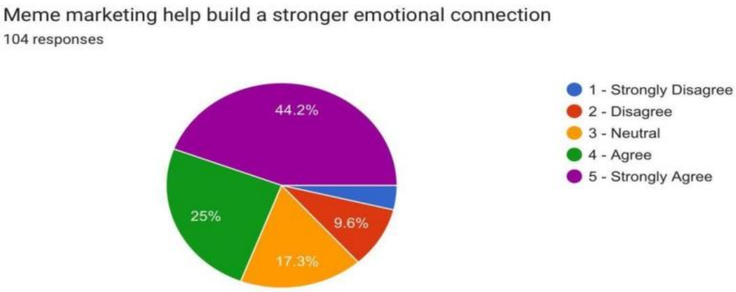

Figure 12

The Pie chart indicates that **44.2% strongly agree** and **25% agree** that meme marketing helps build a stronger emotional connection. **17.3% are neutral**, while only a small percentage disagrees (13.4%). This suggests that meme marketing is effective in fostering emotional engagement with customers.

The Pie chart indicates that **44.2% strongly agree** and **25% agree** that meme marketing helps build a stronger emotional connection. **17.3% are neutral**, while only a small percentage disagrees (13.4%). This suggests that

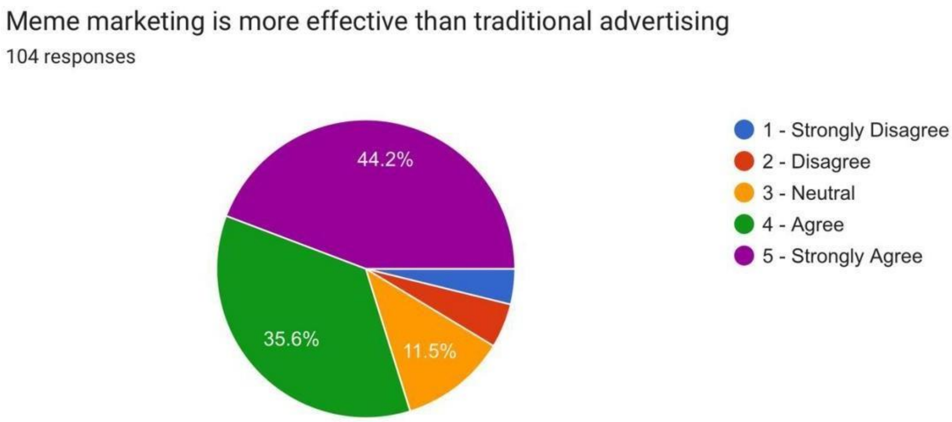

meme marketing is effective in fostering emotional engagement with customers.

Figure 13

The Pie chart shows that **44.2% strongly agree** and **35.6% agree** that meme marketing is more effective than traditional advertising. **11.5% are neutral**, while only a small percentage disagrees (9.6%). This suggests that the majority perceive meme marketing as a superior advertising strategy.

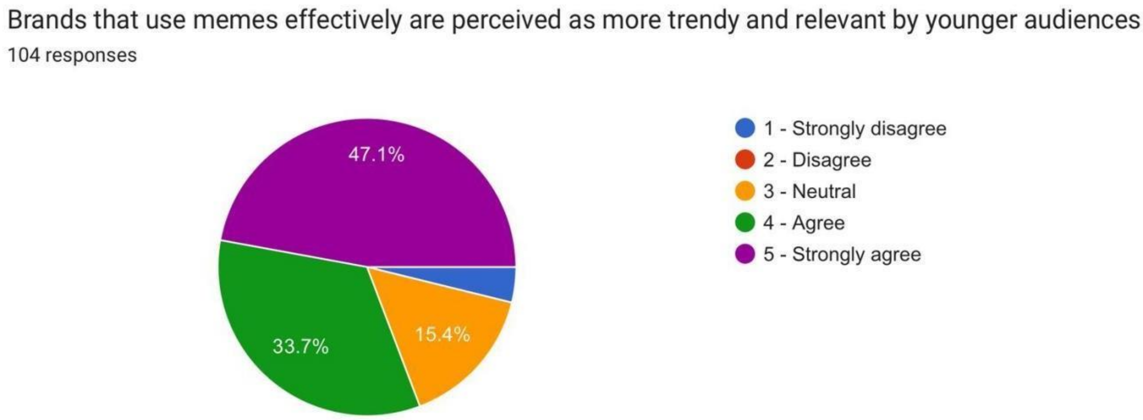

Figure14

This Pie chart shows that **47.1% strongly agree** and **33.7% agree** that brands using memes effectively are perceived as more trendy and relevant by younger audiences.

Findings

Demographic Insights : The survey conducted among participants from Ahmedabad and Mumbai provides key insights into the demographic distribution. The majority of respondents (53.8%) belong to the 18-24 age group, indicating that meme marketing predominantly resonates with younger audiences, while participation declines with increasing age. Gender distribution shows a slight female majority (54.8%), suggesting a balanced but slightly higher engagement from women. The residential distribution is nearly equal, with 52.9% of respondents from Ahmedabad and 47.1% from Mumbai, allowing for a comparative analysis between the two cities.

Occupational and Behavioral Trends : In terms of occupation, students make up the largest segment (59.6%), followed by self- employed individuals (17.3%) and those employed in the private/government sectors (15.4%). This highlights that meme marketing primarily reaches younger, student-centric demographics. Food delivery habits reveal that over half of the respondents (51.9%) use food delivery services multiple times a week, reflecting a growing dependence on these platforms. Zomato emerges as the dominant service (86.5%), followed by Swiggy (63.5%), indicating a strong brand preference.

Social Media and Meme Marketing Influence : Instagram is the leading platform for meme marketing exposure (88.5%), making it the prime channel for brand engagement, whereas other platforms like Twitter (5.8%) and Facebook (1.9%) have significantly lower influence. Regarding meme marketing preferences, "Funny and relatable memes" and "Trend-based memes" were rated as the most influential, reinforcing the importance of humor and cultural relevance in audience engagement. Discount or offer- based memes, while still effective, were perceived as less emotionally engaging

Key Takeaways for Brand Strategy : These findings highlight the potential of meme marketing in targeting younger consumers, especially on Instagram, and emphasize the need for brands to incorporate humor and trends into their campaigns for maximum impact. Food delivery services and student-oriented businesses stand to gain the most from integrating meme marketing into their digital strategies.

Comparative Analysis: Ahmedabad vs. Mumbai : The survey results show a nearly equal distribution of participants from Ahmedabad (52.9%) and Mumbai (47.1%), allowing for a comparative city-wise

analysis. While overall trends in meme marketing influence remain consistent across both cities, minor variations may exist in platform preferences and engagement patterns. A deeper examination could help brands tailor their marketing strategies for region-specific preferences.

Key findings from the Impact of Meme Marketing by Select Food Delivery Companies on Consumer Engagement section : The findings suggest that meme marketing significantly influences consumer engagement with food delivery companies. A large proportion (63.5%) of respondents engage with food delivery brands after viewing meme-based advertisements, reinforcing the effectiveness of humor and relatability in marketing strategies. Moreover, 80.8% of respondents agree that meme marketing makes brands more engaging, suggesting that humor-based promotions create a stronger connection with audiences. While 62.5% believe that meme marketing improves brand reliability, a notable 27.9% remain neutral, indicating that some consumers may perceive memes as entertaining rather than credibility-enhancing.

Additionally, when asked about any other impacts of meme marketing on consumer engagement, responses varied. While 17.6% indicated that meme marketing had no additional impact, others acknowledged its role in increasing brand visibility, making promotions more engaging, and enhancing organic interaction. This suggests that while meme marketing is effective, its impact on individual consumers varies based on personal perceptions and preferences.

Key findings from the Influence of Meme-Based Campaigns on Brand Loyalty and Repeat Usage section

Meme marketing plays a significant role in influencing brand loyalty and repeat purchases. The survey results indicate that 46.2% of respondents strongly agree, and 11.5% agree that meme- based campaigns impact their decision to reorder from a food delivery brand. A substantial percentage (29.8%) remains neutral, while only a small fraction (12.2%) disagrees, showing minimal resistance to this form of advertising.

Beyond purchase decisions, meme marketing also fosters emotional connections with consumers. A total of 69.2% of respondents (44.2% strongly agree and 25% agree) believe that meme marketing builds a stronger emotional bond between customers and brands, reinforcing customer retention. Additionally, 79.8% (44.2% strongly agree and 35.6% agree) consider meme marketing more effective than traditional advertising, further proving its influence.

Furthermore, meme marketing is perceived as a tool that enhances brand relevance among younger consumers, with 80.8% of respondents agreeing that brands using memes effectively are seen as trendy and relatable. This reinforces the idea that brands targeting younger demographics should invest in meme-driven campaigns to maintain cultural relevance and consumer engagement

Hypotheses Testing and Results

Hypothesis 1 (H1): Meme advertising by select food delivery companies plays a significant role in increasing consumer engagement on social media platforms. Null Hypothesis (H0): Meme marketing by selected food delivery companies does not play a significant role in increasing consumer engagement on social media platforms.

Analysis: The data shows that 63.5% of respondents (Agree + Strongly Agree) actively engage with food delivery companies after viewing meme-based advertisements. Additionally, 80.8% of respondents (Agree + Strongly Agree) feel that meme marketing makes companies more relatable and engaging, which promotes interaction Agree) actively engage with food delivery companies after viewing meme-based advertisements. Additionally, 80.8% of respondents (Agree + Strongly Agree) feel that meme marketing makes companies more relatable and engaging, which promotes interaction

Findings: H1 is supported.

The survey results demonstrate that meme advertising significantly influences consumer engagement on social media platforms. The high percentage of respondents who find meme marketing relatable and engaging suggests that meme advertising is an effective tool for increasing consumer interaction.

Hypothesis 2 (H2): Meme-based marketing campaigns have a significant impact on brand loyalty and repeat usage of the food delivery service.

Null Hypothesis (H0): Meme-based marketing campaigns have no significant impact on brand loyalty and repeat usage of the food delivery service.

Analysis:

- Brand Loyalty: 69.2% of respondents (Agree + Strongly Agree) believe that meme marketing helps build stronger emotional connections with brands.
- Repeat Usage: 46.2% of respondents strongly agree and 11.5% agree that meme marketing influences their decision to reorder.
- Effectiveness Comparison: 79.8% of respondents (Agree + Strongly Agree) consider meme marketing more effective than traditional advertising.

Findings: H2 is supported.

Meme-based marketing campaigns significantly impact brand loyalty and repeat usage of food delivery services. The data strongly indicates that consumers who are emotionally engaged with meme-based content are more likely to remain loyal and reorder from these companies.

Hypothesis 3 (H3): There is a significant difference in the effectiveness of meme marketing on consumers between Ahmedabad and Mumbai.

Null Hypothesis (H0): There is no significant difference in the effectiveness of meme marketing on consumers between Ahmedabad and Mumbai.

Analysis:

- The survey shows a nearly equal distribution of participants from Ahmedabad (52.9%) and Mumbai (47.1%).
- The engagement levels and effectiveness of meme marketing appear to be consistent across both cities, with no substantial difference in responses.
- Consumer perceptions about meme marketing are similar across both locations, regardless of the type of meme or platform used.

Findings: H3 is Not Supported.

The data indicates that meme marketing is equally effective in Ahmedabad and Mumbai. Therefore, the null hypothesis (H0) is accepted, as there is no significant difference in consumer perception between the two cities.

Summary of Hypothesis Testing

Hypothesis	Status	Conclusion
H1: Meme advertising increases consumer engagement on social media platforms.	Supported	Meme marketing effectively engages consumers, especially through relatable and humorous content.
H2: Meme-based marketing impacts brand loyalty and repeat usage.	Supported	Emotional engagement and perceived relevance drive loyalty and repeat purchases.
H3: There is a difference in effectiveness between Ahmedabad and Mumbai.	Not Supported	Meme marketing is equally effective in both cities.

Conclusion : This study highlights the growing influence of meme marketing on consumer engagement and brand loyalty in the food delivery industry. The survey results indicate that a significant proportion of consumers actively engage with food delivery brands after encountering meme- based advertisements, reinforcing the effectiveness of humor and relatability in digital marketing. The data further suggests that meme marketing enhances brand perception, with a majority of respondents agreeing that it makes brands more engaging, reliable, and relevant, particularly among younger audiences.Meme-based campaigns also play a crucial role in

influencing repeat purchases and brand loyalty. A substantial number of participants acknowledged that meme marketing impacts their decision to reorder from a food delivery company, while many also believe that it helps build an emotional connection with the brand. Additionally, meme marketing is perceived as more effective than traditional advertising, solidifying its value as a modern marketing strategy. However, while meme marketing has been widely accepted and appreciated, some consumers remain neutral or skeptical about its influence on trust and reliability. This suggests that brands need to strike a balance between humor and credibility to maintain long-term consumer trust.Overall, the findings emphasize that meme marketing is not just a passing trend but a powerful tool for consumer engagement. Food delivery brands that effectively incorporate memes into their marketing strategies can enhance their visibility, strengthen emotional connections with consumers, and drive brand loyalty. Given its proven success, businesses should continue leveraging meme-based content while ensuring authenticity and relevance to their target audience.

Limitation : While this study provides valuable insights into the impact of meme marketing on consumer engagement and brand loyalty in the food delivery industry, it is subject to several limitations.

Firstly, the survey sample was limited to respondents from Ahmedabad and Mumbai, which may not fully represent the diverse consumer behavior across different regions of India. Consumer perceptions and engagement with meme marketing could vary significantly based on cultural, demographic, and geographical factors.

Secondly, the study primarily relied on self-reported data, which may be influenced by individual biases, social desirability, or misinterpretation of survey questions. Respondents' opinions and behaviors might not always align with their actual purchasing decisions, affecting the accuracy of the findings.

Another limitation is the evolving nature of meme marketing. Trends in digital marketing and social media engagement change rapidly, and consumer responses to meme-based advertisements may shift over time. What is perceived as engaging and effective today may not have the same impact in the future. Additionally, while the study explored consumer engagement and brand loyalty, it did not measure the direct impact of meme marketing on sales or revenue. Future research could incorporate quantitative metrics such as purchase frequency, customer retention rates, and conversion rates to assess the actual business impact of meme-based campaigns. Lastly, the study focused primarily on the food delivery sector. While the findings suggest that meme marketing is effective in this industry, its impact might differ across other industries. Future studies could compare meme marketing effectiveness across various sectors to gain a broader understanding of its influence on consumer behavior..

Recommendation : Based on the findings of this study, several recommendations can be made for food delivery companies looking to enhance consumer engagement and brand loyalty through meme marketing. Additionally, recommendations for future researchers are also provided.

- Enhance Content Relevance and Authenticity
- Consistent Engagement on Social Media
- Balancing Humor with Brand Messaging
- Strengthen Emotional Connection Through Memes.
- Leverage Meme Marketing for Repeat Purchases
- Adapt to Changing Trends and Consumer Preferences
- Expand Research on Meme Marketing Effectiveness

Recommendations for Future Research Scholars

1. **Broadening the Scope of Study:** Future researchers should examine the application of meme marketing in diverse industries beyond food delivery, including fashion, entertainment, technology, and travel. Understanding how memes influence consumer behavior across various sectors can provide valuable insights into the generalizability of meme marketing strategies.
2. **Investigating Cross-Cultural Differences:** Research could explore how meme marketing is perceived and accepted across different cultural contexts. Comparing meme marketing effectiveness in countries

with varying levels of internet penetration and social media usage could highlight unique regional trends and preferences.

3. **Measuring Long-Term Impact:** Future studies should focus on assessing the long-term impact of meme marketing on brand loyalty and consumer behavior. Conducting longitudinal studies and using advanced analytics to measure engagement metrics can provide a more detailed understanding of meme marketing's effectiveness.
4. **Exploring Psychological Aspects:** Understanding the psychological mechanisms behind why certain memes go viral and their impact on consumers' emotions, attitudes, and purchase intentions can be an interesting area for future research.
5. **Integration of Sales Data:** Combining qualitative insights from meme content analysis with quantitative sales data can provide a more holistic view of how meme marketing impacts purchasing decisions.
6. **Evaluating Ethical Considerations:** Scholars should also consider the ethical implications of meme marketing, particularly when humor borders on sensitive or controversial topics. Investigating how ethical boundaries are managed can contribute to more responsible marketing practices.

References :-

1. Berger, J., & Milkman, K. L. (2012). What makes online content viral? *Journal of Marketing Research, 49*(2), 192–205. https://doi.org/10.1509/jmr.10.0353
2. Dawkins, R. (1976). *The selfish gene*. Oxford University Press.
3. Economic Times. (2021). The rise of meme marketing in India. *The Economic Times.*
4. Green, M. C. (2013). The psychology of humor in advertising: Effects on brand perception and purchase intention. *Marketing Science, 32*(4), 567–580. https://doi.org/10.1287/mksc.2013.0089
5. Kumar, A., Patel, S., & Sharma, R. (2021). Meme marketing and its impact on consumer engagement in the food delivery sector. *Digital Marketing Journal*.
6. Lo, K., & Lamm, T. (2005). Consumer perception of humor in advertising. *Journal of Consumer Behavior, 4*(3), 201–212. https://doi.org/10.1002/cb.135
7. Navrang, R., & Pooja, J. (2023). Impact of meme marketing on consumer purchase intention: Examining the mediating role of consumer engagement. *Innovative Marketing, 19*(4), 112–130. https://doi.org/10.2139/im.2023.0065
8. Patel, N., & Sharma, P. (2020). Cultural relevance and consumer interaction in digital advertising. *Journal of Advertising Research*..
9. Vassileva, B. (2017). Humor and relatability in marketing: A study of consumer perception. *Marketing Strategies Today*.
10. Weber, J. (2011). Ethical considerations in digital marketing: Balancing humor and responsibility. *Business Ethics Review, 26*(1), 45–60. https://doi.org/10.1007/s10551- 011-0953-6

ꕥ★ꕥ

'आलोचन-दृष्टि'-परिवार की ओर से दो अविस्मरणीय विभूतियों 'डॉ. रामदरश मिश्र' और 'विनोद कुमार शुक्ल' को सादर नमन एवं श्रद्धांजलि

पिछले दो महीनों में हिन्दी साहित्य ने अपने दो अत्यंत महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट स्वर खो दिए— डॉ. रामदरश मिश्र और विनोद कुमार शुक्ल। यह केवल दो साहित्यकारों का अवसान नहीं है, बल्कि हिन्दी की दो अलग—अलग, किंतु समान रूप से मूल्यवान साहित्यिक परंपराओं का मौन हो जाना है।

डॉ. रामदरश मिश्र हिन्दी साहित्य की उस सुदीर्घ परंपरा के प्रतिनिधि हैं, जिसमें रचना केवल सौंदर्य की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि संस्कृति, जीवन—मूल्यों और सामाजिक उत्तरदायित्व की संवाहक है। उनका साहित्य भारतीय सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित है। लोकजीवन, ग्राम्य संस्कार, पारिवारिक संबंध, श्रम की गरिमा और मानवीय करुणा— ये सभी तत्त्व उनकी रचनाओं में सहज और स्वाभाविक रूप से विद्यमान हैं। उनकी संस्कृतिनिष्ठा किसी रूढ़ अतीतबोध तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह वर्तमान जीवन—संदर्भों से संवाद करती हुई आगे बढ़ती है। उनकी कविता में लोकबोध और आधुनिक संवेदना का संतुलित समन्वय दिखाई देता है, जबकि उनके उपन्यास और कहानियाँ सामाजिक परिवर्तन के बीच टूटते—बनते मूल्यों को गहरी सच्चाई और संवेदनशीलता के साथ रूपायित करती हैं। उनकी भाषा में लोक की सहजता, संस्कारों की गरिमा और शास्त्रीय परंपरा की संयमित गंभीरता एक साथ मिलती है। उनका संपूर्ण रचनाकर्म भारतीय साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना की अखंड धारा का अविचल प्रवाह है।.... वहीं

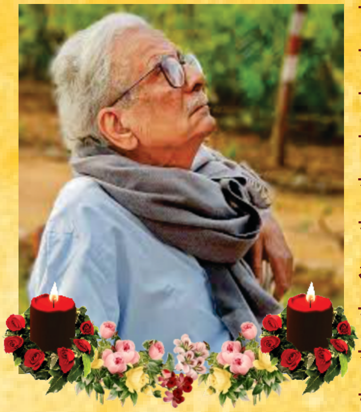

विनोद कुमार शुक्ल हिन्दी साहित्य की उस विरल परंपरा के रचनाकार थे, जहाँ सृजन का स्वर ऊँचा नहीं होता, बल्कि मौन, विनम्रता और सूक्ष्म अनुभूति के माध्यम से जीवन की गहराइयों तक पहुँचता है। उनकी भाषा की सादगी— गहन अर्थवत्ता और विलक्षण संवेदनात्मक विस्तार से संपन्न है। उन्होंने साधारण जीवन, छोटे अनुभवों और दैनिक बिंबों में असाधारण काव्य—सत्य की खोज की। उनकी संस्कृतिनिष्ठा लोकजीवन से उपजी हुई थी— मध्यवर्गीय अस्तित्व, घरेलू संसार, प्रकृति और मानवीय संबंधों की आत्मीय उपस्थिति— उनके लेखन की केंद्रीय विशेषता है। वे आडंबर और साहित्यिक चकाचौंध से सर्वथा दूर रहे। उनकी कविता और उनका गद्य साहित्य भारतीय सांस्कृतिक चेतना की उस मौन परंपरा से जुड़ा हैं, जिसके केन्द्र में करुणा, विनय और मानवीय मूल्य सर्वोच्च हैं। उनके लेखन में जो यथार्थ है, जादुई प्रतीत होता है, क्योंकि वह कल्पना का नहीं, संवेदना का यथार्थ है।....

ये दोनों रचनाकार अपने—अपने ढंग से साहित्य और संस्कृति के साधक रहे हैं। एक ने व्यापक सामाजिक—सांस्कृतिक परंपरा को सहेजा, तो दूसरे ने जीवन की सूक्ष्मतम अनुभूतियों को स्वर दिया। उनका रचना—संसार आने वाली पीढ़ियों के लिए मानवीयता, विनय और रचनात्मक ईमानदारी का स्थायी पाठ बना रहेगा। **साहित्य और संस्कृति के इन दोनों साधकों को शत्—शत् नमन।**

- डॉ. सुनील कुमार मानस

आलोचन दृष्टि,
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद-फतेहपुर, उ0प्र0-212635
ई-मेल : aalochan.p@gmail.com
वेबसाइट : https://aalochandrishti.org/

Website QR Code